धवला उद्धरण

संकलन एवं सम्पादन

डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर
डॉ. आलोक कुमार जैन, ललितपुर

प्रकाशक
वीर सेवा मन्दिर
(जैनदर्शन शोध संस्थान)
दरियागंज, नई दिल्ली

धवला उद्धरण

संकलन एवं सम्पादन
डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर
डॉ. आलोक कुमार जैन, ललितपुर

प्रथमावृत्ति : जुलाई 2016 (वीरशासन जयन्ती के पावन अवसर पर)
प्रतियां– 250

मूल्य : 300/–

सर्वाधिकार सुरक्षित प्रकाशकाधीन

मुद्रक : शकुन प्रिंटर्स, पटपड़गंज इण्डस्ट्रियल एरिया,
नई दिल्ली–110092

प्रकाशक
वीर सेवा मन्दिर (जैनदर्शन शोध संस्थान)
21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
फोन नं. 011–23250522, 30120522
ईमेल : virsewa@gmail.com

प्राक्कथन

तीर्थंकर महावीर के सिद्धान्तों का अवधारण जिन महामनीषी श्रुतधराचार्यों ने किया, उनमें कसाय पाहुड के रचयिता आचार्य गुणधर तथा षट्खण्डागम विषयज्ञ धरसेनाचार्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर लिखित 'छक्खंडागम' के रचयिता आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि अग्रगण्य हैं। आचार्य पुष्पदन्त द्वारा रचित सूत्रों के पश्चात् आचार्य भूतबलि ने 'छक्खंडागम' के शेष भाग की रचना की थी। "The Jaina Sources of the History of Ancient India" में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने षट्खण्डागम का संकलन ई. सन् 75 में स्वीकार किया है। 'छक्खंडागम' छह खण्डों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बन्ध सामित्तविचय, वेयणा, वग्गणा और महाबन्ध खण्ड हैं।

छक्खंडागम के ऊपर ईसा की नवम शताब्दी के प्रारंभ में श्री वीरसेनाचार्य ने धवला नामक टीका लिखी। श्री जिनसेनाचार्य ने अपने हरिवंशपुराण में श्री वीरसेनाचार्य को कविचक्रवर्ती के रूप में स्मरण किया है–

जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिनः।
वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलंकावभासते।।

श्री वीरसेनाचार्य सिद्धान्त के साथ–साथ गणित, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि शास्त्रों के पारंगत तलस्पर्शी विद्वान् थे। आदिपुराण में श्री जिनसेनाचार्य ने अपने गुरु श्री वीरसेनाचार्य को उपनिबन्धनकर्ता कहा है। वे लिखते हैं–

सिद्धान्तोपनिबन्धानां विधातुर्मद्गुरोश्चिरम्।
मन्मनःसरसि स्थेयान् मृदुपादकुशेशयम्।।

धवला टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य का समय विवादास्पद नहीं है।

उनके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य ने उनकी अपूर्ण जयधवला टीका की रचना शक सं. 759 (837 ई.) में फाल्गुन शुक्ला दशमी को पूर्ण की थी। अतः श्री वीरसेनाचार्य का समय इससे पूर्व का है। डॉ. हीरालाल जैन ने अनेक प्रमाणों के आधार पर धवला टीका की पूर्णता का काल शक सं. 738 (816 ई.) माना है। उन्होंने प्राकृत एवं संस्कृत मिश्रित भाषा में मणिप्रवालन्याय से धवला टीका की रचना की है। यह टीका 72000 श्लोक प्रमाण है। वे अपनी दूसरी टीका जयधवला केवल 20000 श्लोक प्रमाण ही लिख सके थे कि असमय में उनका स्वर्गारोहण हो गया था।

धवला टीका में सिद्धान्त के अनेक विषयों का उपनिबन्धन है। परम्परानुमोदित विषय को ही प्रस्तुत करने का नाम उपनिबन्धन कहलाता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि धवला टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने जो लिखा है, वह सब वही है जिसे श्रुतधराचार्य श्री धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि ने तीर्थंकरवाणी के रूप में परम्परा से अवधारण किया था। इससे धवला टीका की प्रामाणिकता तो असंदिग्ध है ही, उसमें उद्धृत गाथायें एवं श्लोक आज समाज का यथार्थ मार्गदर्शन करने में पूर्णतया समर्थ हैं। धवला में श्री वीरसेनाचार्य ने सूत्रों में प्राप्त पारस्परिक विरोधाभासों का सयुक्तिक समन्वय करते हुए समाधान प्रस्तुत किया है। इसमें एक ओर जहाँ पूर्वाचार्यों की मान्यताओं का पुष्टीकरण दृष्टिगत होता है तो दूसरी ओर दार्शनिक मान्यताओं का युक्तियुक्त सम्यक् प्रतिपादन। इसमें प्राप्त पारिभाषिक शब्दों के व्युत्पत्तिमूलक निर्वचन तो आदर्श निदर्शन हैं।

प्रस्तुत उद्धरण संकलन में धवला टीका में उद्धृत पूर्वाचायों की गाथाओं एवं श्लोकों को इस भावना से एक स्थान पर एकत्र किया गया है, जिससे अध्येता सिद्धान्त-विषयों की परिभाषाओं एवं कथ्यों को धवलाकार की भावना एवं उनके द्वारा किये गये उपनिबन्धन के अनुसार जान सकें। संकलन में कुछ भी नया नहीं है, अर्थसहित धवला की 16 पुस्तकों से संकलित करके मात्र एकत्र उपस्थित किया गया है। संकलन की मूल प्रेरणा श्री रूपचन्द जी कटारिया की रही है, वे आगम की सुरक्षा के लिए सतत

चिन्तित रहते हैं तथा उनकी भावना रहती है कि हम यद्वा-तद्वा अर्थ न करें। आगम को मूलरूप में ही सुरक्षित रखें, गाथाओं का अर्थ करते समय मूल परम्परा को ध्यान में रखें। डॉ. आलोक कुमार जैन, उपनिदेशक- वीर सेवा मंदिर (जैनदर्शन शोध संस्थान) दरियागंज, नई दिल्ली एक सुचिन्तक युवा विद्वान् हैं। उन्होंने गाथाओं/श्लोकों के शीर्षकीकरण, संशोधन एवं गाथानुक्रमणिका के निर्माण में अपनी सारस्वत प्रतिभा का सदुपयोग किया है। मैं आदरणीय कटारिया जी एवं डॉ. आलोक कुमार जैन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भावना भाता हूँ कि वे जिनवाणी की सेवा यथोचित तन, मन, धन से करते हुए यशस्वी बनें।

इस सम्पूर्ण उद्धरण संकलन का कार्य वीर सेवा मन्दिर, दरियागंज, नई दिल्ली के समृद्ध पुस्तकालय में सम्पन्न हुआ है, जिसमें वीर सेवा मन्दिर के माननीय अध्यक्ष श्री भारत भूषण जैन एडवोकेट, महामंत्री श्री विनोद कुमार जैन एवं अन्य समस्त पदाधिकारियों एवं सदस्यों ने जो सहृदयता का परिचय दिया है, वह न केवल श्लाघनीय है, अपितु अनुकरणीय भी है। मैं वीर सेवा मन्दिर की इस अहेतुकी कृपा के लिए विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ।

-डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर
निदेशक वीर सेवा मन्दिर
(जैनदर्शन शोध संस्थान)

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन	III-V
अनुक्रमणिका	VI
धवला पुस्तक 1	1–69
धवला पुस्तक 2	70–77
धवला पुस्तक 3	78–98
धवला पुस्तक 4	99–118
धवला पुस्तक 5	119–123
धवला पुस्तक 6	124–139
धवला पुस्तक 7	140–153
धवला पुस्तक 8	154–160
धवला पुस्तक 9	161–192
धवला पुस्तक 10	193–200
धवला पुस्तक 11	201–203
धवला पुस्तक 12	204–209
धवला पुस्तक 13	210–237
धवला पुस्तक 14	238–244
धवला पुस्तक 15	245–254
धवला पुस्तक 16	255–261
गाथानुक्रमणिका	262–297

धवला पुस्तक

1

शास्त्रव्याख्यान की पद्धति

मंगल–णिमित्त हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरिओ।। 1 ।।

मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता, इन छह अधिकारों का व्याख्यान करने के पश्चात् आचार्य शास्त्र का व्याख्यान करें।

विशेषार्थ– शास्त्र के प्रारम्भ में पहिले मंगलाचरण करना चाहिये। पीछे जिस निमित्त से शास्त्र की रचना हुई हो, उस निमित्त का वर्णन करना चाहिये। इसके बाद शास्त्र–प्रणयन के प्रत्यक्ष और परम्परा–हेतु का वर्णन करना चाहिये। अनन्तर शास्त्र का प्रमाण बताना चाहिये। फिर ग्रन्थ का नाम और आम्नाय क्रम से उसके मूलकर्त्ता, उत्तरकर्त्ता और परम्परा–कर्त्ताओं का उल्लेख करना चाहिये। इसके बाद ग्रंथ का व्याख्यान करना उचित है। ग्रंथरचना का यह क्रम आचार्य परम्परा से चला आ रहा है और इस ग्रंथ में भी इसी क्रम से व्याख्यान किया गया है।।1।।

शब्दात्पदप्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थनिर्णयो भवति।
अर्थात्तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः।। 2 ।।

शब्द से पद की प्रसिद्धि होती है, पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है, अर्थ–निर्णय से तत्त्वज्ञान अर्थात् हेयोपादेय विवेक की प्राप्ति होती है और तत्त्वज्ञान से परम कल्याण होता है।।2।।

नय का स्वरूप

उच्चारियमत्थपदं णिक्खेवं वा कयं तु दट्ठूण।
अत्थं णयंति तच्चत्तमिदि तदो ते णया भणिया।। 3 ।।

उच्चारण किये गये अर्थ-पद और उसमें किये गये निक्षेप को देखकर अर्थात् समझकर पदार्थ को ठीक निर्णय तक पहुँचा देते हैं, इसलिये वे नय कहलाते हैं।।3।।

विशेषार्थ- आगम के किसी श्लोक, गाथा, वाक्य अथवा पद के ऊपर से अर्थ-निर्णय करने के लिये पहले निर्दोष पद्धति से श्लोकादि का उच्चारण करना चाहिये, तदनन्तर पदच्छेद करना चाहिये, उसके बाद उसका अर्थ कहना चाहिये, अनन्तर पद-निक्षेप अर्थात् नामादि विधि से नयों का अवलंबन लेकर पदार्थ का ऊहापोह करना चाहिये। तभी पदार्थ के स्वरूप का निर्णय होता है। पदार्थ-निर्णय के इस क्रम को दृष्टि में रखकर गाथाकार ने अर्थ-पद का उच्चारण करके और उसमें निक्षेप करके नयों के द्वारा तत्त्व-निर्णय का उपदेश दिया है। गाथा में 'अत्थपदं' इस पद से पदच्छेद और उसका अर्थ ध्वनित किया गया है। जितने अक्षरों से वस्तु का बोध हो उतने अक्षरों के समूह को 'अर्थ-पद' कहते हैं। 'णिक्खेव' इस पद से निक्षेप-विधि की, और 'अत्थं णयंति तच्चत्तं' इत्यादि पदार्थों से पदार्थ-निर्णय के लिये नयों की आवश्यकता बतलाई गई है।।3।।

णयदि त्तिं णयो भणिओ बहूहि गुण-पज्जएहि जं दव्वं।
परिमाण-खेत्त-कालंतरसु अविणट्ठ-सब्भावं ।। 4 ।।

अनेक गुण और उनके अनेक पर्यायों सहित, अथवा उनके द्वारा एक परिणाम से दूसरे परिणाम में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में और एक काल से दूसरे काल से अविनाशी-स्वभावरूप से रहने वाले द्रव्यों को जो ले जाता है, अर्थात् उसका ज्ञान करा देता है, उसे नय कहते हैं।।4।।

विशेषार्थ– आगम में द्रव्य का लक्षण दो प्रकार से बतलाया गया है, एक 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्' अर्थात् जिसमें गुण और पर्याय पाये जाएं उसे द्रव्य कहते हैं और दूसरा 'उत्पाद–व्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' व 'सद् द्रव्यलक्षणम्' जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिति–स्वभाव होता है वह सत् है और सत् ही द्रव्य का लक्षण है। यहाँ पर नय की निरुक्ति करते समय द्रव्य के इन दोनों लक्षणों पर दृष्टि रखी गई प्रतीत होती है। नय किसी विवक्षित धर्म द्वारा ही द्रव्य का बोध कराता है। नय के इस लक्षण का संकेत भी 'गुणपज्जएहि' पद द्वारा हो जाता है। यह पद तृतीया विभक्ति सहित होने से उसे द्रव्य के लक्षण में तथा निरुक्ति के साथ नय के लक्षण में भी ले सकते हैं।।4।।

नय के भेद

तित्थयर–वयण संगह–विसेस–पत्थार–मूल वायरणी।
दव्वट्ठिओ य पज्जय–णयो य सेसा वियप्पपा सि ।। 5

तीर्थकरों के वचनों के सामान्य प्रस्तार का मूल व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और उन्हीं वचनों के विशेष–प्रस्तार का मूल व्याख्याता पर्यायार्थिक नय है। शेष सभी नय इन दोनों नयों के विकल्प अर्थात् भेद हैं।।5।।

विशेषार्थ– जिनेन्द्रदेव ने दिव्यध्वनि के द्वारा जितना भी उपदेश दिया है, उसका अभेद अर्थात् सामान्य की मुख्यता से प्रतिपादन करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और भेद अर्थात् पर्याय की मुख्यता से प्रतिपादन करने वाला पर्यायार्थिक नय है। ये दोनों ही नय समस्त विचारों अथवा शास्त्रों के आधारभूत हैं, इसलिये उन्हें यहाँ मूल व्याख्याता कहा है। शेष नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द आदि इन दोनों नयों के अवान्तर भेद हैं।।5।।

द्रव्यार्थिक नय का आधार

दव्वट्ठिय-णय-पयई सुद्धा संगह-परूवणां-विसयो।
पछिरूवं पुण वयणत्थ-णिच्छयो तस्स ववहारो ।। 6 ।।

प्रत्येक भेद के प्रति शब्दार्थ का निश्चय करना उसका व्यवहार है। अर्थात् व्यवहारनय की प्ररूपणा को विषय करना द्रव्यार्थिक नय की अशुद्ध प्रकृति है।।6।।

विशेषार्थ- वस्तु सामान्य-विशेष-धर्मात्मक है। उनमें सामान्य-धर्म को विषय करना द्रव्यार्थिक और विशेष-धर्म को (पर्याय को) विषय करना पर्यायार्थिक नय है। उनमें से संग्रह और व्यवहार के भेद से द्रव्यार्थिक नय दो प्रकार का है। जो अभेद को विषय करता है उसे संग्रह नय कहते हैं और जो भेद को विषय करता है उसे व्यवहार नय कहते हैं। ये दोनों ही द्रव्यार्थिक नय की क्रमशः शुद्ध और अशुद्ध प्रकृति हैं। जब तक द्रव्यार्थिक नय घट, पट आदि विशेष भेद न करके द्रव्य सत्स्वरूप है, इसप्रकार द्रव्य को अभेद रूप से ग्रहण करता है तब तक वह उसकी शुद्ध प्रकृति समझनी चाहिये। इसे ही संग्रह नय कहते हैं तथा सत्स्वरूप जो द्रव्य है, उसके जीव और अजीव ये दो भेद हैं। जीव के संसारी और मुक्त इस तरह दो भेद हैं। अजीव भी पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस तरह का पाँच भेदरूप है। इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रभेदों की अपेक्षा अभेद को स्पर्श करता हुआ भी जब वह भेदरूप से वस्तु को ग्रहण करता है, तब वह उसकी अशुद्ध प्रकृति समझनी चाहिये। इसी को व्यवहार नय कहते हैं। यहाँ पर इतना विशेष समझना चाहिये कि वस्तु में चाहे जितने भेद किये जावें, परंतु वे काल निमित्तक नहीं होना चाहिये, क्योंकि वस्तु में काल निमित्तक भेद की प्रधानता से ही पर्यायार्थिक नय का अवतार होता है। द्रव्यार्थिक नय की अशुद्ध प्रकृति में द्रव्यभेद अथवा सत्ताभेद ही इष्ट है, कालनिमित्तक भेद

इष्ट नहीं है।।6।।

पर्यायार्थिक नय का आधार

मूल-णिमेणं पज्जव-णयस्स उज्जुसुद-वयण-विच्छेदो।
तस्स दु सद्दादीया साहुपसाहा सुहुमभेया ।।7।।

ऋजुसूत्र वचन का विच्छेदरूप वर्तमान काल ही पर्यायार्थिक नय का मूल आधार है और शब्दादिक नय शाखा-उपशाखा रूप उसके उत्तरोत्तर सूक्ष्म भेद हैं।।7।।

विशेषार्थ- वर्तमान समयवर्ती पर्याय को विषय करना ऋजुसूत्र नय है। इसलिये जब तक द्रव्यगत भेदों की ही मुख्यता रहती है, तब तक व्यवहार नय चलता है और जब कालनिमित्तक भेद प्रारम्भ हो जाता है, तभी से ऋजुसूत्र नय का प्रारम्भ होता है। शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन तीन नयों का विषय भी वर्तमान पर्यायमात्र है, परंतु उनमें ऋजुसूत्र के विषयभूत अर्थ के वाचक शब्दों की मुख्यता से अर्थभेद इष्ट है, इसलिये उनका विषय ऋजुसूत्र से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम माना गया है। अर्थात् ऋजुसूत्र के विषय में लिंग आदि से भेद करने वाला शब्दनय, शब्दनय से स्वीकृत लिंग, वचन वाले शब्दों में व्युत्पत्तिभेद से अर्थभेद करने वाला समभिरूढ नय और पर्याय-शब्द को उस शब्द से ध्वनित होने वाले क्रियाकाल में ही वाचक मानने वाला एवंभूत नय समझना चाहिये। इस तरह से शब्दादिक नय उस ऋजुसूत्र नय की शाखा-उपशाखा हैं, यह सिद्ध हो जाता है। अतएव ऋजुसूत्र नय पर्यायार्थिक नय का मूल आधार माना गया है।।7।।

नय की अपेक्षा पदार्थ का स्वरूप

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जव-णयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।। 8 ।।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ नियम से उत्पन्न होते हैं और नाश को प्राप्त होते है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में प्रतिक्षण नवीन-नवीन पर्यायें उत्पन्न होती हैं और पूर्व-पूर्व पर्यायों का नाश होता है, किन्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वे सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट स्वभाव वाले हैं। उनका न तो कभी उत्पाद होता है और न कभी नाश होता है, वे सदाकाल स्थितिस्वभाव रहते हैं।।8।।

विशेषार्थ– उत्पाद दो प्रकार का माना गया है, उसीप्रकार व्यय भी। एक स्वनिमित्त और दूसरा परनिमित्त। इसका खुलासा इसप्रकार समझना चाहिये कि प्रत्येक द्रव्य में आगम प्रमाण से अगुरुलघुगुण के अनन्त अविभागप्रतिच्छेद माने गये हैं। जो षड्गुणहानि और षड्गुणवृद्धिरूप से निरन्तर प्रवर्तमान रहते हैं। इसलिये इनके आधार से प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद और व्यय हुआ करता है। इसी को स्वनिमित्तोत्पाद-व्यय कहते हैं। उसी प्रकार परनिमित्त से भी द्रव्य में उत्पाद और व्यय का व्यवहार किया जाता है। जैसे स्वर्णकार ने कड़े से कुण्डल बनाया। यहाँ पर स्वर्णकार के निमित्त से कड़े रूप सोने की पर्याय नष्ट होकर कुण्डल रूप पर्याय का उत्पाद हुआ है और इसमें स्वर्णकार निमित्त है, इसलिये इसे परनिमित्त उत्पाद और व्यय समझ लेना चाहिये, क्योंकि आकाशादि निष्क्रिय द्रव्य दूसरे पदार्थों के अवगाहन, गति आदि में कारण पड़ते हैं और अवगाहन, गति आदि में निरन्तर भेद दिखाई देता है। इसलिये अवगाहन, गति आदि के कारण भी भिन्न होने चाहिये। स्थिति वस्तु के अवगाहन में कारण है। इस तरह अवगाह्यमान वस्तु के भेद से आकाश में भेद सिद्ध हो जाता है और इसलिए आकाश में परनिमित्त से भी उत्पाद-व्यय का व्यवहार किया जाता है। इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्यों में पर-निमित्त से भी उत्पाद और व्यय समझ लेना चाहिये। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ उत्पन्न भी होते है और

नाश को भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अनन्त-काल से अनन्त-पर्याय-परिणत होते रहने पर भी द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता है और न एक द्रव्य के गुण-धर्म बदलकर कभी दूसरे द्रव्यरूप ही हो जाते हैं। अतएव द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ सर्वदा स्थिति-स्वभाव है।।8।।

द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक नय के निक्षेप

णामं ठवणा दविए त्ति एस दव्वट्ठियस्स णिक्चखेवो।
भावो दु पज्जवट्ठिय-परूवणा एस परमट्ठो।।9।।

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीनों द्रव्यार्थिक नय के निक्षेप हैं और भाव पर्यायार्थिक नय की प्ररूपणा है। यही परमार्थ सत्य है।।9।।

प्रमाण, नय एवं निक्षेप की आवश्यकता

प्रमाण - नय - निक्षेपैऽर्थ नाभिसमीक्षते।
युक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत्।।10।।

जो पदार्थ का प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा, नैगमादि नयों के द्वारा और नामादि निक्षेपों के द्वारा सूक्ष्म-दृष्टि से विचार नहीं करता है, उसे पदार्थ का समीक्षण कभी युक्त (संगत) होते हुए भी अयुक्त (असंगत) सा प्रतीत होता है और कभी अयुक्त होते हुए भी युक्त की तरह प्रतीत होता है।।10।।

ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तोऽर्थ-परिग्रहः।।11।।

विद्वान् लोग सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, नामादि के द्वारा वस्तु में भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते हैं और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। इस प्रकार युक्त से अर्थात् प्रमाण, नय और निक्षेप के द्वारा पदार्थ का ग्रहण अथवा निर्णय करना चाहिये।।11।।

आयु क्षीण होने के कारण

विस-वेयन-रत्तक्खय-भय-सत्थग्गहण-संकिलेसेहिं।
आहारुस्सासाणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ।।12।।इदि।।

विष के खा लेने से, वेदना से, रक्त का क्षय हो जाने से, तीव्र भय से, शस्त्रघात से, संक्लेश की अधिकता से तथा आहार और श्वासोच्छ्वास के रुक जाने से आयु क्षीण हो जाती है।।12।।

विशेषार्थ- जैसे कदली (केला) के वृक्ष का तलवार आदि के प्रहार से एकदम विनाश हो जाता है, उसी प्रकार विष-भक्षणादि निमित्तों से भी जीव की आयु एकदम उदीर्ण होकर छिन्न हो जाती है। इसे ही अकाल-मरण कहते हैं और इसके द्वारा जो शरीर छूटता है उसे च्यावित शरीर कहते हैं।

सचित्त एवं अचित्त मंगल

सिद्धत्थ-पुण्ण-कुंभो वंदणमाला य मंगलं छत्तं।
सेदो वण्णो आदंसणो य कण्णा य जच्चसे।।13।।

उन दोनों में से लौकिक मंगल सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। इनमें- 'सिद्धार्थ' अर्थात् श्वेत सरसों, जल से भरा हुआ कलश, वंदनमाला, छत्र, श्वेत-वर्ण और दर्पण आदि अचित्त मंगल हैं और बालकन्या तथा उत्तम जाति का घोड़ा आदि सचित्त मंगल हैं।।13।।

विशेषार्थ- पंचास्तिकाय की टीका में भी जयसेन आचार्य ने इन पदार्थों को मंगलरूप मानने में भिन्न-भिन्न कारण दिये हैं। वे इस प्रकार हैं- जिनेन्द्रदेव ने व्रतादिक के द्वारा परमार्थ को प्राप्त किया और उन्हें सिद्ध यह संज्ञा प्राप्त हुई, इसलिये लोक में सिद्धार्थ अर्थात् श्वेत सरसों मंगलरूप माने गये। जिनेन्द्रदेव संपूर्ण मनोरथों से अथवा केवलज्ञान से परिपूर्ण हैं,

इसलिये पूर्ण-कलश मंगलरूप से प्रसिद्ध हुआ। बाहर निकलते समय अथवा प्रवेश करते समय चौबीस ही तीर्थंकर वन्दना करने योग्य हैं, इसलिये भरत चक्रवर्ती ने वन्दनमाला की स्थापना की। अरहंत परमेष्ठी सभी जीवों का कल्याण करने वाले होने से जग के लिये छत्राकार हैं, अथवा सिद्धलोक भी छत्राकार है, इसलिये छत्र मंगलरूप माना गया है। ध्यान, शुक्ललेश्या इत्यादि को श्वेत-वर्ण की उपमा दी जाती है, इसलिये श्वेतवर्ण मंगलरूप माना गया है। जिनेन्द्रदेव केवलज्ञान में जिस प्रकार लोक और अलोक प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार दर्पण में भी अपना बिम्ब झलकता है, अतएव दर्पण मंगलरूप माना गया है। जिस प्रकार वीतराग सर्वज्ञदेव लोक में मंगलस्वरूप हैं, उसी प्रकार बालकन्या भी रागभाव से रहित होने के कारण लोक में मंगल मानी गई है। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेव ने कर्म-शत्रुओं पर विजय पाई, उसी प्रकार उत्तम जाति के घोड़े से भी शत्रु जीते जाते हैं, अतएव उत्तम जाति का घोड़ा मंगलरूप माना गया है।।13।।

निक्षेपों की आवश्यकता

जत्थ बहुं जाणिज्जा अवरिमिदं तत्थ णिक्खिवे णियमा।
जत्थ बहुवं ण जाणदि चउट्ठयं णिक्खिवे तत्थ।।14।।

जहाँ जीवादि पदार्थों के विषय में बहुत जाने, वहाँ पर नियम से सभी निक्षेपों के द्वारा उन पदार्थों का विचार करना चाहिये और जहाँ पर बहुत न जाने, तो वहाँ पर चार निक्षेप अवश्य करना चाहिये। अर्थात् चार निक्षेपों के द्वारा उस वस्तु का विचार अवश्य करना चाहिये।।14।।

अवगय-णिवारणट्ठं पयदस्स परूवणा-णिमित्तं च।
संसय-विणासणट्ठं तच्चत्तथवधारणट्ठं च।।15।।

अप्रकृत विषय के निवारण करने के लिये, प्रकृत विषय के प्ररूपण करने के लिये, संशय का विनाश करने के लिये और तत्त्वार्थ का निश्चय

करने के लिये निक्षेपों का कथन करना चाहिये।।15।।

मंगल का अर्थ

मंगशब्दोऽयमुद्दिष्टः पुण्यार्थस्याभिधायकः ।
तल्लातीत्युच्यते सद्भिर्मखगल मखलार्थिभिः।।16।।

यह मंग शब्द पुण्य के अर्थ का प्रतिपादन करने वाला माना गया है। उस पुण्य को जो लाता है उसे मंगल के इच्छुक सत्पुरुष मंगल कहते हैं।।16।।

पापं मलमिति प्रोक्तमुपचारसमाश्रयात्।
तद्धि गालयतीत्युक्तं मंगलं पण्डितैर्जनैः।।17।।

उपचार से पाप को भी मल कहा है। इसलिये जो उसका गालन अर्थात् नाश करता है उसे भी पण्डितजन मंगल कहते हैं।।17।।

षड् अनुयोगद्वार

किं कस्स केण कत्थ व केवचिरं कदिविध य भावो त्ति।
छहि अणिओग-द्दारेहि सव्व-भावाणुगंतव्वा।।18।।

पदार्थ क्या है, किसका है, किसके द्वारा होता है, कहाँ पर होता है, कितने समय तक रहता है, कितने प्रकार का है, इस प्रकार इन छह अनुयोग-द्वारों से संपूर्ण पदार्थों का ज्ञान करना चाहिये।।18।।

मंगल का स्थल

आदि-अवसाण-मज्झे पण्णत्त मंगल जिणिदेहि।
तो कय-मंगल-विणयो इण्मो सुत्तं पवक्खामि।।19।।

जिनेन्द्रदेव ने आदि, अन्त और मध्य में मंगल करने का विधान किया है। अतः मंगल-विनय को करके मैं इस सूत्र का वर्णन करता हूँ।।19।।

मंगलाचरण की आवश्यकता

आदिम्हि भद्द-वयणं सिस्सा लहु पारया हवंतु त्ति।
मज्झे अव्वोच्छित्ती विज्जा विज्जा-फलं चरिमे।।20।।

शिष्य सरलतापूर्वक प्रारंभ किये गये ग्रंथाध्ययनादि कार्य के पारंगत हों, इसलिये आदि में भद्रवचन अर्थात् मंगलाचरण करना चाहिये। प्रारम्भ किये गये कार्य की व्युच्छित्ति न हो इसलिये मध्य में मंगलाचरण करना चाहिये और विद्या तथा विद्या के फल की प्राप्ति हो, इसलिये अन्त में मंगलाचरण करना चाहिये।।20।।

जिनगुणकीर्तन का फल

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु न दुष्टदेवाः परिलङ्घयन्ति।
अर्थान्यथेष्टांश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन।।21।।

जिनेन्द्रदेव के गुणों का कीर्तन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं, कभी भी भय नहीं होता है, दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरन्तर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।।21।।

आदौ मध्येऽवसाने च मखलं भाषित बुधैः।
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये।।22।।

विद्वान् पुरुषों ने प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करने का विधान किया है। वह मंगल निर्विघ्न कार्यसिद्धि के लिये जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करना ही है।।22।।

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

णिद्दद्ध-मोह-तरुणो वित्थिण्णाणाण-सारुत्तिण्णा।
णिहय-णिय-विग्घ-वग्गा बहु-बाह-विणिग्गया अयला।।23।।

दलिय-मयण-प्पयावा तिकाल-विसएहि तीहि णयणेहि।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारा सुदद्ध-तिउरा मुणि-व्वइणो।।24।।
ति-रयण-तिसूलदारियमोहंघासुर-कबंध-बिंद-हरा।
सिद्ध-सयलप्प-रूवा अरहंता दुण्णय-कयंता।।25।।

जिन्होंने मोहरूपी वृक्ष को जला दिया है, जो विस्तीर्ण अज्ञानरूपी समुद्र से उत्तीर्ण हो गये हैं, जिन्होंने अपने विघ्नों के समूह को नष्ट कर दिया है, जो अनेक प्रकार की बाधाओं से रहित हैं, जो अचल हैं, जिन्होंने तीनों कालों को विषय करने रूप तीन नेत्रों से कामदेव के प्रताप को दलित कर दिया है, जिन्होंने सकल पदार्थों के सार को देख लिया है, जिन्होंने त्रिपुर अर्थात् मोह, राग और द्वेष को अच्छी तरह से भस्म कर दिया है, जो मुनिव्रती अर्थात् दिगम्बर अथवा मुनियों के पति अर्थात् ईश्वर हैं, जिन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र इन तीन रत्नरूपी त्रिशूल के द्वारा मोहरूपी अंधकार रूप असुर के कबन्धजड को विदारित कर लिया है, जिन्होंने संपूर्ण आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया है और जिन्होंने दुर्नय का अन्त कर दिया है, ऐसे अरिहंत परमेष्ठी होते हैं।।23-25।।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णिहय-विविहट्ठ-कम्मा तिहुवण-सिर-सेहरा विहुव-दुक्खा।
सुह-सायर-मज्झ-गया णिरंजणा णिच्च अट्ठ-गुणा।।26।।
अणवज्जा कय-कज्जा सव्वायवेहि दिट्ठ-सव्वट्ठा।
वज्ज-सिलत्थब्भग्गयपडिम वाभेज्ज-संठाणा।।27।।
मासुण-संठाणा वि हु सव्वावयवेहि णो गुणेहि समा।
सव्विदियाण विसयं जमेग-देसे विजाणाति।।28।।

जिन्होंने नाना भेदरूप आठ कर्मों का नाश कर दिया है, जो तीन लोक के मस्तक के शेखर स्वरूप हैं, दुःखों से रहित हैं, सुखरूपी सागर में

निमग्न हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, आठ गुणों से युक्त हैं, अनवद्य अर्थात् निर्दोष हैं, कृतकृत्य हैं, जिन्होंने सर्वांग से समस्त पर्यायों सहित संपूर्ण पदार्थों को जान लिया है, जो वज्रशिला में उत्कीर्ण प्रतिमा के समान अभेद्य आकार से युक्त हैं, जो सब अवयवों से पुरुषाकार होने पर भी गुणों से पुरुष के समान नहीं हैं, क्योंकि जो संपूर्ण इन्द्रियों के विषयों को एकदेश में भी जानते हैं वे सिद्ध हैं।।26-28।।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

पवयण-जलहि-जलोयर-ण्हायामल-बुद्धि-सुद्ध-छावासो।
मेरु व्व णिप्पकंपो सूरो पंचाणणो वज्जो।।29।।
देस-कुल-जाइ-सुद्धो सोमंगो संग-भंग-उम्मुक्को।
गयण व्व णिरुवलेवो आइरियो एरिसो होइ।।30।।
संगह-णुग्गह-कुसलो सुत्तत्थ-विसारओ पहिय-कित्ती।
सारण-वारण-सोहण-किरियुज्जुत्तो हु आइरियो।।31।।

प्रवचनरूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरु पर्वतों के समान निष्कम्प हैं, जो शूरवीर हैं, जो सिंह के समान निर्भीक हैं, जो निर्दोष हैं, देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, सौम्यमूर्ति हैं, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित हैं, आकाश के समान निर्लेप हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। जो संघ के संग्रह अर्थात् दीक्षा और अनुग्रह करने में कुशल हैं, अर्थात् परमागम के अर्थ में विशारद हैं, जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है, जो सारण अर्थात् आचरण, वारण अर्थात् निषेध और शोधन अर्थात् व्रतों की शुद्धि करने वाली क्रियाओं में निरन्तर उद्युक्त हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी समझना चाहिये।।29-31।।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

चोद्दस-पुव्व-महोयहिमहिगम्म सिव-त्थिओ सिवत्थीणं।
सीलंघराण वत्ता होइ मुणी सो उवज्झायो।।32।।

जो साधु चौदह पूर्वरूपी समुद्र में प्रवेश करके अर्थात् परमागम का अभ्यास करके मोक्षमार्ग में स्थित हैं तथा मोक्ष के इच्छुक शीलंधरों अर्थात् मुनियों को उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरों को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।।32।।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

सीह-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरुवहि-मंदरिंदु-मणी।
खिदि-उरगंबर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू।।33।।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी या उन्नत, बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह गोचरी-वृत्ति करने वाले, पवन के समान निःसंग या सब जगह बिना रुकावट के विचरने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या सकल तत्त्वों के प्रकाशक, उदधि अर्थात् सागर के समान गम्भीर, मन्दराचल अर्थात् सुमेरु-पर्वत के समान परीषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शान्तिदायक, मणि के समान प्रभापुंज युक्त, क्षिति के समान सर्व प्रकार की बाधाओं को सहने वाले, उरग अर्थात् सर्प के समान दूसरे के बनाये हुए अनियत आश्रय-वसतिका आदि में निवास करने वाले, अम्बर अर्थात् आकाश के समान निरालम्बी या निर्लेप और सदाकाल परमपद अर्थात् मोक्ष का अन्वेषण करने वाले होते हैं, वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।।33।।

पंच परमेष्ठी की विनय

जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
सक्कारए तं सिर-पंचएण काएण वाया मणसा य णिच्चं।।34।।

जिसके समीप धर्म-मार्ग प्राप्त करे, उसके समीप विनय युक्त होकर प्रवृत्ति करनी चाहिये तथा उसका शिर-पंचक अर्थात् मस्तक, दोनों हाथ और दोनों जंघाएं इन पंचांगों से तथा काय, वचन और मन से निरन्तर सत्कार करना चाहिये।

छद्दव्व-णव-पयत्थे सुय-णाणाइच्च-दिप्प-तेएण।
पस्संतु भव्व-जीवा इय सुय-रविणो हये उदयो।।35।।

भव्यजीव श्रुतज्ञानरूपी सूर्य के दीप्त तेज से छह द्रव्य और नव पदार्थों को देखें अर्थात् भलीभांति जानें, इसलिये श्रुतज्ञानरूपी सूर्य का उदय हुआ है।।35।।

राजा का स्वरूप

अष्टादशसंख्यानां श्रेणीनामधिपतिर्विनम्राणाम्।
राजा स्यान्मुकुटधरः कल्पतरुः सेवामानानाम्।।36।।

जो नम्रीभूत अठारह श्रेणियों का अधिपति हो, मुकुट को धारण करने वाला हो और सेवा करने वालों के लिये कल्पवृक्ष के समान हो, उसे राजा कहते हैं।।36।।

हय-हत्थि-रहाणहिवा सेणावइ-मंति-सेठ्ठि-दंडवई।
सुद्द-क्खत्तिय-बम्हण-वइसा तह महयरा चेव।।37।।
गणरायमच्च-तलवर-पुरोहिया दप्पिया महामत्ता।
अट्ठारह सेणीओ पयाइणा मेलिया होंति।।38।।

घोड़ा, हाथी, रथ, इनके अधिपति, सेनापति, मन्त्री, श्रेष्ठी, दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, महत्तर, गणराज, अमात्य, तलवर, पुरोहित,

स्वाभिमानी महामात्य और पैदल सेना इस तरह सब मिलाकर अठारह श्रेणियां होती हैं।।37-38।।

पृतनाख-दण्डनायक-वर्ण-वणिग्भुग्-गणेड्-महामात्राश्च।
मन्त्रि-पुरोहित-सेनान्यमात्य-तलवर-महत्तराः स्युः श्रेण्यः।।39

अथवा हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये चार सेना के अंग, दण्डनायक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण, वणिक्पति, गणराज, महामात्र, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, अमात्य, तलवर और महत्तर ये अठारह श्रेणियां होती हैं।।39।।

अधिराज एवं महाराज का लक्षण

पञ्चशतनरपतीनामधिराजोऽधीश्वरो भवति लोके।
राजसहस्राधिपतिः प्रतीयतेऽसौ महाराजः।।40।।

लोक में पाँच सौ राजाओं के अधिपति को अधिराज कहते हैं और एक हजार राजाओं के अधिपति को महाराज कहते हैं।।40।।

अर्धमण्डलीक एवं मण्डलीक का लक्षण

द्विसहस्रराजनाथे मनीषिभिर्वर्ण्यतेऽर्धमण्डलिकः।
मण्डलिकश्च तथा स्याच्चतुःसहस्रावनशीपतिः।।41।।

पण्डितजन दो हजार राजाओं के स्वामी को अर्धमण्डलीक कहते हैं और चार हजार राजाओं के स्वामी को मण्डलीक कहते हैं।।41।।

महामण्डलीक एवं नारायण का लक्षण

अष्टसहस्रमहीपतिनायकमाहुर्बुधाः महामण्डलिकम्।
षोडशराजसहस्रैविनम्यमानस्त्रिखण्डधरणीशः।।42।।

बुधजन आठ हजार राजाओं के स्वामी को महामण्डलीक कहते हैं

और जिसे सोलह हजार राजा नमस्कार करते हैं उसे तीन खण्ड पृथिवी का अधिपति अर्थात् नारायण कहते हैं।।42।।

चक्रवर्ती का लक्षण

षट्खण्डभरनाथं द्वात्रिंशद्धरणिपतिसहस्राणाम्।
दिव्यमनुष्यं विदुरिह भोगागारं सुचक्रधरम्।।43।।

इस लोक में बत्तीस हजार राजाओं से सेवित, नव निधि आदि से प्राप्त होने वाले भोगों के भण्डार, उत्तम चक्र-रत्न को धारण करने वाले और भरत क्षेत्र के छह खण्ड के अधिपति को दिव्य मनुष्य अर्थात् चक्रवर्ती समझना चाहिये।।43।।

तीर्थंकर का लक्षण

सकलभुवनैकनाथस्तीर्थकरो वर्ण्यते मुनिवरिष्ठैः।
विधुधवलचामराणां तस्य स्याद्वै चतुःषष्टिः।।44।।

जिनके ऊपर चन्द्रमा के समान धवल चौंसठ चँवर ढुरते हैं, ऐसे सकल भुवन के अद्वितीय स्वामी को श्रेष्ठ मुनि तीर्थंकर कहते हैं।।44।।

अभ्युदय सुख

तित्थयर-गणहरत्तं तहेद देविद-चक्कवट्टित्तं।
अणिरिहमेवमाई अब्भुदय-सुहं वियाणाहि।।45।।

इस लोक में तीर्थंकरपना, गणधरपना, देवेन्द्रपना, चक्रवर्तिपना और इसीप्रकार के अन्य अर्ह अर्थात् पूज्य पदों को अभ्युदय सुख समझना चाहिये।।45।।

सिद्धों का सुख

अदिसयमाद-समुत्थं विसयादीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवजोगो य सिद्धाणं।।46।।

अतिशयरूप आत्मा से उत्पन्न हुआ, विषयों से रहित, अनुपम, अनन्त और विच्छेद-रहित सुख तथा शुद्धोपयोग सिद्धों को होता है।।46।।

भाविय-सिद्धंताणं दिण्यर-कर-णिम्मलं हवइ णाणं।
सिसिर-यर-कर-सरिच्छं हवइ चरित्तं स-वस-चित्तं।।47।।

जिन्होंने सिद्धान्त का उत्तम प्रकार से अभ्यास किया है, ऐसे पुरुषों का ज्ञान सूर्य की किरणों के समान निर्मल होता है और जिसमें अपने चित्त को स्वाधीन कर लिया है, ऐसा चन्द्रमा की किरणों के समान चारित्र होता है।।47।।

परमागम की महिमा

मेरु व्व णिप्पकंपं णट्ठट्ठ-मलं ति-मूढ-उम्मुक्कं।
सम्मद्दंसणमणुवममुप्पज्जइ पवयणब्भासा।।48।।

प्रवचन अर्थात् परमागम के अभ्यास से मेरु के समान निष्कम्प, आठ मल-रहित, तीन मूढ़ताओं से रहित और अनुपम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है।।48।।

तत्तो चेव सुहाइं सलयाइं देव-मणुय-खयराणं।
उम्मूलियट्ठ-कम्मं फुड सिद्ध-सुहं पि पवयणादो।।49।।

उस प्रवचन के अभ्यास से ही देव, मनुष्य और विद्याधरों को सर्व सुख प्राप्त होते हैं तथा आठ कर्मों के उन्मूलित हो जाने के बाद प्राप्त होने वाला विशद सिद्ध सुख भी प्रवचन के अभ्यास से ही प्राप्त होता है।।49।।

जिय-मोहिंधण-जलणो अण्णाण-तमंधयार-दिणयरओ।
कम्म-मल-कलुस-पुसओ जिण-वयणमिवोवही सुंहयो।।50।।

वह जिनागम जीव के मोहरूपी ईंधन को भस्म करने के लिये अग्नि के समान है, अज्ञान-रूपी गाढ़ अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान है, कर्ममल अर्थात् द्रव्यकर्म और कर्मकलुष अर्थात् भावकर्म को मार्जन करने वाला समुद्र के समान है और परम सुभग है।।50।।

अण्णाण-तिमिर-हरणं-सुभविय-हिययारविंद-जोहणयं।
उज्जोइय-सयल-वहं सिद्धंत-दिवायरं भजह।।51।।

अज्ञानरूपी अन्धकार को हरण करने वाले, भव्य जीवों के हृदयरूपी कमल को विकसित करने वाले और संपूर्ण जीवों के लिये पथ अर्थात् मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने वाले ऐसे सिद्धान्त रूपी दिवाकर को भजो।।51।।

विपुलाचलादि की विशोषता

पंच-सेल-पुरे रम्मे विउले पव्वदुत्तमे।
णाणा-दुम-समाइण्णे देव-दाणव-वंदिदे।।52।।

पंचशैलपुर में (पंचपहाड़ी अर्थात् पाँच पर्वतों से शोभायमान राजगृह नगर के पास) रमणीक, नाना प्रकार के वृक्षों से व्याप्त, देव तथा दानवों से वन्दित और सर्व पर्वतों में उत्तम ऐसे विपुलाचल नामके पर्वत के ऊपर भगवान् महावीर ने भव्यजीवों को अर्थ का उपदेश दिया अर्थात् दिव्यध्वनि के द्वारा जीवादि पदार्थों और मोक्षमार्ग आदि का उपदेश दिया।।52।।

ऋषिगिरिरैन्द्राशायां चतुरस्रो याम्यदिशि च वैभारः।
विपुलगिरिनर्नैऋत्यामुभै त्रिकोणी स्थितौ तत्र।।53।।

पूर्व दिशा में चौकोर आकार वाला ऋषिगिरि नामका पर्वत है।

दक्षिण दिशा में वैभार और नैऋत दिशा में विपुलाचल नामके पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत त्रिकोण आकार वाले हैं।।53।।

धनुराकारश्छिन्नो वारुणवायव्यसौम्यदिक्षु ततः।
वृत्ताऔतिरैशान्यां पाण्डुः सर्वे कुशाग्रवृताः।।54।।

पश्चिम, वायव्य और सौम्य दिशा में धनुष के आकार वाला फैला हुआ छिन्न नामका पर्वत है। ऐशान दिशा में वृत्ताकार पाण्डु नामका पर्वत है। ये सब पर्वत कुश के अग्रभागों से ढ़के हुए हैं।।54।।

धर्मतीर्थ की उत्पत्ति का काल

इमिसे वसप्पिणीए चउत्थ-समयस्म पच्छिमे भाए।
चौत्तीस-वास-सेसे किंचि विसेसूणए संते।।55।।
वासस्स पढम-मासे पढमे पक्खम्हि सावणे बहुले।
पाडिवद-पुव्व-दिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिहिम्हि।।56।।

इस अवसर्पिणी कल्पकाल के दुःषमा-सुषमा नामके चौथे काल के पिछले भाग में कुछ कम चौंतीस वर्ष बाकी रहने पर, वर्ष के प्रथम मास अर्थात् श्रावण मास में, प्रथम पक्ष अर्थात् कृष्ण पक्ष में, प्रतिपदा के समय आकाश में अभिजित् नक्षत्र के उदित रहने पर तीर्थ अर्थात् धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।।55-56।।

सावण-बहुल-पडिवदे रुद्द-मुहुत्ते सुहोदए रविणो।
अभिजिस्स पढम-जोए एत्थ जुगाई मुणेयव्वो।।57।।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के बिद रुद्र मुहूर्त में सूर्य का शुभ उदय होने पर और अभिजित् नक्षत्र के प्रथम योग में जब युग की आदि हुई तभी तीर्थ की उत्पत्ति समझना चाहिये।।57।।

नव केवल लब्धियां

दाणे लाभे भोगे परिभोगे वीरिए य सम्मत्ते।
णव केवल-लद्धीओ दंसण-णाणं चरित्ते य।।58।।

दान, लाभ, भोग, परिभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये नव केवल लब्धियाँ हैं।।58।।

केवलज्ञान का फल

खीणे दंसण-मोहे चरित्त-मोहे तहेव घाइ-तिए।
सम्मत्त-विरिय-णाण खइयाइं होंति केवलिणो।।59।।

दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय के क्षय हो जाने पर तथा शेष तीन घातिया कर्मों के क्षय हो जाने पर केवली जिन के सम्यक्त्व, वीर्य और ज्ञान ये क्षायिक भाव प्रगट होते हैं।।59।।

भगवान् की दिव्यध्वनि

उप्पणम्हि अणंते णट्ठम्मि य छादुमत्थिए णाणे।
णव-विह-पयत्थ-गब्भा दिव्वज्झुणी कहेइ सुत्तट्ठं।।60।।

क्षायोपशमिक ज्ञान के नष्ट हो जाने पर और अनन्तरूप केवलज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर नौ प्रकार के पदार्थों से गर्भित दिव्यध्वनि सूत्रार्थ का प्रतिपादन करती है। अर्थात् केवलज्ञान हो जाने पर भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है।।60।।

भगवान् महावीर के प्रथम गणधर

गोत्तेण गोदमो विप्पो चाउव्वेय-सडंगवि।
णामेण इंदभूदि त्ति सीलवं बम्हणुत्तमो।।61।।

गौतम गौत्री, विप्र वर्णी, चारों वेद और षडंगविद्या का पारगामी, शीलवान् और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऐसा वर्द्धमान स्वामी का प्रथम गणधर

इन्द्रभूति इस नाम से प्रसिद्ध हुआ।।61।।

श्रुत व्याख्याता का भव भ्रमण

सेलघण-भग्गघड-अहि-चालणि-महिसाऽवि-जाहय-सुएहि।
मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा।।62।।
दढ-गारव-पडिबद्धो विसयामिस-विस-वसेण घुम्मंतो।
सो भट्ठ-बोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो।।63।।

शैलघन, भग्नघट, अहि (सर्प), चालनी, महिष, अवि (मेंढ़ा), जाहक (जोंक), शुक, माटी और मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुत का व्याख्यान करता है, वह मूढ़, दृढ़रूप से ऋद्धि आदि तीनों प्रकार के गारवों के अधीन होकर विषयों की लोलुपतारूपी विष के वश से मूर्च्छित हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति से भ्रष्ट होकर भव-वन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है।।62-63।।

तिविहा य आणुपुव्वी दसहा णामं च छव्विहं माणं।
वत्तव्वा य तिविहा तिविहो अत्थाहियारो वि।।64।।

आनुपूर्वी तीन प्रकार की है, नाम के दश भेद हैं, प्रमाण के छह भेद हैं, वक्तव्यता के तीन भेद हैं और अर्थाधिकार के भी तीन भेद हैं।।64।।

एस करेमि य पणमं जिणवर-वसहस्स वड्ढमाणस्स।
सेसाणं च जिणाणं सिव-सुह-कंखा विलोमेण।।65।।

मोक्षसुख की अभिलाषा से यह मैं जिनवरों में श्रेष्ठ ऐसे वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करता हूँ और विलोम क्रम से अर्थात् वर्द्धमान के बाद पार्श्वनाथ को, पार्श्वनाथ के बाद नेमिनाथ इत्यादि को क्रम से शेष जिनेन्द्रों को भी नमस्कार करता हूँ।।65।।

गय-गवल-सजल-जलहर-परहुव-सिहि-गलय-भमर-संकासो।
हरिउल-वंस-पईवो सिव-माउव-वच्छओ जयऊ।। 66 ।।

समान वर्ण वाले, हरिवंश के प्रदीप और शिवादेवी माता के लाल ऐसे नेमिनाथ भगवान् जयवन्त हों।।66।।

नयवाद की विशेषता

जावदिया वयण-वहा तावदिया चेव होंति णय-वादा।
जावदिया णय-वादा तावदिया चेव होंति पर-समया।।67।।

जितने भी वचनमार्ग हैं, उतने ही नयवाद अर्थात् नय के भेद हैं और जितने नयवाद हैं, उतने ही परसमय हैं।।67।।

णत्थि णएहि विहूणं सुत्तं अत्थो व्व जिणवरमदम्हि।
तो णय-वादे णिउणा मुणिणो सिद्धंतिया होंति।।68।।
तम्हा अहिगय-सुत्तेण अत्थ-संपायणम्हि जइयव्वं।
अत्थ-गई वि य णय-वाद-गहण-लीणा दुरहियम्मा।।69।।

जिनेन्द्र भगवान् के मत में नयवाद के बिना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है, इसलिये जो मुनि नयवाद में निपुण होते हैं वे सच्चे सिद्धान्त के ज्ञाता समझने चाहिये। अत: जिसने सूत्र अर्थात् परमागम को भले प्रकार जान लिया है, उसे ही अर्थसंपादन में अर्थात् नय और प्रमाण के द्वारा पदार्थ के परिज्ञान करने में प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि पदार्थों का परिज्ञान भी नयवादरूपी जंगल में अन्तर्निहित है। अतएव दुरधिगम्य अर्थात् जानने के लिये कठिन है।।68-69।।

पापबन्ध का अकारण रूप आचरण

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए।
कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झई।।70।।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई।।71।।

किस प्रकार चलना चाहिये? किस प्रकार खड़े रहना चाहिये? किस प्रकार बैठना चाहिये? किस प्रकार शयन करना चाहिये? किस प्रकार भोजन करना चाहिये? किस प्रकार संभाषण करना चाहिये, किस प्रकार पापकर्म नहीं बंधता है? (इस तरह गणधर के प्रश्नों के अनुसार) यत्न से चलना चाहिये, यत्न पूर्वक खड़े रहना चाहिये, यत्न से बैठना चाहिये, यत्न पूर्वक शयन करना चाहिये, यत्न पूर्वक भोजन करना चाहिये, यत्न से संभाषण करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करने से पापकर्म का बंध नहीं होता है।।70-71।।

जीव के एक से दस तक के भेद

एक्को चेय महप्पो सो दुवियप्पो णि-लक्खणो भणिओ।
चदु-संकणा-जुत्तो पंचग्ग-गुण-प्पहाणो य।।72।।
छक्कावक्कम-जुत्तो कमसो सो सत्त-भंगि-सब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दस-ठाणियो भणियो।।73।।

महात्मा अर्थात् यह जीव द्रव्य निरन्तर चैतन्यरूप धर्म से उपयुक्त होने के कारण उसकी अपेक्षा एक ही है। ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है। कर्मफल चेतना, कर्म चेतना और ज्ञान चेतना से लक्ष्यमाण होने के कारण तीन भेदरूप है। अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के भेद से तीन भेदरूप है। चार गतियों में परिभ्रमण करने की अपेक्षा इसके चार भेद हैं। औदयिक आदि पाँच प्रधान गुणों से युक्त होने के कारण इसके पांच भेद हैं। भावान्तर में संक्रमण के समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे इस तरह छह संक्रमण लक्षण अपक्रमों से युक्त होने की अपेक्षा छह प्रकार का है। अस्ति, नास्ति इत्यादि सात भंगों से युक्त होने की अपेक्षा सात प्रकार का है। ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों के आश्रव से

युक्त होने की अपेक्षा आठ प्रकार का है। अथवा ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का तथा आठ गुणों का आश्रय होने की अपेक्षा आठ प्रकार का है। जीवादि नौ प्रकार के पदार्थों को विषय करने वाला अथवा जीवादि नौ प्रकार के पदार्थों रूप परिणमन करने वाला होने की अपेक्षा नौ प्रकार का है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति के भेद से दश स्थानगत होने की अपेक्षा दश प्रकार का कहा गया है।।।72-73।।

ग्यारह प्रतिमा

दंसण-वद-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-राइभत्ते य।
बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमण-उद्दिट्ठ-देसविरदी य।।74।।

देशव्रती श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाएं होती हैं, जो ये हैं- दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग।

चतुर्विध कथा

आक्षेपणी तत्त्वविधानभूतां विक्षेपणी तत्त्वदिगन्तशुद्धिम्।
संवेगिनी धर्मफलप्रपञ्चचां निर्वेदिनी चाह कथा विरागाम्।।75।।

तत्त्वों का निरूपण करने वाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्राप्त हुई दृष्टियों का शोधन करने वाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थापना करने वाली विक्षेपणी कथा है। विस्तार से धर्म के फल का वर्णन करने वाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करने वाली निर्वेगिनी कथा है।

अट्ठासी-अहियारेस चउण्हमहियारणमत्थणिद्देसो।
पढमो अबंधयाणं विदियो तेरासियाण बोद्धवो।।76।।

इस सूत्र नामक अर्थाधिकार के अठासी अधिकारों में से चार अधिकारों का अर्थ निर्देश मिलता है। उनमें पहला अधिकार अबन्धकों का, दूसरा त्रैराशिक वादियों का, तीसरा नियतिवाद का समझना चाहिये तथा चौथा अधिकार स्वसमय का प्ररूपक है।।76।।

द्वादश पुराण

बारसविहं पुराणं जगदिट्ठ जिणवरेहि सव्वेहि।
तं सव्वं वणणेदि हु जिणवंसे रायवंसे य।।77।।
पढमो अरहंताणं विदियो पुण चक्करवट्टि-वंसो दु।
विज्जहराणं तदिया च उत्थयो वासुदेवाणं।।78।।
चारण-वंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्ण-समणाणं।
सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ तह य हरिवंसो।।79।।
णवमो य इक्खुयाणं दसमो वि य कासियाण बोद्धव्वो।
वाईणेक्कारसमो बारसमो णाह-वंसो दु।।80।।

जिनेन्द्र देव ने जगत् में बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है। वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंशों का वर्णन करते हैं। पहला अरिहंत अर्थात् तीर्थंकरों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा नारायण-प्रतिनारायणों का, पाँचवां चारणों का, छठवां प्रज्ञाश्रमणों का वंश है तथा सातवां कुरुवंश, आठवां हरिवंश, नववां इक्ष्वाकुवंश, दशवां काश्यपवंश, ग्यारहवां वादियों का वंश और बारहवां नाथवंश है।।77-80।।

जीव की विभिन्न पर्यायें

जीवो कत्ता वत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गो।
वेदो णिण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो।।81।।
सत्ता जंतू य माणी य माई जोगी य संकडो।
असंकडो य खेत्तण्हु अंतरप्पा तहेव य।।82।।

जीव कर्त्ता है, वक्ता है, प्राणी है, भोक्ता है, पुद्गल है, वेद है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी है, मानव है, सत्ता है, जन्तु है, मानी है, मायावी है, योगसहित है, संकुट है, असंकुट है, क्षेत्रज्ञ है और अन्तरात्मा है।।81-82।।

मार्गणा का स्वरूप एवं भेद

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।
ताओ चोद्दस जाणे सुदणाणे मग्गणा होंति।।83।।

श्रुतज्ञान अर्थात् द्रव्यश्रुत रूप परमागम में जीव पदार्थ जिस प्रकार देखे गये हैं, उसी प्रकार से वे जिन नारकत्वादि पर्यायों के द्वारा अथवा जिन नारकत्वादि रूप पर्यायों में खोजे जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं और वे चौदह होती हैं, ऐसा जानो।।83।।

गति का स्वरूप

गइ-कम्म-विणिव्वत्ता जा चेट्ठा सा गई मुणेयव्वा।
जीवा हु चाउरंगं गच्छंति त्ति य गई होइ।।84।।

गतिनामा नाम कर्म के उदय से जो जीव की चेष्टाविशेष उत्पन्न होती है, उसे गति कहते हैं अथवा जिसके निमित्त से जीव चतुर्गति में जाते हैं, उसे गति कहते हैं।।84।।

इन्द्रिय का स्वरूप

अहमिदा जह देवा अविसेसं अहमहं णि मण्णंता।
ईसंति एक्कमेक्कं इंदा इव इंदिए जाण।।85।।

जिस प्रकार ग्रैवेयकादि में उत्पन्न हुए अहमिन्द्र देव मैं सेवक हूँ अथवा स्वामी हूँ इत्यादि विशेषाभाव से रहित अपने को मानते हुए एक-एक होकर अर्थात् कोई किसी की आज्ञा आदि के पराधीन न होते हुए स्वयं स्वामीपने को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी अपने स्पर्शादिक विषय का ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ हैं और दूसरी इन्द्रियों की अपेक्षा से रहित हैं, अतएव अहमिन्द्रों की तरह इन्द्रियाँ जानना चाहिये।

काय का स्वरूप एवं भेद

अप्पप्पवुत्ति-संचिद-पोग्गल-पिंडं वियाण कायो त्ति।
सो जिणमदम्हि भणिओ पुढविक्कायादिछब्भेदो।।86।।

योगरूप आत्मा की प्रवृत्ति से संचय को प्राप्त हुए औदारिकादि रूप पुद्गल पिण्ड को काय समझना चाहिये। वह काय जिनमत में पृथिवीकाय आदि के भेद से छह प्रकार का कहा गया है और वे पृथिवी आदि छह काय, त्रसकाय और स्थावरकाय के भेद से दो प्रकार के होते हैं।।86।।

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेण्हिऊण कावोडि।
एमेव वहइ जीवो कम्भ-भरं काय-कावोडि।।87।।

जिस प्रकार भार को ढोने वाला पुरुष कावड़ को लेकर भार को ढोता है, उसी प्रकार यह जीव शरीररूपी कावड़ को लेकर कर्मरूपी भार को ढोता है।।87।।

योग का स्वरूप

मणसा वचसा काएण चावि जुत्तस्स विरिय-परिणामो।
जीवस्स प्पणिओओ जोगो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठो।।88।।

मन, वचन और काय के निमित्त से होने वाली क्रिया से युक्त आत्मा के जो वीर्य विशेष उत्पन्न होता है, उसे योग कहते हैं। अथवा जीव के प्रणियोग अर्थात् परिस्पन्दरूप क्रिया को योग कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कथन किया है।।88।।

वेद का स्वरूप

वेदस्सुदीरणाए बालत्तं पुण णियच्छेद बहुसो।
थी-पुं-णवुंसए वि य वेए त्ति तओ हवइ वेओ।।89।।

वेद कर्म की उदीरणा से यह जीव नाना प्रकार के बालभाव अर्थात् चांचल्य को प्राप्त होता है और स्त्रीभाव, पुरुषभाव तथा नपुंसकभाव का वेदन करता है, इसलिये उस वेद कर्म के उदय से प्राप्त होने वाले भाव को वेद कहते हैं।।89।।

कषाय का स्वरूप

सुह-दुक्ख-सुबहु-सस्सं कम्म-क्खेत्तं कसेदि जीवस्स।
संसार-दूर-मेरं तेण कसायो त्ति णं बेंति।।90।।

सुख, दुःख आदि अनेक प्रकार के धान्य को उत्पन्न करने वाले तथा जिसकी संसार रूप मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र को जो कर्षण करती हैं, उन्हें कषाय कहते हैं।।90।।

ज्ञान का स्वरूप

जाणइ तिकाल-सहिए दव्व-गुणे पज्जए य बहु-भेए।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणं ति णं बेंति।।91।।

जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त द्रव्य, उनके गुण और उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से जाने, उसको ज्ञान कहते हैं।।91।।

संयम का स्वरूप

वय-समिइ-कसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं।
धारण-पालण-णिग्गह-चाग-जया संजमो भणिओ।।92

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालना, क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार कषायों का निग्रह करना, मन, वचन और कायरूप तीन दण्डों का त्याग करना और पाँच इन्द्रियों का जय, इसको संयम कहते हैं।।92।।

दर्शन का स्वरूप

जं सामण्णग्गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं।
अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए।।93।।

सामान्यविशेषात्मक बाह्य पदार्थों को अलग-अलग भेदरूप से ग्रहण नहीं करके, जो सामान्य ग्रहण अर्थात् स्वरूपमात्र का अवभासन होता है उसको परमागम में दर्शन कहा है।93।।

लेश्या का स्वरूप

लिंपादि अप्पीकरीरदि एदाए णियय-पुण्ण-पावं च।
जीवो त्ति होइ लेस्सा लेस्सा-गुण-जाणय-क्खादां।।94।।

जिसके द्वारा जीव पुण्य और पाप से अपने को लिप्त करता है, उनके अधीन करता है उसको लेश्या कहते हैं, ऐसा लेश्या के स्वरूप को जानने वाले गणधरदेव आदि ने कहा है।।94।।

सिद्धतणस्सं जोग्गा जे जीवा ते जवंति भवसिद्धा।।
ण उ मल-विगमे णियमो ताणं कणगोवलाणमिव।।95।।

जो जीव सिद्धत्व अर्थात् सर्व कर्म से रहित मुक्तिरूप अवस्था पाने के योग्य है, उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं, किन्तु उनके कनकोपल अर्थात् स्वभाषण के समान मल का नाश होने में नियम नहीं है।

सम्यक्त्व का स्वरूप

छ-प्पंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरीवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।96।।

जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदेश दिये गये छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नव पदार्थों का आज्ञा अर्थात् आप्तवचन के आश्रय से अथवा अधिगम अर्थात् प्रमाण, नय, निक्षेप और निरुक्तिरूप अनुयोगद्वारों से श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहते हैं।।96।।

संज्ञी एवं असंज्ञी का स्वरूप

सिक्खा-किरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण।
जो जीवो जो सण्णी तव्विवरीदोअसणी दु।।97।।

जो जीव मन में अवलम्बन से शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप को ग्रहण करता है, उसे संज्ञी कहते हैं और जो इन शिक्षा आदि को ग्रहण नहीं कर सकता है, उसको असंज्ञी कहते हैं।।97।।

आहारक का स्वरूप

आहरदि सरीराणं तिण्हं एगदर-वग्गणाओ जं।
भासा-मणस्स णियंद तम्हा आहारओ भणिओ।।98।।

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरों में से उदय को प्राप्त हुए किसी एक शरीर के योग्य तथा भाषा और मन के योग्य पुद्गल

वर्गणाओं को जो नियम से ग्रहण करता है उसको आहारक कहते हैं।।98।।

अनाहारक जीव

विग्गह-गइमावण्ण केवलिणो समुहदा अजोगी य।
सिद्धा य अणाहार सेसा आहारया जीवा।।99।।

विग्रह गति को प्राप्त होने वाले चारों गति के जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त हुए सयोगि केवली और अयोगिकेवली तथा सिद्ध ये नियम से अनाहारक होते हैं। शेष जीवों को आहारक समझना चाहिये।।99।।

अनुयोग के एकार्थक नाम

अणियोगो य णियोगो भास-विभासा य वट्टिया चेय।
एदे अणिओअस्स दुणामा एयट्ठआ पंच।।100।।

अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा और वर्त्तिका ये पाँच अनुयोग के एकार्थवाची नाम जानना चाहिये।।100।।

अनुयोग के एकार्थक नामों के दृष्टान्त

सूई मुद्दा पडिहो संभवदल-वट्टिया चेय।
अणियोग-णिरुत्तीए दिट्ठंता होंति पंचेय।।101।।

अनुयोग की निरुक्ति सूची, मुद्रा, प्रतिघ, संभवदल और वर्त्तिका ये पाँच दृष्टान्त होते हैं।।101।।

विशेषार्थ- अनुयोग की निरुक्ति में जो पांच दृष्टान्त दिये हैं, वे लकड़ी आदि के काम को लक्ष्य में रखकर दिये गये प्रतीत होते हैं। जैसे लकड़ी से किसी वस्तु को तैयार करने के लिये पहले लकड़ी के निरुपयोगी भाग को निकालने के लिये उसके ऊपर एक रेखा में डोरा डाला

जाता है, इसे सूची कर्म कहते हैं। अनन्तर उस डोरा से लकड़ी के ऊपर चिन्ह कर दिया जाता है, इसे मुद्रा कर्म कहते हैं। इसके बाद लकड़ी के निरुपयोगी भाग को छाँटकर निकाल दिया जाता है, इसे प्रतिघ या प्रतिघात कर्म कहते हैं। फिर उस लकड़ी के काम के लिये उपयोगी जितने भागों की आवश्यकता होती है, उतने भाग कर लिये जाते हैं इसे संभवदल कर्म कहते हैं और अन्त में वस्तु तैयार करके ऊपर ब्रश आदि से पालिश कर दिया जाता है, यही वर्त्तिका कर्म है। इस तरह इन पाँच कर्मों से जैसे विवक्षित वस्तु तैयार हो जाती है, उसी प्रकार अनुयोग शब्द से भी आगमानुकूल संपूर्ण अर्थ का ग्रहण होता है। नियोग, भाषा, विभाषा और वर्तिका ये चारों अनुयोग शब्द के द्वारा प्रगट होने वाले अर्थ को ही उत्तरोत्तर विशद करते हैं। अतएव वे अनुयोग के ही पर्यायवाची नाम हैं।।101।।

सत्संख्या आदि की प्ररूपणा

अत्थित्तं पुण संतं अत्थित्तस्स य तहेव परिमाणं।
पच्चुप्पणणं खेत्तं अदीद-पदुप्पण्णणं फुसणं।।102।।
कालो ट्ठिदि-अवधाणं अंतरविरहो य सुण्ण-कालो य।
भावो खलु परिणमो स-णाम-सिद्धं खु अप्पबहुं।।103।।

अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाली प्ररूपणा को सत्प्ररूपणा कहते हैं। जिन पदार्थों के अस्तित्व ज्ञान हो गया है, ऐसे पदार्थों के परिमाण का कथन करने वाली संख्या प्ररूपणा है। वर्तमान क्षेत्र का वर्णन करने वाली क्षेत्र प्ररूपणा है। अतीत स्पर्श और वर्तमान स्पर्श का वर्णन करने वाली स्पर्शन प्ररूपणा है। जिससे पदार्थों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निश्चय हो उसे काल प्ररूपणा कहते हैं। जिसमें विरहरूप शून्यकाल का कथन हो उसे अन्तर प्ररूपणा कहते हैं। जो पदार्थों के परिणामों का वर्णन करे वह भाव प्ररूपणा है अल्पबहुत्व प्ररूपणा अपने नाम से ही सिद्ध है।102-103।।

गुणस्थान का स्वरूप

जेहिं दु लक्खिज्जंते संभवेहि भावेहि।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहि।।104।।

दर्शन मोहनीय आदि कर्मों के उदय, उपशम आदि अवस्थाओं के होने पर उत्पन्न हुए जिन परिणामों से युक्त जो जीव देखे जाते हैं, उन जीवों को सर्वज्ञदेव ने उसी गुणसंज्ञा वाला कहा है।।104।।

नयवाद

जावदिया वयण-वहा तावदिया चे होंति णय-वादा।
जावदिया णय-वादा तावदिया चे पर-समया।।105।।

जितने भी वचनमार्ग हैं उतने ही नयवाद अर्थात् नय के भेद होते हैं और जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय (अनेकान्त बाह्यमत) होते हैं।।105।।

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय का फल

मिच्छत्तं वेयंतो जीवो विवरीय-दंसणो होई।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा दरिदो।।106।।

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होने वाले मिथ्यात्व भाव का अनुभव करने वाला जीव विपरीत श्रद्धा वाला होता है। जिस प्रकार पित्तज्वर से युक्त जीव को मधुर रस अच्छा मालूम नहीं होता है, उसी प्रकार उसे यथार्थ धर्म अच्छा मालूम नहीं होता है।।106।।

मिथ्यात्व का स्वरूप एवं भेद

तं मिच्छत्तं जमसद्दणं तच्चाणं होइ अत्थाणं।
संसइदमभिग्गहियं अणभिग्गहिदं ति तं तिविहं।।107।।

जो मिथ्यात्व कर्म के उदय से तत्त्वार्थ के विषय में अश्रद्धान उत्पन्न

होता है, अथवा विपरीत श्रद्धान होता है, उसको मिथ्यात्व कहते हैं। उसके संशयित, अभिगृहीत और अनभिगृहीत इस प्रकार तीन भेद हैं।।107।।

सासादन गुणस्थान

सम्मत्त-रयण-पव्वय सिहरादो मिच्छ-भूमि-समभिमुहो।
णासिय-सम्मत्तो सो सासण-णामो मुणेयव्वो।।108।।

सम्यग्दर्शन रूपी रत्नगिरि के शिखर से गिरकर जो जीव मिथ्यात्व रूपी भूमि के अभिमुख है। अतएव जिसका सम्यग्दर्शन नष्ट हो चुका है, परंतु मिथ्यादर्शन की प्राप्ति नहीं हुई है, उसे सासन अर्थात् सासादन गुणस्थानवर्ती समझना चाहिये।।108।।

मिश्र गुणस्थान

दहि-गुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो।।109।।

जिस प्रकार दही और गुड़ को मिला देने पर उनको अलग नहीं अनुभव किया जा सकता है, किन्तु मिले हुए उन दोनों का रस मिश्रभाव को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार एक ही काल में सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले हुए परिणामों को मिश्र गुणस्थान कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये।।109।।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरु-णियोगा।।110।।

सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो श्रद्धान करता ही है, किन्तु किसी तत्त्व को नहीं जानता हुआ गुरु के उपदेश से विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है।।110।।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि।
सो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो।।111।।

जो इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं है, किन्तु जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।।111।।

विरताविरत गुणस्थान

जो तस-वहाउ विरओ अविरओ तह य थावर-वहाओ।
एक्क-समयम्हि जीवो विरयाविरओ जिणेक्कमई।।112।।

जो जीव जिनेन्द्रदेव में द्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ एक ही समय में त्रस जीवों की हिंसा से विरत और स्थावर जीवों की हिंसा से अविरत होता है, उसको विरताविरत कहते हैं।112।।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान

वत्तावत्त पमाणं जो वसई पमत्तसंजदो होइ।
सयल-गुण-सील-कलिओ महव्वई चित्तलायरणो।।113।।

जो व्यक्त अर्थात् स्वसंवेद्य और अव्यक्त अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानियों के ज्ञान द्वारा जानने योग्य प्रमाद में वास करता है, जो सम्यक्त्व, ज्ञानादि संपूर्ण गुणों से और व्रतों के रक्षण करने में समर्थ ऐसे शीलों से युक्त है, जो (देशसंयत की अपेक्षा) महाव्रती है और जिसका आचरण प्रमाद मिश्रित है अथवा चित्रल सारंग को कहते हैं, इसलिये जिसका आचरण सारंग के समान शवलित अर्थात् अनेक प्रकार का है अथवा चित्त में प्रमाद को उत्पन्न करने वाला जिसका आचरण है, उसे प्रमत्तसंयत कहते हैं।।113।।

प्रमाद के भेद

विकहा तहा कसाया इंदिय-णिद्दा तहेव पणयो य।
चदु-चदु-पणमेगगं होंति पमादा य पण्णरसा।।114।।

स्त्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा और अवनिपालकथा ये चार विकथाएं, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषायें, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ, निद्रा और प्रणय इस प्रकार प्रमाद पन्द्रह प्रकार का होता है।।114।।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

णट्ठासेस-पमाओ वय-गुण-सीलोलि-मंडिओ णाणी।
अणुवसओ अक्खवओ झाण-णिलीणो हु अपमत्तो।।115।।

जिसके व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रकार के प्रमाद नष्ट हो गये हैं, जो व्रत, गुण और शीलों से मण्डित हैं, जो निरन्तर आत्मा और शरीर के भेदविज्ञान से युक्त हैं, जो उपशम और क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ नहीं हुए हैं और जो ध्यान में लवलीन हैं, उन्हें अप्रमत्तसंयत कहते हैं।।115।।

अपूर्वकरण गुणस्थान

भिण्ण-समय-ट्ठिएहि दु जीवेहि ण होइ सव्वदा सरिसो।
करणेहि एक्क-समय-ट्ठिएहि सरिसो विसरिसो य।।116।।

अपूर्वकरण गुणस्थान में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों की अपेक्षा कभी भी सदृश्यता नहीं पाई जाती है, किन्तु एक समयवर्ती जीवों के परिणामों की अपेक्षा सदृशता और विदृशता दोनों ही पाई जाती है।।116।।

एदम्हि गुणट्ठाणे विसरिस-समय-ट्ठिएहि जीवेहि।
पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा।।117।।

इस गुणस्थान में विसदृश अर्थात् भिन्न-भिन्न समय में रहने वाले

जीव, जो पूर्व में कभी भी नहीं प्राप्त हुए थे ऐसे अपूर्व परिणामों को ही धारण करते हैं। इसलिये इस गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है।।।117।।

तारिस-परिणाम-ट्ठिय-जीवा हु जिणेहि गलिय-तिमिरेहि।
मोहस्स पुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जा भणिया।।118।।

पूर्वोक्त अपूर्व परिणामों को धारण करने वाले जीव मोहनीय कर्म की शेष प्रकृतियों के क्षपण अथवा उपशमन करने में उद्यत होते हैं, ऐसा अज्ञानरूपी अन्धकार से सर्वथा रहित जिनेन्द्रदेव ने कहा है।।118।।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

एक्कम्मि काल-समए संठाणादीहि जण णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तह च्चिय परिणामेहि मिहो जे हु।।119।।
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्स एक्क परिणामा।
विमलय-झाण-हुयवह-सिहाहि णिद्दड्ढ-कम्म-वणा।।120।।

अन्तर्मुहूर्त मात्र अनिवृत्तिकरण के काल में से किसी एक समय में रहने वाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीर के आकार, वर्ण आदि रूप से परस्पर भेद को प्राप्त होते हैं, उस प्रकार जिन परिणामों के द्वारा उनमें भेद नहीं पाया जाता है, उनको अनिवृत्तिकरण परिणाम वाले कहते हैं और उनके प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि से बढ़ते हुए एक से ही (समान विशुद्धि को मिलाये हुए) परिणाम पाये जाते हैं तथा वे अत्यन्त निर्मल ध्यानरूप अग्नि की शिखाओं से कर्मवन को भस्म करने वाले होते हैं।।119-120।।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान

पुव्वापुव्व-पद्दय-अणुभागादो अणंत-गुण-हीणे।
लोहाणुम्हि ट्ठियओ हंद सुहुम-संपराओ सो।।121।।

पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धक के अनुभाग से अनन्तगुणे हीन अनुभाग

वाले सूक्ष्म लोभ में जो स्थित है, उसे सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती जीव समझना चाहिये।।121।।

उपशान्तकषाय गुणस्थान

सकयगहलं जलं वा सरए सरवाणियं व मिणम्मलए
सयलोवसंत-मोहो उवसंत-कसायओ होई।।122।।

निर्मली फल से युक्त निर्मल जल की तरह, अथवा शरद् ऋतु में निर्मल होने वाले सरोवर के जल की तरह, संपूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणामों को उपशान्तकषाय गुणस्थान कहते हैं।।122।।

क्षीणकषाय गुणस्थान

णिस्से-खीण-मोहा फलिहामल -भायणुदय-समचित्तो।
खीण-कसाओ-भण्णइ णिग्गंथो वीयराएहि।।123।।

जिसने संपूर्ण अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध रूप मोहनीय कर्म को नष्ट कर दिया है। अतएव जिसका चित्त (आत्मा) स्फटिक मणि के निर्मल भाजन में रखे हुए जल के समान निर्मल है, ऐसे निर्ग्रन्थ को वीतराग देव ने क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती कहा है।।123।।

सयोग केवली गुणस्थान

केवलणाण-दिवायर-किरण-कलाव-प्पणासियण्णाणो।
णव-केवल-लद्धुगम्म-सुजणिय-परमप्प-ववएसो।।124।।
असहाय-णाण-दंसण-सहिओ इदि केवली हु जोएण।
जुत्तो त्ति संजोगो इहिद अणाई-णिहणारिसे उत्तो।।125।।

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की किरणों के समूह से अज्ञान रूपी अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है और जिसने नव केवल लब्धियों के प्रगट

होने से 'परमात्मा' इस संज्ञा को प्राप्त कर लिया है, वह इन्द्रिय आदि की अपेक्षा न रखने वाले ऐसे असहाय ज्ञान और दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और तीनों योगों से युक्त होने के कारण सयोगी कहा जाता है, ऐसा अनादि निधन आर्ष में कहा है।।124-125।।

अयोग केवली गुणस्थान

सेलेसि संपतो णिरुद्ध-णिस्से-आसवो जीवो।
कम्म-रय-विप्पमुक्को गय-जोगो केवली होई।।126।।

जिन्होंने अठारह हजार शील के स्वामीपने को प्राप्त कर लिया है, अथवा जो मेरु के समान निष्कम्प अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं, जिन्होंने संपूर्ण आस्रव का निरोध कर दिया है, जो नूतन बँधने वाले कर्म रज से रहित हैं और जो मन, वचन तथा काय योग से रहित होते हुए केवलज्ञान से विभूषित हैं, उन्हें अयोग केवली परमात्मा कहते हैं।।126।।

सिद्ध का स्वरूप

अट्ठविह-कम्म-विजडा सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठ-गुणा किदिकच्चा लोयग्ग-णिवासिणो सिद्धा।।127।।

जो ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से सर्वथा मुक्त हैं, सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होने से शांति सुख मय हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघु इन आठ गुणों से युक्त हैं, कृतकृत्य हैं और लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।127।।

नारत (नारक) का स्वरूप

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल-भावे य।
अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिया।।128।।

यतः जिस कारण से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो स्वयं तथा परस्पर में कभी भी रमते नहीं, इसलिये उनको नारत कहते हैं।128।।

तिर्यंच का स्वरूप

तिरियंति कुडिल-भावं सुयिड-सण्णा णिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंत-पाव-बहुला तम्हा तेरिच्छया णाम।।129।।

जो मन, वचन और काय की कुटिलता को प्राप्त हैं, जिनकी आहारादि संज्ञाएँ सुव्यक्त हैं, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं और जिनके अत्यधिक पाप की बहुलता पाई जावे उनको तिर्यंच कहते हैं।।129।।

मनुष्य का स्वरूप

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मणु-उब्बभवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिया।।130।।

जिस कारण जो सदा हेय-उपादेय आदि का विचार करते हैं, अथवा जो मन से गुण-दोषादिक का विचार करने में निपुण हैं, अथवा जो मन से उत्कट अर्थात् दूरदर्शन, सूक्ष्म-विचार, चिरकाल धारण आदि रूप उपयोग से युक्त हैं, अथवा जो मनु की सन्तान हैं, इसलिये उन्हें मनुष्य कहते हैं।।130।।

(देवगति के) देव का स्वरूप

दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठहि य दिव्व-भावेहि।
भासंत-दिव्व-काया तम्हा ते वण्णिया देवा।।131।।

क्योंकि वे दिव्यस्वरूप अणिमादि आठ गुणों के द्वारा निरन्तर क्रीड़ा करते हैं और उनका शरीर प्रकाशमान तथा दिव्य है, इसलिये उन्हें देव कहते हैं।।131।।

सिद्धगति का स्वरूप

जाइ-जरा-मरण-भया संजोय-विओय-दुक्ख-सण्णाओ।
रोगादिया य जिस्से ण संति सा होई सिद्धिगई।।132।।

जिससे जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, आहारादि संज्ञाएँ और रोगादिक नहीं पाये जाते हैं, उसे सिद्धगति कहते हैं।।132।।

सम्यग्दृष्टि कहाँ उत्पन्न नहीं होता है ?

छसु हेट्ठिमासु पुढवीस जोइस-वण-भवण-सव्व-इत्थीसु।
णेदुस समुप्पज्जइ समाइट्ठी दु जो जीवो।।133।।

सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथिवी के बिना नीचे की छह पृथिवियों में, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवों में और सर्वप्रकार की स्त्रियों में मरकर उत्पन्न नहीं होता है।।133।।

इन्द्रियों का आकार

जव-णालिया मसूरी चंवद्धइमुत्त-फुल्लु-तुल्लाइं।
इंदिय-संठाणाइं पस्सं पुण णेय-संठाणं।।134।।

श्रोत्र-इन्द्रिय का आकार यव की नाली के समान है, चक्षु-चन्द्रिका का मसूर के समान, रसना-इन्द्रिय का आधे चन्द्रमा के समान, घ्राण-इन्द्रिय का कदम्ब के फूल के समान आकार है और स्पर्शन-इन्द्रिय अनेक आकार वाली है।।134।।

एकेन्द्रिय जीव का स्वरूप

जाणदि पस्सदि भुंजदि सेवदि पासिदिएण एक्केण।
कुणदि य तस्सामित्तं थावरू एइंदिओ तेण।।135।।

क्योंकि स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा ही जानता है, देखता है, भोगता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है, इसलिये

उसे एकेन्द्रिय स्थावर जीव कहा है।।135।।

द्वीन्द्रिय जीव का स्वरूप

कुक्खिकिमि-सिंपि-संखा गूंडूलारिट्ठ-अक्ख-खुल्ला य।
तह य वराडय जीवा णेया बीइंदिया एदे।।136।।

कुक्षि-कृमि अर्थात् पेट के कीड़े, सीप, शंख, गण्डोला अर्थात् उदर में उत्पन्न होने वाली बड़ी कृमि, अरिष्ट नामक एक जीवविशेष अक्ष अर्थात् चन्दनक नामक जलचर जीव विशेष, क्षुल्लक अर्थात् छोटा शंख और कौड़ी आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं।136।।

त्रीन्द्रिय जीव का स्वरूप

कुंथु-पिपीलिक मंकुण-विच्छिअ-जूइंदगोव-गोम्ही य।
उत्तिगणटियादी णेया तीइंदिया जीवा।।137।।

कुन्थु, पिपीलिका, खटमल, बिच्छू, जूं, इन्द्रगोप, कनखजूरा, गर्दभाकार कीट विशेष तथा नट्टियादिक कीट विशेष, ये सब त्रीन्द्रिय जीव हैं।137।।

चतुरिन्द्रिय जीव का स्वरूप

मक्कडय-भमर-महुवर-मसय-पदंगा य सलह-गोमच्छी।
मच्छी संदस कीडा णेया चउरिंदिया जीवा।।138।।

मकड़ी, भौंरा, मधु-मक्खी, मच्छर, पतंग, शलभ, गोमक्खी, मक्खी और दंश से दशने वाले कीड़ों को चतुरिन्द्रिय जीव जानना चाहिए।138।।

पञ्चेन्द्रिय जीव का स्वरूप

संसेदिम-सम्मुच्छिम-उब्भेदिम-ओववादिया चेव।
रस-पोतंडजजरजा पंचिदिया जीवा।।139।।

स्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज, औपपादिक, रसज, पोत, अण्डज और जरायुज ये सब पञ्चेन्द्रिय जीव जानना चाहिए।।139।।

सिद्धों के इन्द्रियव्यापार नहीं

ण वि इंदिय-करण-जुदा अवग्गहादीहि गाहया अत्थे।
णेव य इंदिय-सोक्खा अणिदियाणंत-णाण-सुहा।।140।।

वे सिद्ध जीव इन्द्रियों के व्यापार से युक्त नहीं हैं और अवग्रहादिक क्षायोपशमिक ज्ञान के द्वारा पदार्थों को ग्रहण नहीं करते हैं। उनके इन्द्रिय-सुख भी नहीं है, क्योंकि उनका अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख अनिन्द्रिय है।।140।।

प्राण का स्वरूप

बाहिर-पाणेहि जहा तहेव अब्भतरेहि पाणेहि।
जीवंति जेहि जवा पाणा ते होंति बोद्धवां।।141।।

जिस प्रकार नेत्रों का खोलना, बन्द करना, वचन प्रवृत्ति आदि बाह्य प्राणों से जीव जीते हैं, उसी प्रकार जिन अभ्यन्तर इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशमादि के द्वारा जीव में जीवितपने का व्यवहार हो उनको प्राण कहते हैं ।।141।।

एकेन्द्रियादि के इन्द्रियाँ

एइंदियस फुसणं एक्कं चि य होइ सेस-जीवाणं।
होंति कम-वड्ढियाइं जिब्भा-घाणक्खि-सोत्तइं।।142।।

एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है और शेष जीवों के क्रम से बढ़ती हुई जिह्वा, घ्राण, अक्षि और श्रोत्र इन्द्रियाँ होती हैं।।142।।

मिथ्यादृष्टि जीव

सुत्तो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेय हवदि मिच्छाइट्ठी हु तदो पहुडि जीवो।।143।।

सूत्र से आचार्यादि द्वारा भले प्रकार समझाये जाने पर भी यदि वह जीव विपरीत अर्थ को छोड़कर समीचीन अर्थ का श्रद्धान नहीं करता है, तो उसी समय से वह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है।।143।।

ध्यान से मुक्ति

जह कंचणमिग्ग-गयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह काय-बंध-मुक्का अकाया ज्झाण-जोएण।।144।।

जिस प्रकार अग्नि को प्राप्त हुआ सोना, कीट और कालिमारूप बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के मल से रहित हो जाता है, उसी प्रकार ध्यान के द्वारा यह जीव काय और कर्मरूप बन्ध से मुक्त होकर कायरहित हो जाता है।।144।।

साधारण जीवों का लक्षण

साहारणमाहारो साहारणमाणपाण-गहणं च।
साहारण-जीवाणं साहारण लक्खणं भणियं।।145।।

साधारण जीवों का साधारण ही आहार होता है और साधारण ही श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है। इस प्रकार परमागम में साधारण जीवों का साधारण लक्षण कहा है।।145।।

साधारण जीवों का जन्म-मरण

जत्थेक्कु मरइ जवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं।
वक्कमदि जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थ णंताणं।।146।।

साधारण जीवों में जहाँ पर एक जीव मरण करता है वहाँ पर अनन्त

जीवों का मरण होता है और जहाँ पर एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ पर अनन्त जीवों का उत्पाद होता है।।146।।

एक निगोद शरीर में जीवराशि

एय-णिगोद-सरीरे जीवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धे अणंत-गुणा सव्वेण वितीद-कालेण।।147।।

द्रव्य-प्रमाण की अपेक्षा सिद्धराशि और संपूर्ण अतीत काल से अनन्तगुणे जीव एक निगोद-शरीर में देखे गये हैं।।147।।

नित्य निगोद

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।
भाव-कलंकइपउरा णिगोद-वासं ण मुंचंति।।148।।

नित्य निगोद में ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने अभी तक त्रस पर्याय नहीं पाई है और जो भाव अर्थात् निगोद पर्याय के योग्य कषाय के उदय से उत्पन्न हुई दुर्लेश्यारूप परिणामों से अत्यन्त अभिभूत रहते हैं, इसलिये निगोद-वास को कभी नहीं छोड़ते।।148।।

पृथिवीकायिक जीव

पुढवी य सक्करा वालुअ उवले सिलादि छत्तीसा।
पुढवीमया हु जीवा णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहि।।149।।

जिनेन्द्र भगवान् ने पृथिवी, शर्करा, बालुका, उपल और शिला आदि के भेद से पृथिवीरूप छत्तीस प्रकार के जीव कहे हैं।।149।।

जलकायिक जीव

ओसा हिमो य घूमरि हरदणु सुद्धोदवो घणोदो य।
एदे दु आउकाया जीवा जिण-सासणुद्दिट्ठा।।150।।

ओस, बर्फ, कुहरा, स्थूल बिन्दुरूप जल, सूक्ष्म बिन्दुरूप जल, चद्रकान्तमणि से उत्पन्न हुआ शुद्ध जल, झरना आदि से उत्पन्न हुआ जल, समुद्र, तालाब और घनवात आदि से उत्पन्न हुआ घनोदक अथवा हरदणु अर्थात् तालाब और समुद्र आदि से उत्पन्न हुआ जल तथा घनोदक अर्थात् मेघ आदि से उत्पन्न हुआ जल ये सब जिनशासन में जलकायिक जीव कहे गये हैं।।150।।

अग्निकायिक जीव

इंगाल-जाल-अच्ची मुम्मुर-सुद्धागणी तहा अगणी।
अणणे वि एवमाई ते उक्काया समुद्दिट्ठा।।151।।

अंगार, ज्वाला, अर्चि अर्थात् अग्निकिरण, मर्मुर अर्थात् भूसा अथवा कण्डा की अग्नि, शुद्धाग्नि अर्थात् बिजली और सूर्यकान्त आदि से उत्पन्न हुई अग्नि और धूमादिसहित सामान्य अग्नि, ये सब अग्निकायिक जीव कहे गये हैं।।151।।

वायुकायिक जीव

वाउब्भामो उक्कलि-मंडलि-गुंजा महा घणो य तणू।
एदे दु वाउकाया जीवा जिण-इंद-णिद्दिट्ठा।।152।।

सामान्य वायु, उद्भ्राम अर्थात् घूमता हुआ ऊपर जाने वाले वायु (चक्रवात), उत्कलि अर्थात् नीचे की ओर बहने वाला या जल की तरंगों के साथ तरंगित होने वाला वायु, मण्डलि अर्थात् पृथिवी से स्पर्श करके घूमता हुआ वायु, गुंजा अर्थात् गुंजायमान वायु, महावात अर्थात् वृक्षादि के भंग से उत्पन्न होने वाला वायु, घनवात और तनुवात ये सब वायुकायिक जीव जिनेन्द्र भगवान् ने कहे हैं।।152।।

प्रत्येक जीव एवं उसके भेद

मूलग्ग-पोर-वीया कंदा तह खंघ-वीय-वीयरूहा।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य।।153।।

मूलबीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कन्दबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह और संमूछिम, ये सब वनस्पतियां सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक के भेद से दो प्रकार की कही गई हैं।।153।।

त्रसकायिक जीव

बिहि तीहि चउहि पंचहि सहिया जे इंदिएहि लोयम्मि।
ते तसकाया जीवा णेया बीरोवएसेण।।154।।

लोक में जो जीव दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रियों से युक्त हैं उन्हें वीर भगवान् के उपदेश से त्रसकायिक जीव जानना चाहिये।।154।।

अयोगीजिन का स्वरूप

जेसिं ण सन्ति जोगा सुहासुहा पुण्ण-पाव संजणया।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंत-बल-कलिया।।155।।

जिन जीवों के पुण्य और पाप के उत्पादक शुभ और अशुभ योग नहीं पाये जाते हैं, वे अनुपम और अनन्त-बल सहित अयोगीजिन कहलाते हैं।।155।।

सत्य एवं मृषा मनोयोग

सब्भावो सच्चमणो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो।
तव्विवरीदो मोसा जाणुभयं सच्चमोसं ति।।156।।

सद्भाव अर्थात् सत्यार्थ को विषय करने वाले मन को सत्यमन कहते हैं और उससे जो योग होता है उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत

योग को मृषामनोयोग कहते हैं।।156।।

असत्यमृषा मनोयोग

ण य सच्च-मोस-जुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो जेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो।।157।।

जो मन सत्य और मृषा से युक्त नहीं होता है उसको असत्यमृषामन कहते हैं और उससे जो योग अर्थात् प्रयत्नविशेष होता है उसे असत्यमृषामनोयोग कहते हैं।।157।।

सत्य, मृषा एवं उभय वचन योग

दसविह-सच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगी।
तव्विवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसं ति।।158।।

दश प्रकार के सत्यवचन में वचनवर्गणा के निमित्त से जो योग होता है उसे सत्यवचन योग कहते हैं। उससे विपरीत योग को मृषावचनयोग कहते हैं। सत्यमृषारूप वचन योग को उभयवचनयोग कहते हैं।।158।।

असत्यमृषा वचनयोग

जो णेव सच्च-मोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोग।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादी।।159।।

जो न तो सत्यरूप है और न मृषारूप ही है वह असत्यमृषावचनयोग है। असंज्ञी जीवों की भाषा और संज्ञी जीवों की आमन्त्रणी आदि भाषाएं इसके उदाहरण हैं।।159।।

औदारिक काययोग

पुरुमहमुदारुरालं एयट्ठो तं विजाण तम्हि भवं।
ओरालियं ति वृत्तं ओरालियकायजोगो सो।।160।।

पुरु, महत्, उदार और उराल, ये शब्द एकार्थवाचक हैं। उदार में जो होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं।।160।।

औदारिक मिश्र काययोग

विविह-गुण-इडिढ-जुत्तं वेउव्वियमहव विकिरिया चेव।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सको जोगो।।161।।

औदारिक का अर्थ ऊपर कह आये हैं। वही शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है तब तक मिश्र कहलाता है और उसके द्वारा होने वाले संप्रयोग को औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं।।161।।

वैक्रियिक काययोग

विविह-गुण-इडिढ-जुत्तं वेउव्वियमहव विकिरिया चेव।
तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो।।162।।

नाना प्रकार के गुण और ऋद्धियों से युक्त शरीर को वैगूर्विक अथवा वैक्रियक शरीर कहते हैं और इसके द्वारा होने वाले योग को वैगूर्विककाययोग कहते हैं।।162।।

वैक्रियिक मिश्र काययोग

वेउव्वियमुत्तत्थं विजाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च।
जो तेण संपजोगो वेउव्वियमिस्सको जोगो।।163।।

वैगूर्विक का अर्थ पहले कह ही चुके हैं। वही शरीर जबतक पूर्ण नहीं होता है तब तक मिश्र कहलाता है और उसके द्वारा जो संप्रयोग होता है उसे वैगूर्विकमिश्रकाययोग कहते हैं।।163।।

आहारक काययोग

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अट्ठे सयस्स संदेहे।
गत्ता केवलि-पासं तम्हा आहारको जोगो।।164।।

छटवें गुणस्थानवर्ती मुनि अपने को संदेह होने पर जिस शरीर के द्वारा केवली के पास जाकर सूक्ष्म पदार्थों का आहरण करता है उसे आहारक शरीर कहते हैं। इसलिये उसके द्वारा होने वाले प्रयोग को आहारक काययोग कहते हैं।।164।।

आहारक मिश्र काययोग

आहारयमुत्तत्थं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं ति।
जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सको जोगो।।165।।

आहारक का अर्थ कह आये हैं। वह आहारक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता है तब तक उसको आहारक मिश्र कहते हैं और उसके द्वारा जो संप्रयोग होता है उसे आहारक मिश्र काययोग कहते हैं।।165।।

कार्मण काययोग

कम्मेव च कम्म-भवं कम्मइयं तेण जो दु संजोगो।
कम्मइयकायजोगो एग-विग-विगेसु समएसु।।166।।

ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मस्कन्ध को ही कार्मणशरीर कहते हैं। अथवा नामकर्म से जो उत्पन्न होता है उसे कार्मणशरीर कहते हैं और उसके द्वारा होने वाले योग को कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग एक, दो अथवा तीन समय तक होता है।।।166।।

समुद्घातपूर्वक मुक्त होने वाले जीव

छम्मासाउवसेसे उप्पणणं जस्स केवलं णाणं।
स-समुग्घाओ सिज्झइ सेसा भज्जा समुग्घाए।।167।।

छह माह प्रमाण आयुकर्म के शेष रहने पर जिस जीव को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वह समुद्घात को करके ही मुक्त होता है। शेष जीव समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।।167।।

जेसि आउ-समाइं णामा गोदाणि वेयणीयं च।
ते अकय-समुग्घाया वच्चंतियरे समुग्घाए-।।168।।

जिन जीवों के नाम, गोत्र और वेदनीयकर्म की स्थिति आयुकर्म के समान होती है वे समुद्घात नहीं करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। दूसरे जीव समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं।।168।।

आयुबंध हो जाने पर सम्यग्दर्शन एवं व्रतग्रहण का विधान

चत्तारि वि छेत्ताइं आउग बंधेण होइ सम्मत्तं।
अणुवद-महव्वदाइं ण लहद देवायुगं मोत्तु।।169।।

चारों गति सम्बन्धी आयुकर्म के बन्ध हो जाने पर भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है, परंतु देवायु के बन्ध को छोड़कर शेष तीन आयुकर्म के बन्ध होने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत को ग्रहण नहीं करता है।।169।।

स्त्री का स्वरूप

छादेदि सयं दोसेण यदो छादइ परं हि दोसेण।
छादणसीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी।।170।।

जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असंयम आदि दोषों से अपने को आच्छादित करती है और मधुर संभाषण, कटाक्ष-विक्षेप आदि के द्वारा जो दूसरे पुरुषों को भी अब्रह्म आदि दोषों से आच्छादित करती है, उसको आच्छादनशील होने के कारण स्त्री कहा है।।170।।

पुरुष का स्वरूप

पुरु-गुण-भोगे सेदे करेदि लोगम्हि पुरुगुणं कम्मं।
पुरु उत्तमो य जम्हा सो वण्णिदो पुरिसो।।171।।

जो उत्तम गुण और उत्तम भोगों में सोता है अथवा जो लोक में उत्तम गुणयुक्त कार्य करता है और जो उत्तम है, उसे पुरुष कहा है।।171।।

नपुंसक का स्वरूप

णेवित्थी णेव पुमं णवुंसओ उभय-लिंग-वदिरित्तो।
इट्टावाग-समाणग-वेयण-गरुओ कलसु चित्तो।।172।।

जो न स्त्री है और न पुरुष है, किन्तु स्त्री और पुरुष संबंधी दोनों प्रकार के लिगों से रहित है, अवा की अग्नि के समान तीव्र वेदना से युक्त है और सर्वदा स्त्री और पुरुष विषयक मैथुन की अभिलाषा से उत्पन्न हुई वेदना से जिसका चित्त कलुषित है, उसे नपुंसक कहते हैं।।172।।

वेदरहित जीव

कारिस-तणिट्टवागग्गि-सरिस-परिणम-वेयणुम्मुक्का।
अवगय-वेदा जीवा सग-संभवणंत-वर-सोक्खा।।173।।

जो कारीष (कण्डे की) अग्नि, तृणाग्नि और इष्टापाकाग्नि (अवे की अग्नि) के समान परिणामों से उत्पन्न हुई वेदना से रहित हैं और अपनी आत्मा से उत्पन्न हुए अनन्त और उत्कृष्ट सुख के भोक्ता हैं, उन्हें वेदरहित जीव कहते हैं।।173।।

क्रोध के प्रकार

सिल-पुढवि-भेद-धूली-जल-राई-समाणओ हवे कोहो।
णारय-तिरिय-णरामर-गईसु उप्पायओ कमसो।।174।।

क्रोध कषाय चार प्रकार का है- पत्थर की रेखा के समान, पृथिवी

की रेखा के समान, धूलिरेखा के समान और जलरेखा के समान। ये चारों ही क्रोध क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में उत्पन्न कराने वाले होते हैं।।174।।

मान के प्रकार

सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्तं णियभेएणणुहरंतओ माणो।
णारय-तिरिय-णरामर-गइ-विसयुप्पायओ कमसो।।175।।

मान चार प्रकार का है- पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान तथा बेत के समान। ये चार प्रकार के मान क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के उत्पादक हैं।।175।।

माया के प्रकार

बेलुवमूलोरब्भय - सिंगे गोमुत्तण खोरप्पे।
सरिसी माया णारय-तिरिय-णरामरेसु जणइ जिअ।।176।।

माया चार प्रकार की है- बांस की जड़ के समान, मेढे के सींग के समान, गोमूत्र के समान तथा खुरपा के समान। यह चार प्रकार की माया क्रम से जीव को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में ले जाती है।।176।।

लोभ के प्रकार

किमिराय-चक्क-तणु-मल-हरिद-राएण सरिसओ लोहो।
णारय-तिरिक्ख-माणुस-देवेसुप्पायओ कमसो।।177।।

लोभ चार प्रकार का है- क्रिमिराग के समान, चक्रमल के समान, शरीर के मल के समान और हल्दी के रंग के समान। यह क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति का उत्पादक है।।177।।

अकषाय जीव

अप्प-परोभय-बाधण-बंधासंजम-णिमित्त-कोधादी।
जेसि णत्थि कषाया अमला अकसाइणो जीवा।।178।।

जिनके स्वयं अपने को, दूसरे को तथा दोनों को बाधा देने, बन्ध करने और असंयम करने में निमित्तभूत क्रोधादि कषाय नहीं हैं तथा जो बाह्य और अभ्यन्तर मल से रहित हैं ऐसे जीवों को अकषाय कहते हैं।।178।।

मति-अज्ञान (मत्यज्ञान)

विस-जंत-कूड-पंजर-बंधादिसु विणुवदेस-करणेण।
जा खलु पवत्तइ मदी मदि-अण्णाणे त्ति तं बेंति।।179।।

दूसरे के उपदेश बिना विष, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदि के विषय में जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसको मत्यज्ञान कहते हैं।।179।।

श्रुताज्ञान

आभीयमासुरक्खा भारह-रामायणादि-उवएसा।
तुच्छा असाहणीया सुद-अण्णाणे त्ति तं बेंति।।180।।

चौरशास्त्र, हिंसाशास्त्र, भारत और रामायण आदि के तुच्छ और साधन करने के अयोग्य उपदेशों को श्रुताज्ञान कहते हैं।।180।।

विभंगावधिज्ञान

विवरीयमोहिणाणं खइयुवसमियं च कम्म-बीजं च।
वेभंगो त्ति पउच्चई समत्त-णाणीहि समयम्हि।।181।।

सर्वज्ञों के द्वारा आगम में क्षयोपशमजन्य और मिथ्यात्वादि कर्म के कारण रूप विपरीत अवधिज्ञान को विभंगावधिज्ञान कहा है।।181।।

मतिज्ञान और मतिज्ञान के 336 भेद

अभिमुह-णियमिय-बोहणमाभिणिबोहियमणिदि-इंदियजं।
बहु-ओग्गहाइणा खलु कय-छत्तीस-ति-सय-भेयं।।182।।

मन और इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न हुए अभिमुख और नियमित पदार्थ के ज्ञान को आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। उसके बहु आदिक बारह प्रकार के पदार्थ और अवग्रह आदि की अपेक्षा तीन सौ छत्तीस भेद हो जाते हैं ।।182।।

श्रुतज्ञान एवं उसके भेद

अत्थादो अत्थतर-उवलंभो तं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहिय-पुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुह।।183।।

मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के अवलम्बन से तत्संबंधी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नियम से मतिज्ञानपूर्वक होता है। इसके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक अथवा शब्दजन्य और लिंगजन्य इस प्रकार दो भेद हैं। उनमें शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है।।183।।

अवधिज्ञान एवं उसके भेद

अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणे त्ति वण्णिदं समए।
भव-गुण-पच्चय-विहियं तमोहिणाणे त्ति णं बेंति।।184।।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा जिस ज्ञान के विषय की सीमा हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इसलिये परमागम में इसको सीमाज्ञान कहा है। इसके भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय ये जिनेन्द्रदेव ने दो भेद कहे हैं।।184।।

मनःपर्ययज्ञान

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं।
मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णर-लोए।।185।।

जिसका भूतकाल में चिन्तन किया है, अथवा जिसका भविष्यकाल में चिन्तन होगा, अथवा जो अर्धचिन्तित है इत्यादि अनेक भेदरूप दूसरे के मन में स्थित पदार्थ को जो जानता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान मनुष्यक्षेत्र में ही होता है।।185।।

केवलज्ञान

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त-सव्व-भाव-विदं।
लोगालोग-वितिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वा।।186।।

जो जीव द्रव्य के शक्तिगत सर्वज्ञान के अविभाग-प्रतिच्छेदों के व्यक्त हो जाने के कारण संपूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा नाश हो जाने के कारण जो अप्रतिहत शक्ति है इसलिये समग्र है, जो इन्द्रिय और मन की सहायता से रहित होने के कारण केवल है, जो प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मों के नाश हो जाने से अनुक्रम रहित संपूर्ण पदार्थों में प्रवृत्ति करता है इसलिये असपत्न है और जो लोक और अलोक में अज्ञानरूपी अन्धकार से रहित होकर प्रकाशमान हो रहा है, उसे केवलज्ञान जानना चाहिये।।186।।

सामायिक संयत

संगहिय-सयल-संजममेय-जममणुत्तरं दुरवगम्मं।
जीवो समुव्वहंतो सामाइय-संजदो होई।।187।।

जिसमें समस्त संयमों का संग्रह कर लिया गया है, ऐसे लोकोत्तर और दुरधिगम्य अभेदरूप एक यम को धारण करने वाला जीव सामायिक संयत होता है।।187।।

छेदोपस्थापक संयत

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं।
पंचजमे धम्मे सो छदोवट्ठावओ जीवो।।188।।

जो पुरानी सावद्य व्यापाररूप पर्याय को छेदकर पाँच यमरूप धर्म में अपने को स्थापित करता है, वह जीव छेदोपस्थापक संयमी कहलाता है।।188।।

परिहारविशुद्धि संयत

पंच-समिदो ति-गुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं।
पंच-जमेय-जमो वा परिहारो संजदो सो हु।।189।।

जो पाँच समिति और तीन गुप्तियों से युक्त होता हुआ सदा ही सावद्य योग का परिहार करता है तथा पांच यमरूप छेदोपस्थापना संयम को एक यमरूप सामायिक संयम को धारण करता है, वह परिहारविशुद्धि संयत कहलाता है।।189।।

सूक्ष्मसाम्पराय संयत

अणुलोभं वेदंतो जवो उवसामगो व खवओ वा।
सो सुहुम-सांपराओ जहक्खादेणूणओ किं पि।।190।।

चाहे उपशम श्रेणी का आरोहण करने वाला हो अथवा क्षपक श्रेणी का आरोहण करने वाला हो, परंतु जो जीव सूक्ष्म लोभ का अनुभव करता है, उसे सूक्ष्मसांपरायशुद्धि संयत कहते हैं। यह संयत यथाख्यात संयम से कुछ कम संयम को धारण करने वाला होता है।।190।।

यथाख्यात संयत

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्हि मोहणीयम्हि।
छदुमत्थो व जिणो व जहखादो संजदो सो हु।।191।।

अशुभ मोहनीय कर्म के उपशान्त अथवा क्षय हो जाने पर ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ और तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवर्ती जिन यथाख्यातशुद्धि संयत होते हैं।।191।।

देशविरत जीव

पंच-ति-चउव्विहेहि अणु-गुण-सिक्खा-वएहि संजुत्ता।
वुच्चंति देस-विरया सम्माइट्ठी ज्झारिय-कम्मा।।192।।

जो पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों से संयुक्त होते हुए असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा करते हैं, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत कहे जाते हैं।।192।।

देशविरत के भेद

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य।
बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमण-उद्दिट्ठ देसविरदेदे।।193।।

दार्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत ये देशविरत के ग्यारह भेद हैं।।193।।

असंयत का स्वरूप

जीवा चोद्दस-भेया इंदिय-विसया तहट्ठवीसं तु।
जे तेसु णेव विरदा असंजदा ते मुणेयव्वा।।194।।

जीवसमास चौदह प्रकार के होते हैं और इन्द्रिय तथा मन के विषय अट्ठाईस प्रकार के होते हैं। जो जीव इनसे विरत नहीं हैं, उन्हें असंयत जानना चाहिये।।194।।

चक्षु एवं अचक्षु दर्शन

चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खु-दंसण बेंति।
सेसिंदिय-प्पयासो णादव्वो सो अचक्खु त्ति।।195।।

जो चक्षु इन्द्रिय के द्वारा प्रकाशित होता है अथवा दिखाई देता है उसे चक्षु दर्शन कहते हैं तथा शेष इन्द्रिय और मन से जो प्रतिभास होता है, उसे अचक्षु दर्शन कहते हैं।।195।।

अवधि दर्शन

परमाणु-आदियाइं अंतिम-खंधं ति मुत्ति-दव्वाइं।
तं ओधि-दंसणं पुण जं पस्सई ताइं पच्चक्खं ।।196।।

परमाणु से आदि लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यन्त मूर्त पदार्थों को जो प्रत्यक्ष देखता है, उसे अवधि दर्शन कहते हैं।।196।।

केवल दर्शन

बहुविह बहुप्पायारा उज्जोवा परिमियम्हि खेत्तम्हि।
लोगालोग अतिमिरो जो केवलदंसणुज्जोवो।।197।।

अपने-अपने अनेक प्रकार के भेदों से युक्त बहुत प्रकार के प्रकाश इस परिमित क्षेत्र में ही पाये जाते हैं, परंतु जो केवल दर्शन रूपी उद्योत है वह लोक और अलोक को भी तिमिर रहित कर देता है।।197।।

ज्ञान की सर्वगतता

आदा णाण-पमाणं णाणं णेय-प्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोआलोअं तम्हा णाणं तु सव्व-गयं।।198।।

आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, ज्ञेय लोकालोक प्रमाण है, इसलिये ज्ञान सर्वगत कहा है।।198।।

द्रव्य में अर्थ एवं व्यञ्जन पर्यायें

एय-दवियम्मि जे अत्थ-पज्जया वयण-पज्जया वावि।
तीदाागय-भूदा तावदियं तं हवइ दव्वं।।199।।

एक द्रव्य में अतीत, अनागत और गाथा में आये हुए 'अपि' शब्द से वर्तमान पर्यायरूप जितनी अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्याय हैं तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है।।199।।

कृष्ण लेश्या

चंडो ण मुयदि बैरं भंडण-सीलो य धम्म-दय -रहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेदं तु किण्हस्स।।200।।

तीव्र क्रोध करने वाला हो, बैर को न छोड़े, लड़ना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दया से रहित हो, दुष्ट हो और जो किसी के वश को प्राप्त न हो, ये सब कृष्ण लेश्या वाले के लक्षण हैं।।200।।

मंदो बुद्धि-विहीणो णिव्विण्णाणी य विसय-लोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चे भेज्जो य।।201।।

मन्द अर्थात् स्वच्छन्द हो अथवा काम करने में मन्द हो, वर्तमान कार्य करने में विवेक रहित हो, कला-चातुर्य से रहित हो, पाँच इन्द्रियों के स्पर्शादि बाह्य विषयों में लम्पट हो, मानी हो, मायावी हो, आलसी हो और भीरू हो, ये सब भी कृष्ण लेश्या वाले के लक्षण हैं।।201।।

नील लेश्या

णिद्दा-वंचण-बहुलो घण-घण्णे होइ तिव्व-सण्णो य।
लक्खणमेदं भणियं समासदो णील-लेस्सस्स।।202।।

जो अतिनिद्रालु हो, दूसरों को ठगने में अतिदक्ष हो और धन-धान्य के विषय में जिसकी अतितीव्र लालसा हो, ये सब नील लेश्या वाले के संक्षेप

से लक्षण कहे गये हैं।।202।।

कापोत लेश्या

रूसदि णिंदंदि अण्णे दूसदि बहुसो य सोय-भय-बहुलो।
असुयदि परिभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुसो।।203।।
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पि व परं पि मण्णंतो।
तूसदि अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि वड्ढीओ।।204।।
मरणं पत्थेइ रणे देदि सुबहुअं हि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ अकज्ज-कज्जं लक्खणमेदं तु काउस्स।।205।।

जो दूसरों के ऊपर क्रोध करता है, दूसरे की निन्दा करता है, अनेक प्रकार से दूसरों को दुःख देता है, अथवा दूसरों को दोष लगाता है, अत्यधिक शोक और भय से व्याप्त रहता है, दूसरों को सहन नहीं करता है, दूसरों का पराभव करता है, अपनी नाना प्रकार से प्रशंसा करता है, दूसरों के ऊपर विश्वास नहीं करता है, अपने समान दूसरे को भी मानता है, स्तुति करने वाले के ऊपर संतुष्ट हो जाता है, अपनी और दूसरे की हानि और वृद्धि को नहीं जानता है, युद्ध में मरने की प्रार्थना करता है, स्तुति करने वाले को बहुत धन दे डालता है और कार्य, अकार्य की कुछ भी गणना नहीं करता है, ये सब कापोत लेश्या वाले के लक्षण हैं।।202।।

पीत लेश्या

जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च सव्व-सम-पासी।
दय-दाण-रदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स।।206।।

जो कार्य-अकार्य और सेव्य-असेव्य को जानता है, सबके विषय में समदर्शी रहता है, दया और दान में तत्पर रहता है और मन, वचन तथा काय से कोमल परिणामी होता है, ये सब पीत लेश्या वाले के लक्षण हैं।।206।।

पद्म लेश्या

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुव-कम्मो य खमइ बहुअं पि।
साहु-गुरु-पूजण-रदो लक्खणमेदं तु पम्मस्स।।207।।

जो त्यागी है, भद्रपरिणामी है, निर्मल है, निरन्तर कार्य करने में उद्यत रहता है, जो अनेक प्रकार के कष्टप्रद और अनिष्ट उपसर्गों को क्षमा कर देता है और साधु तथा गुरुजनों की पूजा में रत रहता है, ये सब पद्म लेश्या वाले के लक्षण हैं।।207।।

शुक्ल लेश्या

ण उ कुणइ पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु।
णत्थि य राय-द्दोसा णेहो वि य सुक्क-लेस्सस्स।।208।।

जो पक्षपात नहीं करता है, निदान नहीं बांधता है, सबके साथ समान व्यवहार करता है, इष्ट और अनिष्ट पदार्थों के विषय में राग और द्वेष से रहित है तथा स्त्री, पुत्र और मित्र आदि में स्नेह रहित है, ये सब शुक्ल लेश्या वाले के लक्षण हैं।।208।।

लेश्या रहित जीव

किण्हादि-लेस्स-रहिदा संसार-विणिग्गया अणंत-सुहा।
सिद्धि-पुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा।।209।।

जो कृष्णादि लेश्याओं से रहित हैं, पंच परिवर्तनरूप संसार से पार हो गये हैं, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुख को प्राप्त हैं और जो आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरी को प्राप्त हो गये हैं, उन्हें लेश्यारहित जानना चाहिये।।209।।

एक निगोद शरीर में जीवों की संख्या

एय-णिगोद-सरीरे जवा दव्व-प्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धहि अणंत-गुणा सव्वेण वितीद-कालेण।।210।।

द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा सिद्धराशि से और संपूर्ण अतीत काल से अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में देखे गये हैं।।210।।

भव्य एवं अभव्य जीव

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवति भव-सिद्धा।
तव्विवरीदाभव्वा संसारादो ण सिज्झंति।।211।।

जिन जीवों की अनन्त चतुष्टयरूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों, उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं और इनसे विपरीत अभव्य होते हैं। ये संसार से निकलकर कभी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं होते हैं।।211।।

सम्यक्त्व का स्वरूप

छप्पंच-णव-विहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण व सद्दहणं होइ सम्मत्त।।212।।

जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नव पदार्थों का आज्ञा अथवा अधिगम से श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहते हैं।।212।।

क्षायिक सम्यक्त्व

खीणे दंसण-मोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।
तं खाइय-सम्मत्तं णिच्चं कम्म-क्खवण-हेऊ।।213।।

दर्शन मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है, वह क्षायिक सम्यक्त्व है। जो नित्य है और कर्मों के क्षपण का कारण

है।।213।।

वयणेहि वि होऊहि वि इंदिय-भय-आणएहि रूवेहि।
वीहच्छ-दुगुंछाहि ण सो ते-लोक्केण चालेज्ज।।214।।

श्रद्धान को भ्रष्ट करने वाले वचन या हेतुओं से अथवा इन्द्रियों को भय उत्पन्न करने वाले आकारों से या बीभत्स अर्थात् निन्दित पदार्थों के देखने से उत्पन्न हुई ग्लानि से, किंबहुना तीन लोक से भी वह क्षायिक सम्यग्दर्शन चलायमान नहीं होता है।।214।।

वेदक सम्यक्त्व

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चल-मलिनमगाढं तं वेदग-सम्मत्तमिह मुणसु।।215।।

सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति के उदय से पदार्थों का जो चल, मलिन और अगाढ़रूप श्रद्धान होता है, उसको वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा हे शिष्य! तू समझ।।215।।

उपशम सम्यक्त्व

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थ-सद्दहणं।
उवसम-सम्मत्तमिणं पसण्ण-मल-पंक तोय-समं।।216।।

दर्शन मोहनीय के उपशम से कीचड़ के नीचे बैठ जाने से निर्मल जल के समान पदार्थों का जो निर्मल श्रद्धान होता है, वह उपशम सम्यग्दर्शन है।।216।।

सासादन सम्यग्दृष्टि

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिवदिदो।
सो सासणे त्ति णेयो सादिय मध पारिणामिओ भावो।।217।।

जो सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त हुआ है, उसे

सासादन सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। यह गुणस्थान सादि और पारिणामिक भाव वाला है।।217।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु।
विरदाविरदेण समो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो।।218।।

जिस जीव के जीवादिक तत्त्वों में श्रद्धान और अश्रद्धान रूप भाव है, उसे विरताविरत के समान सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए।।218।।

ण वि जायइ णि मरइ ण वि सुद्धो ण वि य कम्म-उम्मुक्को।
चउगइमज्झत्थे वुण रागाइ-समण्णिो जीवो।।219।।

वह न जन्म लेता है, न मरता है, न शुद्ध होता है और न कर्म से उन्मुक्त होता है, किन्तु वह रागादि से युक्त होकर चारों गतियों में पाया जाता है।।219।।

मिथ्यात्वी जीव

तिण्णि जणा एक्केक्कं दोद्दो णेच्छंति ते तिवग्गा य।
एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावंति मिच्छत्तं।।220।।

ऐसे तीन जन जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों में से किसी एक-एक को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते, दूसरे ऐसे तीन जन जो इन तीनों में से दो-दो को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करते तथा कोई ऐसा भी जीव हो जो तीनों को (मोक्षमार्ग) स्वीकार नहीं करता, ये सातों जीव मिथ्यात्वी हैं।।220।।

समनस्क एवं अमनस्क

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च।
सिक्खदि णामेणेदि य सो समणो असमणो य विवरीदो।।221।।

जो कार्य करने से पूर्व कार्य और अकार्य का तथा तत्त्व और अतत्त्व का विचार करता है, दूसरों के द्वारा दी गई शिक्षाओं को सीखता है और नाम लेने पर आ जाता है, वह समनस्क है और जो इससे विपरीत है, वह अमनस्क है।।221।।

धवला पुस्तक

2

बीस प्ररूपणा

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवजोगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया।।222।।

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएँ और उपयोग, इसप्रकार क्रम से बीस प्ररूपणाएँ कही गई हैं।।222।।

संज्ञा का स्वरूप एवं भेद

इह जाहि वाहिया वि य, जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
सेवंता वि य उभये, ताओ चत्तारि सण्णाओ।।223।।

इस लोक में जिनसे बाधित होकर तथा जिनका सेवन करते हुए ये जीव दोनों लोकों में दारुण दुःख को प्राप्त होते हैं, उन्हें संज्ञा कहते हैं। उसके चार भेद हैं– आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा।।223।।

आहार संज्ञा

आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
सादिदरुदीरणाए, हवदि हु आहारसण्णा हु।।224।।

आहार के देखने से, उसका उपयोग होने से, पेट के खाली होने से तथा असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा होने से जीव के नियम से आहार संज्ञा होती है।।224।।

भय संज्ञा

अइभीमदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए।
भयकम्मुदीरणाए, भयसण्णा जायदे चदुहि।।225।।

अत्यन्त भयानक पदार्थों के देखने से, उनका ख्याल होने से, शक्ति के हीन होने से और भय कर्म की उदीरणा होने से इन चार कारणों से भय संज्ञा उत्पन्न होती है।।225।।

मैथुन संज्ञा

पणिदरसभोयणेण य, तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए।
वेदस्सुदीरणाए, मेहुणसण्णा हवदि एवं।।226।।

स्वादिष्ट और गरिष्ठ रस युक्त पदार्थों का भोजन करने से, उस ओर उपयोग होने से, कुशील का सेवन करने से और वेदकर्म की उदीरणा होने से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।।226।।

परिग्रह संज्ञा

उवयरणदंसणेण य, तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य।
लोहस्सुदीरणाए, परिग्गहे जायदे सण्णा।।227।।

भोगोपभोग के उपकरण देखने से, उनका ख्याल होने से, मूर्च्छा के होने से और लोभ कर्म की उदीरणा होने से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है।।227।।

उपयोग का लक्षण एवं भेद

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स जो दु उवजोगो।
सो दुविहो णायव्वो, सायारो चेव अणायारो।।228।।

वस्तु को ग्रहण करने के लिये जीव का जो भाव होता है, उसे उपयोग कहते हैं। उसके दो भेद हैं– साकार और निराकार।।228।।

साकार उपयोग का स्वरूप

मदिसुदओहिमणेहि य, सग सग विसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालं, उवजोगो सो दु सायारो।।229।।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त अपने-अपने विषय का जो विशेष ज्ञान होता है, उसे साकार उपयोग कहते हैं।।229।।

निराकार उपयोग का स्वरूप

इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालं, उवजोगो सो अणायारो।।230।।

इन्द्रिय, मन और अवधि के द्वारा अन्तमुहूर्त काल पर्यन्त पदार्थों की विशेषता किये बिना जो ग्रहण होता है, उसे निराकार उपयोग कहते हैं।।230।।

केवली के युगपत् उपयोग

सागारमणागारं केवलिणं युगवदेव उवओगे।
सादी अणंतकालो पच्चक्खो सव्वभावगदो।।231।।

केवलियों का साकार और अनाकार उपयोग एकसाथ होता है। वह सादि होकर भी अनन्त काल तक रहने वाला होता है और वह प्रत्यक्ष सब पदार्थों को ग्रहण करने वाला होता है।।231।।

जीवसमास का लक्षण

जेहिं अणेया जीवा, णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी।
ते पुण संगहिदत्था, जीवसमासात्ति विण्णेया।।232।।

जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जातियाँ मानी जाती हैं, अनेक अर्थों के संग्रह करने वाले उन धर्मों को जीवसमास

कहते हैं, ऐसा जानना चाहिये।।232।।

जीवसमास के भेद

बादरसुहुमेइंदिय, बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णी य।
पज्जत्तापज्जत्ता, एवं ते चोद्दसा होंति।।233।।

बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये सातों प्रकार के जीव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के होते हैं। इसलिये जीवसमास के कुल भेद चौदह बतलाये हैं।।233।।

पर्याप्तियों के स्वामी

आहार-सरीरिंदिय-पज्जत्ती आणपाण-भास-मणो।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदिय-विगल-सण्णीणं।।234।।

आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनापान, भाषा और मन ये छह पर्याप्तियां हैं। उनमें से एकेन्द्रिय जीवों के चार, विकलत्रय और असंज्ञी पंचेन्द्रियों के पाँच और संज्ञी जीवों के छह पर्याप्तियां होती हैं।।234।।

पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक जीव

जह पुण्णापुण्णाइं गिह-घड-वत्थाइयाइं दव्वाइं।
तह पुण्णापुण्णाओ पज्जत्तियरा मुणेयव्वा।।235।।

जिसप्रकार गृह, घट और वस्त्र आदि द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकार के होते हैं, उसीप्रकार जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकार के होते हैं। उनमें से पूर्ण जीव पर्याप्तक और अपूर्ण जीव अपर्याप्तक कहलाते हैं।।235।।

दश प्राण के नाम

पंचेविंदिय-पाणा मण-वचि-काएण तिण्णि बलपाणा।
आणावाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दस पाणा।।236।।

पाँचों ही इन्द्रियां, मनोबल, वचनबल और कायबल ये तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण हैं।।236।।

पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक में प्राण

दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्स वे ऊणा।
पज्जत्तेसिदरेसु य सत्त दुगे सेसगेगूणा।।236।।

संज्ञी जीवों के दश प्राण होते हैं। शेष जीवों के एक-एक प्राण कम करना चाहिये, किन्तु अन्तिम अर्थात् एकेन्द्रिय जीवों के दो प्राण कम होते हैं। यह क्रम पर्याप्तकों का है, किन्तु अपर्याप्तक जीवों में संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रियों के सात-सात प्राण होते हैं तथा शेष जीवों के उत्तरोत्तर एक-एक कम प्राण होते हैं।।236।।

नरकों में लेश्या

काऊ काऊ तह काऊ णीला य णीलकिण्हा य।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं।।237।।

कापोत, कापोत, कापोत और नील, नील, नील और कृष्ण, कृष्ण तथा परम कृष्ण लेश्या प्रथमादि पृथिवियों में क्रमशः जानना चाहिये।।237।।

लेश्याओं का वर्ण

किण्हा भमरसवण्णा णीला पुण णीलगुलियसंकासा।
काऊ कओदवण्णा तेऊ तवणिज्जवण्णा य।।238।।

पम्मा पउमसवण्णा सुक्का पुण कासकुसुमसंकासा।
किण्हादि-दव्वलेस्सा-वण्णविसेसो मुणेयव्वो।।239।।

कृष्ण लेश्या भौंरे के समान अत्यन्त काले वर्ण की होती है, नील लेश्या नील की गोली के समान नील वर्ण की होती है। कापोत लेश्या कपोत वर्ण वाली होती है, तेजोलेश्या सोने के समान वर्ण वाली होती है, पद्म लेश्या पद्म के समान वर्ण वाली होती है और शुक्ल लेश्या कास के फूल के समान श्वेत वर्ण की होती है। इस प्रकार कृष्णादि द्रव्य लेश्याओं के वर्ण विशेष जानना चाहिए।।238-239।।

भाव लेश्या

णिम्मूलखंधसाहुवसाहं उच्चित्तु वाउपडिदाइं।
अब्भंतरलेस्साणं भिंदइ एदाइं वयणाइं।।240।।

जड़-मूल से वृक्ष को काटो, स्कन्ध से काटो, शाखाओं से काटो, उपशाखाओं से काटो, फलों को तोड़कर खाओ और वायु से पतित फलों को खाओ, इस प्रकार के ये वचन अभ्यन्तर अर्थात् भाव लेश्याओं के भेद को प्रकट करते हैं।।240।।

शुभ लेश्यायें

तेऊ तेऊ तह तेऊ पम्मा पम्मा य पम्म-सुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का लेस्ससमासो मुणेयव्वो।।241।।
तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्साभेदो मुणेयव्वो।।242।।

तीन के तेजो लेश्या का जघन्य अंश, दो के तेजो लेश्या का मध्यम अंश, दो के तेजो लेश्या का उत्कृष्ट एवं पद्म लेश्या का जघन्य अंश, छह के पद्म लेश्या का मध्यम अंश, दो के पद्म लेश्या का उत्कृष्ट एवं शुक्ल लेश्या का जघन्य अंश, तेरह के शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश

तथा चौदह के परम शुक्ल लेश्या होती है। इस प्रकार तीनों शुभ लेश्याओं का भेद जानना चाहिए।।241-242।।

लेश्या का लक्षण एवं भेद

लेस्सा य दव्वभावं कम्मं णोकम्ममिस्सयं दव्वं।
जीवस्स भावलेस्सा परिणामो अप्पणो जो सो।।243।।

लेश्या दो प्रकार की है, द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। नोकर्म वर्गणाओं से मिश्रित कर्म वर्गणाओं को द्रव्य लेश्या कहते हैं तथा जीव का कषाय और योग के निमित्त से होने वाला जो आत्मिक परिणाम है, वह भाव लेश्या कहलाती है।।243।।

मणपज्जवपरिहारा उवसमसम्मत्त दोण्णि आहारा।
एदेसु एक्कपयदे णत्थि त्ति य सेसयं जाणे।।244।।

मन:पर्यय ज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम, प्रथमोपशम सम्यक्त्व, आहारक काय योग और आहारक मिश्र काय योग इनमें से किसी एक के प्रकृत होने पर शेष के आलाप नहीं होते, ऐसा जानना चाहिए।।244।।

धवला पुस्तक

3

जीव द्रव्य का स्वरूप

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।1।।

जो रस रहित है, रूप रहित है, गन्ध रहित है, अव्यक्त अर्थात् स्पर्श गुण की व्यक्ति से रहित है, चेतना गुण युक्त है, शब्द पर्याय से रहित है, जिसका लिंग (इन्द्रिय) के द्वारा ग्रहण नहीं होता है और जिसका संस्थान अनिर्दिष्ट है अर्थात् सब संस्थानों से रहित जिसका स्वभाव है उसे जीव द्रव्य जानो।।1।।

षड्विध पुद्गल द्रव्य

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय-कम्म-परमाणू।
छव्विहमेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं।।2।।

जिनेन्द्रदेव ने पृथिवी, जल, छाया, नेत्र, इन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों के विषय, कर्म और परमाणु, इसप्रकार पुद्गल द्रव्य छह प्रकार का कहा है।।2।।

द्रव्य का लक्षण

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा।।3।।

जो नैगमादि नय और उनकी शाखा, उपशाखा रूप उपनयों के विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न सम्बन्ध रूप समुदाय है, उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य कथंचित् एकरूप और कथंचित् अनेकरूप

है।।3।।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ।।4।।

एक द्रव्य में अतीत, अनागत और 'अपि' शब्द से वर्तमान पर्यायरूप जितने अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय हैं, तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है।।4।।

द्रव्य की एकानेकता

नानात्मतामप्रजहत्तदेकमेकात्मतामप्रजहच्च नाना।
अंगांगिभावात्तव वस्तु यत्तत् क्रमेण वाग्वाच्यमनन्तरूपम्।।5।।

अपने गुणों और पर्यायों की अपेक्षा नाना स्वरूपता को न छोड़ता हुआ वह द्रव्य एक है और अन्वयरूप से एकपने को नहीं छोड़ता हुआ वह अपने गुणों और पर्यायों की अपेक्षा नाना है। इसप्रकार अनन्तरूप जो वस्तु है वही, हे जिन! आपके मत में क्रमशः अंगांगीभाव से वचनों द्वारा कही जाती है।।5।।

समास के प्रकार

बहुव्रीह्यव्ययीभावौ द्वन्द्वतत्पुरुषो द्विगुः।
कर्मधारय इत्येते समासाः षट् प्रकीर्तिताः।।6।।

बहुव्रीहि, अव्ययीभाव, द्वन्द्व, तत्पुरुष, द्विगु और कर्मधारय इसप्रकार ये छह समास कहे गये हैं।।6।।

समासों के लक्षण

बहुरथों बहुव्रीहिः परं तत्पुरुषस्य च।
पूर्वमव्ययीभावस्य द्वन्द्वस्य तु पदे पदे ।।7।।

अन्य अर्थ प्रधान बहुव्रीहि समास है। उत्तर पदार्थ प्रधान तत्पुरुष समास है। अव्ययीभाव समास में पूर्व पदार्थ प्रधान है। द्वन्द्व समास की प्रत्येक पद में प्रधानता रहती है।।7।।

अनन्त के भेद

णामं ठवणा दवियं सस्सद गणनापदेसियमणंतं।
एगो उभयादेसो वित्थारो सव्व भावो य।।8।।

नामानन्त, स्थापनानन्त, द्रव्यानन्त, शाश्वतानन्त, गणनानन्त, अप्रदेशिकानन्त, एकानन्त, उभयानन्त, विस्तारानन्त, सर्वानन्त और भावानन्त इस प्रकार अनन्त के ग्यारह भेद हैं।।8।।

आगम का स्वरूप

पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः।।9।।

पूर्वापर विरुद्धादि दोषों के समूह से रहित और संपूर्ण पदार्थों के द्योतक आप्त वचन को आगम कहते हैं।।9।।

आप्त का स्वरूप

आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयं विदुः।
त्यक्तदोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात्।।10।।

आप्त के वचन को आगम जानना चाहिये और जिसने जन्म, जरा आदि अठारह दोषों का नाश कर दिया है, उसे आप्त जानना चाहिये। इसप्रकार जो त्यक्त दोष होता है, वह असत्य वचन नहीं बोलता है, क्योंकि उसके असत्य वचन बोलने का कोई कारण ही संभव नहीं है।।10।।

रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतम्।
यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतकारणं नास्ति।।11।।

राग से, द्वेष से अथवा मोह से अत्सत्य वचन बोला जाता है, परंतु जिसके ये रागादि दोष नहीं रहते हैं, उसके असत्य वचन बोलने का कोई कारण भी नहीं पाया जाता है।।11।।

अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च।।12।।

अप्रकृत विषय के निवारण करने के लिये, प्रकृत विषय के प्ररूपण करने के लिये, संशय का विनाश करने के लिये और तत्त्वार्थ का निश्चय करने के लिए यहाँ पर सभी अनन्तों का कथन किया है।।12।।

निक्षेप की उपयोगिता

जत्थ बहू जाणेज्जो अपरिमिदं तत्थ णिक्खिवे सूरी।
जत्थ बहुअं ण जाणइ चउत्थवो तत्थ णिक्खेवो।।13।।

जहाँ जीवादि पदार्थों के विषय में बहुत जानना चाहे, वहाँ पर आचार्य सभी का निक्षेप करे तथा जहाँ पर बहुत न जाने, तो वहाँ पर चार निक्षेप अवश्य करना चाहिये।।13।।

प्रमाण-नयनिक्षेपैर्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते।
युक्तं चायुक्तवद् भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत्।।14।।

प्रमाण, नय और निक्षेपों के द्वारा जिस पदार्थ की समीक्षा नहीं की जाती है, उसका अर्थयुक्त होते हुए भी अयुक्तसा प्रतीत होता है और कभी अयुक्त होते हुए भी युक्तसा प्रतीत होता है।।14।।

प्रमाण, नय एवं निक्षेप

ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः।।15।।

विद्वान् पुरुष सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, नामादि के द्वारा वस्तु में भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते हैं और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। इसप्रकार युक्ति से अर्थात् प्रमाण, नय और निक्षेप के द्वारा पदार्थ का ग्रहण अथवा निर्णय करना चाहिये ।।15।।

सिद्धा णिगोदजीवा वणप्फदी कालो य पोग्गला चेव।
सव्वमलोगागासं छप्पेदे णंतपक्खेवा।।16।।

तीन बार वर्गित संवर्गित राशि में सिद्ध, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक, पुद्‌गल, काल के समय और अलोकाकाश ये छहों अनन्त राशियाँ मिला देना चाहिये।।16।।

सुहुमो य हवदि कालो तत्तो य सुहुमदरं हवदि खेत्तं।
अंगुल-असंखभागे हवंति कप्पा असंखेज्जा।।17।।

काल प्रमाण सूक्ष्म है और क्षेत्र प्रमाण उससे भी सूक्ष्म है, क्योंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग में असंख्यात कल्प होते हैं।।17।।

सुहुमं तु हवदि खेत्तं तत्तो य सुहुमदरं हवदि दव्वं।
खेत्तंगुला अणंता एगे दव्वंगुले होंति।।18।।

क्षेत्र सूक्ष्म होता है और उससे भी सूक्ष्मतर द्रव्य होता है, क्योंकि एक द्रव्यांगुल में अनन्त क्षेत्रांगुल होते हैं।।18।।

धम्माधम्मागासा तिण्णि वि तुल्लाणि होंति थोवाणि।
वड्ढीसु जीवपोग्गलकालागासा अणंतगुणा।।19।।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और लोकाकाश ये तीनों ही समान होते हुए स्तोक हैं तथा जीव द्रव्य, पुद्‌गल द्रव्य, काल के समय और आकाश के

प्रदेश, ये उत्तरोत्तर वृद्धि की अपेक्षा अनन्त गुणे हैं।।19।।

पत्थो तिहा विहत्तो अणागदो वट्टमाणतीदो य।
एदेसु अदीदेण दु मिणिज्जिदे सव्वबीजं तु।।20।।

प्रस्थ तीन प्रकार का है– अनागत, वर्तमान और अतीत। इनमें से अतीत प्रस्थ के द्वारा संपूर्ण बीज मापे जाते हैं।।20।।

काल के भेद

कालो तिहा विहत्तो अणागदो वट्टमाणतीदो य।
एदेसु अदीदेण दु मिणिज्जदे जीवरासी दु।।21।।

काल तीन प्रकार का है– अनागत काल, वर्तमान काल और अतीत काल। इनमें से अतीत काल के द्वारा संपूर्ण जीवराशि का प्रमाण जाना जाता है।।21।।

मिथ्यादृष्टि जीवराशि

पत्थेण कोदवेण व जह कोइ मिणेज्ज सव्वबीजाइं।
एवं मिणिज्जमाणे हवंति लोगा अणंता दु।।22।।

जिस प्रकार कोई प्रस्थ से कोदों के समान संपूर्ण बीजों का माप करता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवराशि की लोक से अर्थात् लोक के प्रदेशों से तुलना करने पर मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण लाने के लिये अनन्त लोक होते हैं, अर्थात् अनन्त लोक प्रमाण मिथ्यादृष्टि जीवराशि है।।22।।

लोगागासपदेसे एक्केक्के णिक्खिववेवि तह दिट्ठिं।
एवं गणिज्जमाणे हवंति लोगा अणंता दु।।23।।

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक मिथ्यादृष्टि जीव को निक्षिप्त करें। इसप्रकार पूर्वोक्त लोक प्रमाण के क्रम से गणना करते जाने पर अनन्त लोक हो जाते हैं।।23।।

अवहारवड्ढिरूवाणवहारादो हु लद्धअवहारो।
रूवहिणो हाणिए होदि हु वड्ढीए विवरीदो।।24।।

भागहार में उसी के वृद्धिरूप अंश के रहने पर भाग देने से जो लब ध भागहार (हर) आता है, वह हानि में रूपाधिक और वृद्धि में इससे विपरीत अर्थात् एक कम होता है।।24।।

अवहार विसेसेण य छिण्णवहारादु लद्धरूवा जे।
रूवाहियाऊणा वि य अवहारा हाणिवड्ढीणं।।25।।

भागहार विशेष से भागहार को छिन्न अर्थात् भाजित करने पर जो संख्या लब्ध आती है, उसे रूपाधिक अथवा रूपन्यून कर देने पर वह क्रम से हानि और वृद्धि में भागहार होता है।।25।।

लद्धविसेसच्छिण्णं लद्धं रूवाहिऊणयं चावि।
अवहारहाणिवड्ढीणवहारो सो मुणेयव्वो।।26।।

लब्ध विशेष से लब्ध को छिन्न अर्थात् भाजित करने पर जो संख्या उत्पन्न हो, उसे एक अधिक अथवा एक कम कर देने पर वे दोनों क्रम से भागहार की हानि और वृद्धि के भागहार होते हैं।।26।।

लद्धंतरसंगुणिदे अवहारे भज्जमाणरासिम्हि।
पक्खित्ते उप्पज्जइ लद्धस्सहियस्स जो रासी।।27।।

जो लब्ध राशियों के अन्तर से भागहार को गुणित करके और इससे जो उत्पन्न हो, उसे भज्यमान राशि में मिला देने पर अधिक लब्ध की जो भज्यमान राशि होगी वह उत्पन्न होती है।।27।।

हारान्तरहतहाराल्लब्धेन हतस्य पूर्वलब्धस्य।
हारहतभाज्यशेषः स चान्तरं हानिवृद्धी स्तः।।28।।

हारान्तर से अर्थात् हार के एक खंड से हार को अपहत करके जो लब्ध आवे, उससे पूर्व लब्ध को गुणित करने पर उत्पन्न हुई राशि का

(और नये लब्ध का) भागहार से भाजित भाज्य-शेष ही अन्तर है, जो हानि और वृद्धि रूप होता है।।28।।

अवयणरासिगुणिदो अवणयणेणूणएण लद्धेण।
भजिदो हु भागहारो पक्खेवो होदि अवहारे।।29।।

भागहार को अपनयन राशि से गुणा कर देने पर और अपनयन राशि को लब्ध राशि में से घटाकर जो शेष रहे उसका भाग दे देने पर जो लब्ध आता है, वह भागहार में प्रक्षेप राशि होती है।।29।।

पक्खेवरासिगुणिदो पक्खेवेणाहिएण लद्धेण।
भाजिओ हु भागहारो अवणेज्जो होइ अवहारे।।30।।

भागहार को प्रक्षेप राशि से गुणा कर देने पर और प्रक्षेप से अधिक लब्ध राशि का भाग देने पर जो लब्ध आता है, वह भागहार में अपनेय राशि होती है।।30।।

जे अहिया अवहारे रूवा तेहि गुणित्तु पुव्वफलं।
अहियवहारेण हिए लद्धं पुव्वफलं ऊणं।।31।।

भागहार में जिनती अधिक संख्या होती है, उससे पूर्व फल को गुणित करके तथा अधिक अवहार से हृत अर्थात् भाजित करने पर जो आवे उसे पूर्वफल में से घटा देने पर नया लब्ध आता है ।।31।।

जे ऊणा अवहारे रूवा तेहिं गुणित्तु पुव्वफलं
ऊणवहारेण हिए लद्धं पुव्वफलं अहियं।।32।।

भागहार में जितनी न्यून संख्या होती है उससे पूर्वफल को गुणित करके तथा न्यून भागहार से हृत करने पर जो आवे, उसे पूर्वफल में जोड़ देने पर नया लब्ध आता है।।32।।

आवलि आदि का प्रमाण

आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो।
सत्तुस्सासो थोवो सत्तत्थोवा लवो एक्को।।33।।

असंख्यात समयों की एक आवली होती है। संख्यात आवलियों के समूह को एक उच्छ्वास कहते हैं। सात उच्छ्वासों का एक स्तोक होता है और सात स्तोकों का एक लव होता है।।33।।

अट्ठत्तीसद्धलवा णाली वे णालिया मुहुत्तो दु।
एगसमएण हीणो भिण्णमुहुत्तो भवे सेसं।।34।।

साढ़े अड़तीस लवों की एक नाली होती है और दो नालियों का एक मुहूर्त होता है तथा मुहूर्त में से एक समय कम करने पर भिन्न मुहूर्त होता है और शेष अर्थात् दो, तीन आदि समय कम करने पर अन्तर्मुहूर्त होते हैं।।34।।

प्राण का लक्षण

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य जिणेहि जंतुस्स।
उस्सासो णिस्सासो एगो पाणो त्ति आहिदो एसो।।35।।

जो सुखी है, आलस्य रहित है और रोगादि की चिन्ता से मुक्त है, ऐसे प्राणी के श्वासोच्छ्वास को एक प्राण कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।।35।।

मुहूर्त का प्रमाण

तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाणि तेहत्तरि च उस्सासा ।
एगो होदि मुहुत्तो सव्वेसि चेव मणुयाण।।36।।

सभी मनुष्यों के तीन हजार सात सौ तेहत्तर (3773) उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है।।36।।

सासादन आदि का अवहार काल

वत्तीस सोलस चत्तारि जाण सदसहिदमट्ठवीसं च।
एदे अवहारद्ध हवंति संदिट्ठिणा दिठ्ठा।।37।।

सासादन सम्यग्दृष्टि संबन्धी अवहार काल का प्रमाण 32, सम्यग्मिथ्यादृष्टि संबन्धी अवहार काल का प्रमाण 4 और संयतासंयत संबन्धी अवहार काल का प्रमाण 128 जानना चाहिये। सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा देखे गये ये अवहारार्थ।।37।।

पल्योपम का प्रमाण

पण्णट्ठी च सहस्सा पंचसया खलु छउत्तरा तीसं।
पलिदोवमं तु एदं वियाण संदिट्ठिणा दिट्ठं।।38।।

पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस (65536) को पल्योपम जानना चाहिये ऐसा सम्यग्ज्ञानियों ने अवलोकन किया है।।38।।

सासादन से संयतासंयतों तक का प्रमाण

विसहस्सं अडयालं छण्णउदी चेय चदुसहस्साणि।
सोलससहस्साणि पुणो तिण्णिसया चउरसीदी या।।39।।
पंचसय वारसुत्तरमुद्दिट्ठाइं तु लद्धदव्वाइं।
सासणमिस्सासंजद-विरदाविरदाण णु कमेण।।40।।

सासादन सम्यग्दृष्टि जीवराशि का प्रमाण 2048, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण 4096, असंयत सम्यग्दृष्टि जीवराशि का प्रमाण 16384 और संयतासंयत जीवराशि का प्रमाण 512 आता है।।39-40।।

प्रमत्तसंयत एवं अप्रमत्तसंयतों का प्रमाण

तिगधिय-सद णवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त वे कोडी।
पंचेव य तेणउदी णवट्ठ विसया छउत्तरा चेय।।41।।

प्रमत्तसंयत जीवों का प्रमाण पाँच करोड़ तेरानवे लाख अट्ठानवे हजार दो सौ छह है और अप्रमत्तसंयत जीवों का प्रमाण दो करोड़ छियानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन है।।41।।

उपशम श्रेणी आरोहकों का प्रमाण

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य वादालं।
अडयालं चउवण्णं चउवण्णं होइ अंतिमए।।42।।

निरन्तर आठ समय पर्यन्त उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों में अधिक से अधिक प्रथम समय में सोलह, दूसरे समय में चौबीस, तीसरे समय में तीस, चौथे समय में छत्तीस, पांचवे समय में ब्यालीस, छठे समय में अड़तालीस, सातवें समय में चौवन और अन्तिम अर्थात् आठवें समय में भी चौवन जीव उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं।।42।।

क्षपक श्रेणी आरोहकों का प्रमाण

वत्तीसमट्ठदालं सट्ठी वाहत्तरी च चुलसीई।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसदमट्ठुत्तरसयं च बोधव्वं।।43।।

निरन्तर आठ समय पर्यन्त क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों में पहले समय में बत्तीस, दूसरे समय में अड़तालीस, तीसरे समय में साठ, चौथे समय में बहत्तर, पाँचवे समय में चौरासी, छठे समय में छियानवे, सातवे समय में एक सौ आठ और आठवें समय में भी एक सौ आठ जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं, ऐसा जानना चाहिये।।43।।

उपशामकों एवं क्षपकों का प्रमाण

उत्तरदलहयगच्छे पचयदलूणे सगादिमेत्थ पुणो।
पक्खिविय गच्छगुणिदे उवसम-खवगाण परिमाणं।।44।।

उत्तर अर्थात् प्रचय को आधा करके और उसे गच्छ से गुणित करने

पर जो लब्ध आवे उसमें से प्रचय का आधा घटा देने पर और फिर स्वकीय आदि प्रमाण को इसमें जोड़ देने पर उत्पन्न राशि के पुनः गच्छ से गुणित करने पर उपशामक और क्षपकों का प्रमाण आता है।।44।।

उपशमकों के प्रमाण में मतान्तर

तिसदं वदंति केइं चउरुत्तरमत्थपंचयं केइं।
उवसामगेसु एदं खवगाणं जाण तद्दुगुणं।।45।।

कितने ही आचार्य उपशामक जीवों का प्रमाण तीन सौ कहते हैं, कितने ही आचार्य तीन सौ चार कहते हैं और कितने ही आचार्य तीन सौ चार में से पाँच कम अर्थात् दो सौ निन्यानवे कहते हैं। इस प्रकार यह उपशामक जीवों का प्रमाण है। क्षपकों का इससे दूना जानो।।45।।

चउरुत्तरतिण्णिसयं पमाणमुवसामगाण केई तु।
तं चेव यं पंचूणं भणंति केइं तु परिमाणं।।46।।

कितने ही आचार्य उपशामक जीवों का प्रमाण 304 कहते हैं और कितने ही आचार्य पाँच कम तीन सौ चार अर्थात् 299 कहते हैं।।46।।

एक्केक्कगुणट्ठाणे अट्ठसु समएसु संचिदाणं तु।
अट्ठसय सत्तणउदी उवसम-खवगाण परिमाणं।।47।।

एक-एक गुणस्थान में आठ समय में संचित हुए उपशामक और क्षपक जीवों का परिमाण आठ सौ सत्तानवे है।।47।।

सयोगी जीवों का प्रमाण

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साइं।
संखा जोगिजिणाणं पंचसद विउत्तरं जाण।।48।।

सयोगी जीवों की संख्या आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो जानो।।48।।

यथाख्यात संयमी जीवों की संख्या

अट्ठेव सयसहस्सा णवणउदिसहस्स चेव णवयसया।
सत्ताणउदी य तहा जहक्खादा होंति ओघेण।।49।।

सामान्य से यथाख्यात संयमी जीव आठ लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे होते हैं।।49।।

उपशम एवं क्षपकों का कुल परिमाण

णव चेव सयसहस्सा छव्वीससया य होंति अडसीया।
परिमाणं णायव्वं उवसम-खवगाणमेदं तु।।50।।

उपशमक और क्षपक जीवों का परिमाण नौ लाख दो हजार छह सौ अठासी जानना चाहिये।।।50।।

सर्व संयत जीवों का प्रमाण

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।
तिगभजिदा विगगुणिदापमत्तरासी पमत्ता दु।।51।।

जिस संख्या के आदि में सात हैं, अन्त में आठ हैं और मध्य में छह बार नौ हैं, उतने अर्थात् आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे सर्व संयत हैं।।51।।

(इनमें से उपशमक और क्षपकों का प्रमाण 902688 निकालकर जो राशि शेष रहे उसमें) तीन का भाग देने पर 29699103 अप्रमत्तसंयत होते हैं और अप्रमत्तसंयतों के प्रमाण को दो से गुणा कर देने पर 59398206 प्रमत्तसंयत होते हैं।।51।।

प्रमत्तसंयतों का प्रमाण

चउसट्ठी छच्च सया छासट्ठिसहस्स चेव परिमाणं।
छासट्ठिसयसहस्सा कोडिचउक्कं पमत्ताणं।।52।।

प्रमत्तसंयतों का प्रमाण चार करोड़ छ्यासठ लाख छ्यासठ हजार छह सौ चौसठ 46666664 है।।52।।

अप्रमत्तसंयतों का प्रमाण

जे कोडि सत्तवीसा होंति सहस्सा तहेव णवणउदी।
चउसद अट्ठाणउदी परिसंखा होदि विदियगुणे।।53।।

द्वितीय गुणस्थान अर्थात् अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में जीवों की संख्या दो करोड़ सत्ताईस लाख निन्यानवे हजार चार सौ अट्ठानवे है।।53।।

सयोगी जिनों का प्रमाण

पंचेव सयसहस्सा होंति सहस्सा तहेव उणतीसा।
छच्च सया अडयाला जोगिजिणाणं हवदि संखा।।54।।

संयोगी जिन जीवों की संख्या पाँच लाख उनतीस हजार छह सौ अड़तालीस है।।54।।

उपशमक, क्षपक और केवलियों का कुल प्रमाण

पंचेव सयसहस्सा होंति सहस्सा तहेव तेत्तीसा।
अट्ठसया चोत्तीसा उवसम-खवगाण केवलिणो।।55।।

चारों उपशामक, पाँचों क्षपक और केवली ये तीनों राशियाँ मिलकर कुल पाँच लाख तैंतीस हजार आठ सौ चौंतीस हैं।।55।।

प्रमत्तसंयतों की संख्या

छक्कादी छक्कंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।
तिगभजिदा विगगुणिदापमत्तरासी पमत्ता दु।।56।।

जिस संख्या के आदि में छह, अन्त में छह और मध्य में छह बार नौ हैं, उतने अर्थात् छह करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ

छियानवे 69999996 जीव संपूर्ण संयत हैं। इसमें तीन का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने अर्थात् 23333332 जीव अप्रमत्त आदि संपूर्ण संयत हैं और इसे दो से गुणा करने पर जितनी राशि उत्पन्न हो, उतने अर्थात् 46666664 जीव प्रमत्तसंयत हैं।।56।।

असंख्यात के प्रकार

णामं ठवणा दवियं सस्सद गणणापदेसियमसंखं।
एयं उभयादेसो वित्थारो सव्वभावो य।।57।।

नाम, स्थापना, द्रव्य, शाश्वत, गणना, अप्रदेशिक, एक, उभय, विस्तार, सर्व और भाव इसप्रकार असंख्यात ग्यारह प्रकार का है।।57।।

आगम का स्वरूप

पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः।।58।।

पूर्वापर विरुद्धादि दोषों के समूह से रहित और संपूर्ण पदार्थों के द्योतक आप्तवचन को आगम कहते हैं।।58।।

असंख्यातों के कथन का प्रयोजन

अपगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चट्ठवहारणट्ठं च।।59।।

अप्रकृत विषय का निवारण करने के लिये, प्रकृत विषय का प्ररूपण करने के लिये, संशय का विनाश करने के लिये और तत्त्वार्थ का निश्चय करने के लिये यहाँ सभी असंख्यातों का कथन किया है।।59।।

निक्षेप करने का विधान

जत्थ जहा जाणेज्जो अवरिमिदं तत्थ णिक्खिववे णियमा।
जत्थ बहुवं ण जाणदि चउट्ठवो तत्थ णिक्खेवो।।60।।

जहाँ पदार्थों के विषय में यथावस्थित जाने वहाँ पर नियम से अपरिमित निक्षेप करना चाहिये। पर जहाँ पर बहुत न जाने वहाँ पर चार निक्षेप अवश्य करना चाहिये।।60।।

प्रमाणादि की उपादेयता

प्रमाणनयनिक्षेपैर्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते।
युक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत्।।61।।

प्रमाण, नय और निक्षेपों के द्वारा जिसका सूक्ष्म विचार नहीं किया जाता है, वह युक्त होते हुए भी कभी अयुक्तसा प्रतीत होता है और अयुक्त होते हुए भी कभी युक्तसा प्रतीत होता है।।61।।

प्रक्षेप राशियाँ

धम्माधम्मा लोगो पत्तेयसरीर-एगजीवगपदेसा।
बादरपदिट्ठिदा वि य छप्पदेऽसंखपक्खेवा।।62।।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, लोक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, एक जीव के प्रदेश और बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति इसप्रकार छह स्थानों में विभक्त ये असंख्यात रूप प्रक्षेप राशियाँ हैं।।62।।

सुहुमो य हवदि कालो तत्तो सुहुमं खु जायदे खेत्तं।
अंगुल-असंखभागे हवंति कप्पा असंखेज्जा।।63।।इदि।

काल सूक्ष्म होता है और क्षेत्र उससे भी सूक्ष्म होता है, क्योंकि एक अंगुल के असंख्यातवें भाग में असंख्यात कल्पकाल आ जाते हैं। अर्थात् एक अंगुल के असंख्यातवें भाग के जितने प्रदेश होते हैं, असंख्यात

कल्पकाल के उतने समय होते हैं।।63।।

सुहुमं तु हवदि खेत्तं तत्तो सुहुमं खु जायदे दव्वं।
दव्वंगुलम्हि एक्के हवंति खेत्तंगुलाणंता।।64।।

क्षेत्र सूक्ष्म होता है और उससे भी सूक्ष्म द्रव्य होता है, क्योंकि एक द्रव्यांगुल में (गणना की अपेक्षा) अनन्त क्षेत्रांगुल पाये जाते हैं।।64।।

उपप्रमाण के प्रकार

पल्लो सायर-सूई पदरो य घणांगुलो य जगसेढी।
लोगपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वा।।65।।

पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, लोकप्रत्तर और लोक इसप्रकार ये आठ उपप्रमाण जानना चाहिये।।65।।

वारस दस अट्ठेव य मूला छत्तिग दुगं च णिरएसु।
एक्कारस णव सत्त य पण य चउक्कं च देवेसु।।66।।

नरक में द्वितीयादि पृथिवी संबन्धी द्रव्य लाने के लिये जगत् श्रेणी का बारहवाँ, दशवाँ, आठवाँ, छठा, तीसरा और दूसरा वर्गमूल क्रम से अवहार काल होता है तथा देवों में सानत्कुमार आदि पाँच कल्प युगलों का प्रमाण लाने के लिये जगत् श्रेणी का ग्यारहवाँ, नौवां, सातवां, पाँचवां और चौथा वर्गमूल क्रम से अवहार काल होता है।।66।।

वारस दस अट्ठेव य मूला छत्तिय दुगं च णिरएसु।
एक्कारस णव सत्त य पण य चउक्कं च देवेसु।।67।।

नारकियों में द्वितीयादि पृथिवियों का द्रव्य लाने के लिये जगत् श्रेणी का बारहवां, दशवां, आठवां, छठा, तीसरा और दूसरा वर्गमूल अवहार काल है और देवों में सानत्कुमार आदि पाँच कल्प युगलों का द्रव्य लाने के लिये जगत् श्रेणी का ग्यारहवाँ, नौवां, सातवां, पांचवां और चौथा वर्गमूल अवहार काल है।।67।।

तेरह कोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्से वि य तद्दुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया।।68।।

संयतासंयत में तेरह करोड़, सासादन में बावन करोड़, मिश्र में सासादन के प्रमाण से दूने और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य जानना चाहिये।।68।।

तेरह कोडी देसे पण्णासं सासणे मुणेयव्वा।
मिस्से वि य तद्दुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया।।69।।

संयतासंयत में तेरह करोड़, सासादन में पचास करोड़, मिश्र में सासादन के प्रमाण से दूने और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य जानना चाहिये।।69।।

तेरह कोडी देसे वावण्णं सासणे मुणेयव्वा।
मिस्से वि य तद्दुगुणा असंजदे सत्तकोडिसया।।70।।

संयतासंयत में तेरह करोड़, सासादन में बावन करोड़, मिश्र में सासादन के प्रमाण से दूने और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य जानना चाहिये।।70।।

जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल

गयणट्ठ-णय-कसाया चउसट्ठि-मियंक-वसु-खरा-दव्वा।
छायाल-वसु-णभाचल-पयत्थ-चंदो-रिदू-कमसो।।71।।

क्रमशः आठ शून्य, नय अर्थात् दो, कषाय अर्थात् सोलह, चौसठ मृगांक अर्थात् एक, आठ, खर अर्थात् छह, द्रव्य अर्थात् छह, छयालीस, आठ, शून्य, अचल अर्थात् सात, पदार्थ अर्थात् नौ, चन्द्र अर्थात् एक और ऋतु अर्थात् छह।।71।।

सत्त एव सुण्ण पंच छट्ठ णव चदु एक्कं च पंच सुण्णं च।
जंबूदीवस्सेदं गणिदफलं होदि णादव्वा।।72।।

सात, नौ, शून्य, पाँच, छह, नौ, चार, एक, पाँच, शून्य अर्थात् सात अरब नब्बे करोड़ छप्पन लाख चौरानवे हजार एक सौ पचास योजन, यह जम्बूद्वीप का गणितफल अर्थात् क्षेत्रफल है, ऐसा जानना चाहिये।।72।।

सत्तसहस्सडसीदेहि खंडिदे पंचवण्णखंडाणि।
अद्धंगुलस्स हीणं करह अद्धंगुलं णियदं।।73।।

अर्धांगुल के पचपन खंडों को अर्थात् 55/2 को सात हजार अठासी से खंडित अर्थात् भाजित करने पर जो लब्ध आवे उतना हीन अर्धांगुल निश्चित करना चाहिये।।73।।

साधारण जीवों का लक्षण

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणिदं।।74।।

साधारण जीवों का साधारण ही तो आहार होता है और साधारण श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है। इसप्रकार आगम में साधारण जीवों का साधारण लक्षण कहा है।।74।।

रासिविसेसेणवहिदरासिम्हि य जं हवे समुवलद्धं।
रूवूणहिएणवहिदहारो ऊणाहिओ तेण ।।75।।

राशिविशेष से राशि के भाजित करने पर जो भाग लब्ध आवे, उसमें से यदि एक कम करके शेष राशि से भागहार भाजित किया जाय तो उस लब्ध को उसी भागहार में मिला देवे और यदि लब्ध राशि में एक अधिक करके उससे भागहार भाजित किया जाय तो भागहार के भाजित करने पर जो लब्ध राशि आवे उसे भागहार में से घटा देना चाहिए।।75।।

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए।।76।।

योनिभूत बीज में प्रधानता से वही जीव उत्पन्न होता है अथवा दूसरा

कोई जीव उत्पन्न होता है। वह और जितने भी मूली आदिक सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं वे प्रथम अवस्था में प्रत्येक ही हैं।।76।।

आवलियाए वग्गो आवलिया संखभागगुणिदो दु।
तम्हा घणस्स अंतो बादरपज्जत्ततेऊणं।।77।।

चूँकि आवली के असंख्यातवें भाग से आवली के वर्ग को गुणित कर देने पर बादर तेजस्कायिक पर्याप्त राशि का प्रमाण होता है। इसलिए वह प्रमाण घनावली के भीतर है।।77।।

जगसेढीए वग्गो जगसेढीसंखभागसंगुणिदो।
तम्हा घणलोगंतो बादरपज्जत्तवाऊणं।।78।।

चूँकि जगत् श्रेणी के वर्ग को जगत् श्रेणी के संख्यातवें भाग से गुणित करने पर बादर वायुकायिक पर्याप्त राशि आती है। इसलिए उक्त प्रमाण घनलोक के भीतर आता है।।78।।

सत्तादी छक्कंता दोणवमज्झा य होंति परिहारा।
सत्तादी अट्ठंता णवमज्झा सुहुमरागा दु।।79।।

जिस संख्या के आदि में सात, अन्त में छह और मध्य में दो बार नौ है उतने अर्थात् छह हजार नौ सौ सत्तानवे परिहारविशुद्धि संयत जीव हैं तथा जिस संख्या के आदि में सात, अन्त में आठ और मध्य में नौ है उतने अर्थात् आठ सौ सत्तानवे सूक्ष्मराग वाले जीव हैं।।79।।

धवला पुस्तक

4

निक्षेप का प्रयोजन

अपगयणिवारणट्ठं पयदस्स रूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च।।1।।

अप्रकृत के निवारण करने के लिये, प्रकृत के प्ररूपण करने के लिये और तत्त्वार्थ के अवधारण करने के लिये निक्षेप किया जाता है।।1।।

द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक नय प्ररूपणा के विषय

णामं ठवणा दवियं ति एस दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो।
भावो दु पज्जवठ्ठियपरूवणा एस परमत्थो।।2।।

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिक नय की प्ररूपणा के विषय हैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नय की प्ररूपणा का विषय है। यही परमार्थ सत्य है।।2।।

नोआगम द्रव्य क्षेत्र एवं नोक्षेत्र

खेत्तं खलु आगासं तव्वदिरित्तं च होदि णोखेत्तं।
जीवा य पोग्गला वि य धम्माधम्मत्थिया कालो।।3।।

आकाश द्रव्य नियम से तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यक्षेत्र है और आकाश द्रव्य के अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं।।3।।

आगासं सपदेसं तु उड्ढाधो तिरिओ वि य।
खेत्तलोगं वियाणीहि अणंत जिण-देसिदं ।।4।।

आकाश सप्रदेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र व्याप्त है। उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए। उसे जिन भगवान् ने अनन्त कहा है।।4।।

मान के प्रकार

पल्लो सायर सूई पदरो य घणांगुलो य जगसेढी।
लोयपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वो।।5।।

पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, लोकप्रतर ओर लोक ये आठ मान जानना चाहिए।।5।।

लोक का आकार

हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगणिहो।
मज्झिमवित्थारेण य चोद्दसगुणमायदो लोगो।।6।।

नीचे वेत्रासन (वेंत के मूंढा) के समान, मध्य में झल्लरी के समान और ऊपर मृदंग के समान आकार वाला तथा मध्यम विस्तार से अर्थात् एक राजु से चौदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है।।6।।

लोगो अकट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो णिच्चो तलरुक्खसंठाणो।।7।।

यह लोक निश्चयतः अकृत्रिम है, अनादि-निधन है, स्वभाव से निर्मित्त है, जीव और अजीव द्रव्यों से व्याप्त है, नित्य है तथा तालवृक्ष के आकार वाला है।।7।।

लोयस्स य विक्खंभो चउप्पयारो य होइ णायव्वो।
सत्तेक्कगो य पंचेक्कगो य रज्जू मुणेयव्वा।।8।।

लोक का विष्कम्भ (विस्तार) चार प्रकार का है ऐसा जानना चाहिए। जिसमें से अधोलोक के अन्त में सात राजु, मध्यलोक के पास एक राजु, ब्रह्मलोक के पास पाँच राजु और ऊर्ध्वलोक के अन्त में एक राजु विस्तार

जानना चाहिए।।8।।

मुह-तलसमास-अद्धं वुस्सेधगुणं गुणं च वेधेण।
घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिये खेत्ते।।9।।

मुखभाग और तलभाग के प्रमाण को जोड़कर आधा करो, पुनः उसे उत्सेध से गुणा करो, पुनः मोटाई से गुणा करो। ऐसा करने पर वेत्रासन आकार से स्थित अधोलोकरूप क्षेत्र का घनफल जानना चाहिए।।9।।

मूलं मज्झेण गुणं मुहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं।
घणगणिदं जाणेज्जो मुइंगसंठाणखेत्तम्हि।।10।।

मूल के प्रमाण को मध्य के प्रमाण से गुणा करो, पुनः मुखसहित अर्ध भाग को उत्सेध की कृति अर्थात् वर्ग से गुणा करो। ऐसा करने पर मृदंग के आकार वाले क्षेत्र में प्राप्त घनफल जानना चाहिये।।10।।

समुद्घात के प्रकार

वेदण-कसाय-वेउव्वियओ य मरणंतिओ समुग्घादो।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु।।11।।

वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैक्रियिक समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात इस प्रकार समुद्घात सात प्रकार का है।।11।।

द्वीन्द्रिय आदि की उत्कृष्ट अवगाहना

संखो पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भव तिकोसं तु।
भमरो जोयणमेगं मच्छो पुण जोयणसहस्सो।।12।।

शंख नामक द्वीन्द्रिय जीव बारह योजन की अवगाहना वाला होता है। गोम्ही नामक त्रीन्द्रिय जीव तीन कोस की अवगाहना वाला होता है। भ्रमर नामक चतुरिन्द्रिय जीव एक योजन की अवगाहना वाला होता है और

महामत्स्य नामक पंचेन्द्रिय जीव एक हजार योजन की अवगाहना वाला होता है।।12।।

शंख का क्षेत्रफल

व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतम्।
द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः।।13।।

व्यास को उतनी ही बार करके अर्थात् व्यास का जितना प्रमाण है उतनी बार व्यास को रखकर जोड़ने पर जो लब्ध आवे, उसमें से मुख के आधे प्रमाण को घटाकर, मुख के आधे प्रमाण के वर्ग को जोड़ दें। इस प्रकार जो संख्या आवे, उसे द्विगुणित करके पश्चात् चार का भाग दें। इस प्रकार जो लब्ध आवें, उसे शंख का क्षेत्रफल कहते हैं।।13।।

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपैर्भक्तम्।
व्यास-त्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम्।।14।।

व्यास को सोलह से गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुनः तीन, एक और एक अर्थात् एक सौ तेरह का भाग देवे और व्यास का तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण होता है।।14।।

मूलं मज्झेण गुणं मुहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं।
घणगणिदं जाणेज्जो मुदिंगसंठाणखेत्तम्हि।।15।।

मूल के प्रमाण को मध्य के प्रमाण से गुणित करके जो लब्ध आवे, उसमें मुख का प्रमाण जोड़कर आधा करो। पुनः इसे उत्सेध के वर्ग से गुणित करो। यह मृदंगाकार क्षेत्र में घनफल लाने का गणित जानना चाहिए।।15।।

मुह-मुहतलसमासअद्धं उस्सेधगुणं गुणं च वेहेण।
घणगणिदं जाणेज्जा वेत्तासणसंठिए खेत्ते।।16।।

मुख के प्रमाण और तलभाग के प्रमाण को जोड़कर आधा करें।

पुनः इसे उत्सेध से गुणित करके वेध से गुणित करें। यह वेत्रासन के आकार वाले क्षेत्र में घनफल लाने की प्रक्रिया जानना चाहिए ।।16।।

मुह-भूमिविसेसम्हि दु उच्छेहभजिदम्हि सा हवे वड्ढी।
वड्ढी इच्छागुणिदा मुहसहिदा सा फलं होदि।।17।।

भूमि से मुख को घटाकर उत्सेध का भाग देने पर जो लब्ध आवे, वह वृद्धि का प्रमाण होता है। अब जिस पटल के नारकियों के उत्सेध का प्रमाण लाना हो, उसे इच्छा मानकर उससे वृद्धि को गुणित कर दो और मुख का प्रमाण जोड़ दो। इसका जो फल होगा, वही इच्छित पाथड़े के नारकियों का उत्सेध समझना चाहिये।।17।।

भवनत्रिक के शरीर की ऊँचाई

पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराणं दस धणू चेय।
वेंतर-जोदिसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा।।18।।

भवनवासियों के दश भेदों में से प्रथम भेद असुरकुमारों के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धनुष और शेष नौ कुमारों के शरीर की ऊँचाई दश धनुष है तथा व्यन्तर देवों के शरीर की ऊँचाई दश धनुष और ज्योतिषी देवों के शरीर की ऊँचाई सात धनुष जानना चाहिये।।18।।

मुहसहिदमूलमज्झं छेत्तूणद्धेण सत्तवग्गेण।
हंतूणेगट्ठकदे घणरज्जू होंति लोगम्हि।।1।।

लोक के मध्य को छेदकर अर्थात् मध्यलोक से दो विभाग कर, दोनों विभागों के पृथक्-पृथक् मुखसहित मूल के विस्तार से आधा करके, पुनः सात के वर्ग से गुणा करके उन दोनों राशियों को जोड़ देने पर लोक सम्बन्धी घन राजु उत्पन्न होते हैं।।1।।

चंदाइच्च-गहेहि चेवं णक्खत्त-तारारूवेहिं।
दुगुण-दुगुणेहिं णीरंतरेहिं दुवग्गो तिरियलोगो।।2।।

चन्द्र, आदित्य (सूर्य), ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की दूनी-दूनी संख्याओं से निरन्तर तिर्यग्लोक द्विवर्गात्मक है।।2।।

चन्द्र के परिवार तारे

छावट्ठिं च सहस्सं णवयसदं पंचसत्तरि य होंति।
एयससीपरिवारो ताराणं कोडिकोडीओ।।31।।

एक चन्द्र के परिवार में छयासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी 66975000000000000000 तारे होते हैं।।3।।

जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चदु एक्क पंच सुण्णं च।
जंबूदीवस्सेदं गणिदफलं होइ णायव्वं।।4।।

सात, नौ, शून्य, पाँच, छह, नौ, चार, एक, पाँच और शून्य अर्थात् 7905694150 वर्ग योजन प्रमाण जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल होता है, ऐसा जानना चाहिए।।4।।

वाहिरसूईवग्गो अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणो।
जंबूदीवपमाणा खंडा ते होंति चउवीसा।।5।।

इसकी अर्थात् जम्बूद्वीप के उक्त क्षेत्रफल की एक शलाका (1) होती है। इस प्रमाण से लवणसमुद्र के क्षेत्र का गणित करने पर वह जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल से चौबीस गुणा होता है। कहा भी है- लवणसमुद्र की बाह्य सूची के वर्ग को उसी की आभ्यन्तर सूची के वर्ग के प्रमाण से कम करने पर जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल प्रमाण उसके चौबीस खंड होते हैं।।5।।

गुणकार शलाका

सोलह सोलसहिं गुणो रूवूणोवहिसलागसंखा त्ति।
दुगुणम्हि तम्हि सोहे चउक्कपहदं चउक्कं तु।।6।।

विवक्षित समुद्र की क्रम शलाका की संख्या में एक कम करके शेष संख्या प्रमाण देवराशि सोलह, सोलह को परस्पर गुणित कर दो जो राशि उपलब्ध हो, उसे दूना कर दे और पूर्वोक्त विरलन, राशि प्रमाण चार–चार को परस्पर गुणाकर लब्ध को उस द्विगुणित राशि में से घटा देने पर विवक्षित समुद्र की गुणकार शलाकाएं आ जाती हैं।।6।।

अपनयन राशि

इट्ठसलागाखुत्तो चत्तारि परोप्परेण संगुणिय।
पंचगुणे खित्तव्वा एगादिचदुगुणा संकलणा।।7।।

इष्ट शलाका राशि का जो प्रमाण हो उतने बार चार को रखकर परस्पर में गुणा करें, पुनः उसे पाँच से गुणा करे और फिर एक आदि चतुर्गुण संकलन राशि को प्रक्षेप करना चाहिए। ऐसा करने पर अपनयन राशि का प्रमाण आ जाता है।।7।।

विक्खंभवग्गदसगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होदि।
विक्खंभचउब्भागो परिरयगुणिदो हवे गणिदं।।8।।

विष्कम्भ का वर्गकर उसे दश से गुणा करके उसका वर्गमूल निकालें, वही वृत्त अर्थात् गोलाकृति क्षेत्र की परिधि का प्रमाण हो जाता है। पुनः विष्कम्भ के चतुर्भाग से परिधि को गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है।।8।।

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपहृतं।
व्यासत्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम्।।9।।

व्यास को सोलह से गुणा करें, पुनः सोलह जोड़ें, पुनः तीन, एक

और एक अर्थात् एक सौ तेरह (113) का भाग देवे। पुनः व्यास का तिगुणा जोड़ देवें, तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण आ जाता है।।9।।

विविध कल्पों में विमानों की संख्या

वत्तीसं सोहम्मे अट्ठावीसं तेईव ईसाणे।
वारह सणक्कुमारे अट्ठेव य होंति माहिंदे।।10।।

सौधर्म कल्प में बत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकार से ईशान कल्प में अट्ठाईस लाख, सनत्कुमार कल्प में बारह लाख तथा माहेन्द्र कल्प में आठ लाख विमान होते हैं।।10।।

बम्हे कप्पे बम्होत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइं।
छसु कप्पेसु य एवं चउरासीदी सयसहस्सा।।11।।

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोनों कल्पों के मिलाकर चार लाख विमान हैं। इस प्रकार इन पूर्व में बताए गये छह कल्पों में विमानों की संख्या चौरासी लाख होती है।।11।।

पण्णासं तु सहस्सा लंतवकाविट्ठएसु कप्पेसु।
सुक्क-महासुक्केसु य चत्तालीसं सहस्साइं।।12।।

लान्तव और कापिष्ठ इन दोनों कल्पों में पचास हजार विमान होते हैं। शुक्र और महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमान हैं।।12।।

छच्चेव सहस्साइं सयारकप्पे तहा सहस्सारे।
सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुदे चेय।।13।।

शतार और सहस्रार कल्प में छह हजार विमान होते हैं। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चार कल्पों में मिलाकर सात सौ विमान होते हैं ।।13।।

नव ग्रैवेयकों में विमानों की संख्या

एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु तिसु मज्झिमेसु सत्तहियं।
एक्काणउदिविमाणा तिसु गेवज्जेसुवरिमेसु।।14।।

अघस्तन तीन ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम तीन ग्रैवेयकों में एक सौ सात विमान और उपरिम तीन ग्रैवेयकों में इक्यानवे विमान होते हैं।।14।।

अनुदिश और अनुत्तरों के विमान

गेवज्जाणुवरिमया णव चेव अणुद्दिसा विमाणा ते।
तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवंति संखाए।।15।।

नव ग्रैवेयकों के ऊपर अनुदिश संज्ञा वाले नौ विमान होते हैं। उनके ऊपर अनुत्तर संज्ञा वाले पाँच विमान होते हैं।।15।।

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए।।16।।

योनीभूत बीज में वही पूर्व पर्याय वाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी तीव्र संक्रमण करता है और जो बीज मूलादिक बादर निगोद प्रतिष्ठित वनस्पति कायिक जीव हैं। वे सब प्रथम अवस्था में प्रत्येक शरीर ही होते हैं।।।16।।

निश्चय और व्यवहार काल

कालो त्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई।।1।।

'काल' इस प्रकार का यह नाम सत्तारूप निश्चय काल का प्ररूपक है और वह निश्चय काल द्रव्य अविनाशी होता है। दूसरा व्यवहार काल उत्पन्न और प्रध्वंस होने वाला है तथा आवली, पल्य, सागर आदि के रूप से दीर्घकाल तक स्थायी है।।1।।

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूओ।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो।।2।।

व्यवहार काल पुद्गलों के परिणमन से उत्पन्न होता है और पुद्गलादि का परिणमन द्रव्य काल के द्वारा होता है, दोनों का ऐसा स्वभाव है। यह व्यवहार काल क्षणभंगुर है, परन्तु निश्चय काल नियत अर्थात् अविनाशी है।।2।।

ण य परिणमइ सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं।
विविहपरिणामियाणं हवइ हु हेऊ सयं कालो।।3।।

वह काल नामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है और न अन्य को अन्य रूप से परिणमाता है, किन्तु स्वतः नाना प्रकार के परिणामों को प्राप्त होने वाले पदार्थों का काल नियम से स्वयं हेतु होता है।।3।।

कालाणु का स्वरूप

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया दु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा।।4।।

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान जो एक-एक रूप से स्थित हैं, वे कालाणु जानना चाहिए।।4।।

सम्यक्त्व का लक्षण

छप्पं च णवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।5।।

जिनवरोपदिष्ट छह द्रव्य अथवा पंच अस्तिकाय अथवा नव पदार्थों का आज्ञा से और अधिगम से श्रद्धान करना सम्यक्त्व है।।5।।

पंचत्थिया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि।।6।।

पंच अस्तिकाय, षट् जीवनिकाय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आज्ञा अर्थात् जिनेन्द्र के उपदेश से ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आज्ञाविचय धर्म्य ध्यान से संचय करता है अर्थात् श्रद्धान करता है।।6।।

काल द्रव्य

सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूओ कालो णियमेण पण्णत्तो।।7।।

सत्तास्वरूप स्वभाव वाले जीवों के, तथैव पुद्गलों के और 'च' शब्द से धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य के परिवर्तन में जो निमित्त कारण हो, वह नियम से काल द्रव्य कहा गया है।।7।।

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मास उडु अयण संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।।8।।

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली तथा दिन और रात्रि, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर इत्यादि काल परायत्त हैं अर्थात् जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्यों के परिवर्तनाधीन हैं।।8।।

णत्थि चिरं वा खिप्पं वुत्तारहिदं तु सा वि खलु वुत्ता।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्च भवो।।9।।

वर्तना रहित चिर अथवा क्षिप्र की अर्थात् परत्व और अपरत्व की कोई सत्ता नहीं है। वह वर्तना भी पुद्गल द्रव्य के बिना नहीं होती है। इसलिए काल द्रव्य पुद्गल के निमित्त से हुआ कहा जाता है।।9।।

मुहूर्त का लक्षण

उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च।
त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां मुहूर्तो ह्येक इष्यते ।।10।।

उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (3773) उच्छ्वासों का एक मुहूर्त कहा जाता है।।10।।

निमेषाणां सहस्राणि पंच भूयः शतं तथा।
दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः ।।11।।

विद्वानों ने एक मुहूर्त में पाँच हजार एक सौ दश (5110) निमेष गिने हैं।।11।।

पन्द्रह प्रकार के मुहूर्त

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च।
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा।।12।।
रोहणो बलनामा च विजयो नैऋतोऽपि च।
वारुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पंचदशो दिने।।13।।

1 रौद्र, 2 श्वेत, 3 मैत्र, 4 सारभट, 5 दैत्य, 6 वैरोचन, 7 वैश्वदेव, 8 अभिजित, 9 रोहण, 10 बल, 11 विजय, 12 नैऋत्य, 13 वारुण, 14 अर्यमन् और 15 भाग्य। ये पंद्रह मुहूर्त दिन में होते हैं।।12-13।।

सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च।
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि।।14।।
सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च।
पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्त्तोऽन्योऽरुणो मतः ।।15।।

1 सावित्र, 2 धुर्य, 3 दात्रक, 4 यम, 5 वायु, 6 हुताशन, 7 भानु, 8 वैजयन्त, 9 सिद्धार्थ, 10 सिद्धसेन, 11 विक्षोभ, 12 योग्य, 13 पुष्पदन्त, 14 सुगन्धर्व और 15 अरुण।।14-15।।

समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्ताश्च समा स्मृताः।
षण्मुहूर्ता दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा।।16।।

रात्रि और दिन का समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं। हाँ, कभी दिन

को छह मुहूर्त जाते हैं और कभी रात्रि को छह मुहूर्त जाते हैं।।16।।

तिथियाँ और उनके देवता

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात्।
देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च।।17।।

नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इस प्रकार क्रम से पाँच तिथियाँ होती हैं। इनके देवता क्रम से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं।।।17।।

पुद्गल परिवर्तन

सव्वे वि पोग्गला खलु एग्गे भुत्तुज्झिदा हु जीवेण।
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे।।18।।

इस पुद्गल परिवर्तन रूप संसार में समस्त पुद्गल इस जीव ने एक-एक करके पुनः पुनः अनन्त बार भोग करके छोड़े हैं।।18।।

पुद्गल परमाणुओं की सादिता, अनादिता एवं उभयता

एयक्खोत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेदू सादियमध णादियं चावि।।19।।

यह जीव एक क्षेत्र में अवगाढरूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य पुद्गल-परमाणुओं के यथोक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओं से सर्व प्रदेशों के द्वारा बांधता है। वे पुद्गल परमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होते हैं और उभयरूप भी होते हैं।।19।।

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं।।20।।

जो कर्म पुद्गल पहले बद्धावस्था में सूक्ष्म अर्थात् अल्प स्थिति से संयुक्त थे। अतएव निर्जरा द्वारा कर्मरूप अवस्था से मुक्त अर्थात् रहित

हुए, किन्तु आसन्न अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ जिनका एकक्षेत्रावगाह है तथा जिनका आकार अनिर्दिष्ट अर्थात् कहा नहीं जा सकता है, इस प्रकार का पुद्गल द्रव्य बहुलता से ग्रहण को प्राप्त होता है।।20।।

गहणसमयम्हि जीवो उप्पादेदि हु गुणसपच्चयदो।
जीवेहि अणंतगुणं कम्म पदेसेसु सव्वेसु।।21।।

कर्मग्रहण के समय में जीव अपने गुणांश प्रत्ययों से, अर्थात् स्वयोग्य बंधकारणों से, जीवों से अनन्तगुणे कर्मों को अपने सर्व प्रदेशों में उत्पादन करता है।।21।।

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिदा हु जीवेण।
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे।।22।।

इस जीव ने इस पुद्गल परिवर्तनरूप संसार में एक-एक करके पुनः पुनः अनन्त बार सम्पूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं।।22।।

क्षेत्र परिवर्तन

सव्वम्हि लोगखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण ओच्छुण्णं।
ओगाहणाओ बहुसो हिंडंतो कालसंसारे।।23।।

इस समस्त लोकरूप क्षेत्र में एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है, जिसे कि क्षेत्र परिवर्तनरूप संसार में क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुत बार नाना अवगाहनाओं से इस जीव ने न छुआ हो।।23।।

काल परिवर्तन

ओसप्पिणि-उस्सप्पिणि-समयावलिया णिरंतरा सव्वा।
जादो मुदो य बहुसो हिंडंतो कालसंसारे।।24।।

काल परिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सर्व समयों की आवलियों में निरन्तर बहुत बार

उत्पन्न हुआ और मरा है।।24।।

भव परिवर्तन

णिरआउआ जहण्णा जाव दु उवरिल्लओ दु गेवज्जो।
जीवो मिच्छत्तवसा भवट्ठिदिं हिंडिदो बहुसो।।25।।

भव परिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्व के वश से जघन्य नारकायु से लगाकर तिर्यंच, मनुष्य और उपरिम ग्रैवेयक तक की भवस्थिति को बहुत बार प्राप्त हो चुका है।25।।

भाव परिवर्तन

सव्वासिं पगदीणं अणुभाग-पदेसबंधठाणाणि।
जीवो मिच्छत्तवसा परिभमिदो भावसंसारे।।26।।

यह जीव मिथ्यात्व के वशीभूत होकर भाव परिवर्तनरूप संसार में परिभ्रमण करता हुआ सम्पूर्ण प्रकृतियों के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध स्थानों को अनेक बार प्राप्त हुआ है।।26।।

परियट्टिदाणि बहुसो पंच वि परियट्टिणाणि जीवेण।
जिणवयणमलभमाणेण दीदकाले अणंताणि।।27।।

जिन-वचनों को नहीं पा करके इस जीव ने अतीत काल में पाँचों ही परिवर्तन पुनः-पुनः करके अनन्त बार परिवर्तित किये हैं।।27।।

जह गेण्हइ परियट्टं पुरिसो अच्छादणस्स विविहस्स।
तह पोग्गलपरियट्टे गेण्हइ जीवो सरीराणि।।28।।

जिस प्रकार कोई पुरुष नाना प्रकार के वस्त्रों के परिवर्तन को ग्रहण करता है अर्थात् उतारता है और पहनता है, उसी प्रकार से यह जीव भी पुद्गल परिवर्तन काल में नाना शरीरों को छोड़ता और ग्रहण करता है।।28।।

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।।29।।

पर्यायार्थिक नय के नियम से पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्यय को भी प्राप्त होते हैं, किन्तु द्रव्यार्थिक नय के नियम से सर्व–वस्तु सदा अनुत्पन्न और अनिष्ट हैं अर्थात् ध्रौव्यात्मक है।।29।।

अनन्त का स्वरूप

संते वए ण णिट्ठादि कालेणाणंतएण वि।
जो रासी सो अणंतो त्ति विणिद्दिट्ठो महेसिणा।।30।।

व्यय के होते रहने पर भी अनन्त काल के द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे महर्षियों ने 'अनन्त' इस नाम से विनिर्दिष्ट किया है।।30।।

सासादन गुणस्थान का काल

उवसमसम्मत्तद्धा जत्तियमेत्ता हु होई अवसिट्ठा।
पडिवज्जंता साणं तत्तियमेत्ता य तस्सद्धा।।31।।

जितने प्रमाण उपशम सम्यक्त्व का काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादन गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीवों का भी उतने प्रमाण ही उसका अर्थात् सासादन गुणस्थान का काल होता है।।31।।

उवसमसम्मत्तद्धा जइ छावलिया हवेज्ज अवसिट्ठा।
तो सासणं पवज्जइ णो हेट्ठुक्ककालेसु।।32।।

यदि उपशम सम्यक्त्व का काल छह आवली प्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है। यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासादन गुणस्थान को नहीं प्राप्त होता है।।32।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि की विशेषता

ण य मरइ णेव संजममुवेइ तह देससजमं वावि।
सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्घाओ।।33।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयम को प्राप्त होता है, न देशसंयम को भी प्राप्त होता है तथा उसके मारणान्तिक समुद्घात भी नहीं होता है।।33।।

पृथिवियों की उत्कृष्ट स्थिति

एक्क तिय सत्त दस तह सत्तारह दुतिहदेक्कअधिय दस।
उवही उक्कस्सट्ठिदी सत्तण्हं होइ पुढवीणं।।34।।

एक, तीन, सात, दश तथा सत्तरह सागरोपम तथा दो से गुणित एक अधिक दश (2x11=22) अर्थात् बाईस सागरोपम तथा तीन से गुणित ग्यारह (3x11=33) अर्थात् तेंतीस सागरोपम, इस प्रकार सातों पृथिवियों की उत्कृष्ट स्थिति होती है।।34।।

क्षुद्रभव का परिमाण

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइं।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया होंति खुद्दभवा।।35।।

एक अन्तर्मुहूर्त काल में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस (66336) मरण होते हैं और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं।।35।।

उत्तरोत्तर विशेषता

आवलिय अणागारे चक्खिंदिय-सोद-घाण-जिब्भाए।
मण-वयण-कायफासे अवाय-ईहासुदुस्सासे।।36।।

अनाकार दर्शनोपयोग का जघन्य काल आगे कहे जाने वाले सभी पदों की अपेक्षा सबसे कम है। (तथापि वह संख्यात आवली प्रमाण है।) इससे

चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी अवग्रह ज्ञान का जघन्य काल विशेष अधिक है। इससे श्रोत्रेन्द्रियजनित अवग्रह ज्ञान, इससे मनोयोग, इससे वचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शनेन्द्रियजनित अवग्रह ज्ञान, इससे अवायज्ञान, इससे ईहाज्ञान, इससे श्रुतज्ञान और इससे उच्छ्‌वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है।।36।।

केवलदंसण-णाणे कसायसुक्केक्कए पुधत्ते य।
पडिवादुवसामेंतय खवेंतए संपराए य।।37।।

तद्‌भवस्थ केवली के केवलज्ञान और केवलदर्शन तथा सकषाय जीव के शुक्ल लेश्या, इन तीनों का जघन्यकाल (परस्पर सदृश होते हुए भी) उच्छ्‌वास के काल से विशेष अधिक है। इससे एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान, इससे पृथक्त्ववितर्क वीचार शुक्लध्यान, इससे उपशमश्रेणी से गिरने वाले सूक्ष्मसाम्पराय संयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है।।।37।।

माणद्धा कोधद्धा मायद्धा तह चेव लोभद्धा।
खुद्दभवग्गहणं पुण किट्टीकरणं च बोद्धव्वं।।38।।

क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय के जघन्य काल से मान कषाय, इससे क्रोध कषाय, इससे माया कषाय, इससे लोभ कषाय और इससे लब्ध्यपर्याप्त जीव के क्षुद्रभव ग्रहण का जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष-विशेष अधिक है। क्षुदभव ग्रहण के जघन्य काल से कृष्टीकरण का जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए।।38।।

गुण-जोगपरावत्ती वाघादो मरणामिदि हु चत्तारि।
जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगुणका जोगे।।39।।

गुणस्थान परिवर्तन, योग परिवर्तन, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगों में अर्थात् तीनों योगों के होने पर होती हैं, किन्तु सयोगि केवली के पिछले दो अर्थात् मरण और व्याघात तथा गुणस्थान परिवर्तन नहीं होते

हैं।।39।।

एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णवय अट्ठेव।
पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा।।40।।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में क्रमश: ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ, पाँच, पाँच, पाँच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समय सम्बन्धी प्ररूपणा के विकल्प होते हैं। 11, 6, 7, 11, 10, 9, 8, 5, 5, 5, 3, 2, 2, 2, 2, 1 ।।40।।

शुभ लेश्याओं के भंग

दो द्दो य तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंति पम्मलेस्साए।
दो तिग दुगं च समया बोद्धव्वा सुक्कलेस्साए।।41।।

तेजोलेश्या के दो, दो और तीन समय भंग होते हैं। पद्म लेश्या के तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समय भंग होते हैं तथा शुक्ल लेश्या के दो, तीन और दो समय भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।।41।।

नित्य निगोदिया जीव

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकइपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ।।42।।

ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने त्रसों की पर्याय अभी तक नहीं पाई है और जो दूषित भावों को अति प्रचुरता के कारण कभी भी निगोद के वास को नहीं छोड़ते हैं।।42।।

एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ।।43।।

एक निगोद शरीर में द्रव्य प्रमाण से जीव सिद्धों से तथा समस्त अतीत काल के समयों से अनन्त गुणे देखे गये हैं।।43।।

धवला पुस्तक

5

नाम और स्थापना निक्षेप की विशेषता

अप्पिदआदरभावो अणुग्गहभावो य धम्मभावो य।
ठवणाए कीरंते ण होंति णामम्मि एए दु।।1।।

विवक्षित वस्तु के प्रति आदरभाव, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापना में किया जाता है, किन्तु ये बातें नामनिक्षेप में नहीं होती हैं।।1।।

णामिणि धम्मुवयारो णामं ट्ठवणा जस्स तं ठविदं।
तद्धम्मे ण वि जाणसु सुणाम-ठवणाणमविसेसं।।2।।

नाम में धर्म का उपचार करना नाम निक्षेप है और जहाँ उस धर्म की स्थापना की जाती है, वह स्थापना निक्षेप है। इस प्रकार उस धर्म के विषय में नाम और स्थापना की अविशेषता अर्थात् एकता को मत जानो।।2।।

गुणश्रेणी निर्जरा

सम्मत्तुप्पत्ती ए सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते।।3।।
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखोज्जगुणाए सेडीए।।4।।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति में, श्रावक में, विरत में, अनन्तानुबन्धी कषाय के विसंयोजन में, दर्शनमोह के क्षपण में, कषायों के उपशामकों में, उपशान्तकषाय में, क्षीणमोह में और जिनभगवान् में नियम से असंख्यात गुणी निर्जरा होती है, किन्तु उक्त गुणश्रेणी निर्जरा में असंख्यात गुण श्रेणी

क्रम की अपेक्षा काल का प्रमाण विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर हीन है।।3-4।।

पाँच भाव

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य।
परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोग्गलाणं तु।।5।।

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारिणामिकभाव, ये पाँच भाव होते हैं। इनमें पुद्गलों के उदय से (औदयिकभाव) होता है।।5।।

औदयिक भाव के स्थान/भेद

गदि-लिंग-कसाया वि य मिच्छादंसणमसिद्धदण्णाणं।
लेस्सा असंजमो चिय होंति उदयस्स ट्ठाणाइं।।6।।

गति, लिंग, कषाय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेश्या, असंयम, ये औदयिक भाव के आठ स्थान होते हैं।।6।।

औपशमिक भाव के स्थान एवं विकल्प

सम्मत्तं चारित्तं दो च्चिय ट्ठाणइमुवसमे होंति।
अट्ठवियप्पा य तहा कोहाईया मुणेदव्वा।।7।।

औपशमिकभाव में सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं तथा औपशमिकभाव के विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कषायों के उशमन रूप जानना चाहिए।।7।।

क्षायिक भाव के स्थान

लद्धीओ सम्मत्तं चारित्तं दंसणं तहा णाणं।
ठाणाइ पंच खइए भावे जिणभासियाइं तु।।8।।

दानादि लब्धियाँ, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन

तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भाव में जिनभाषित पाँच स्थान होते हैं।।8।।

क्षायोपशमिक भाव के स्थान एवं भेद

णाणण्णाणं च तहा दंसण-लद्धी तहेव सम्मत्तं।
चारित्तं देसजमो सत्तेव य होंति ठाणाइं।।9।।

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिकभाव में होते हैं।।9।।

पारिणामिक भाव के स्थान एवं भेद

एयं ठाणं तिण्णि वियप्पा तह पारिणामिए होंति।
भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो चेव बोद्धव्वा।।10।।

पारिणामिकभाव में स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्व के भेद से तीन भेद होते हैं। ये विकल्प आत्मा के असाधारण भाव होने से ग्रहण किये गये जानना चाहिए।।10।।

भावों के उत्तर भेद

इगिवीस अट्ठ तह णव अट्ठारस तिण्णि चेव बोद्धव्वा।
ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए।।11।।

औदयिक आदि पाँच भाव उत्तर भेदों की अपेक्षा आनुपूर्वी से इक्कीस, आठ, नौ, अठारह और तीन भेद वाले हैं, ऐसा जानना चाहिए।।11।।

सन्निपात फल

एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितं च पदवृद्धैः।
गच्छः संपातफलं समाहतः सन्निपातफलम्।।12।।

एक एक उत्तर पद से बढ़ते हुए गच्छकों रूप (एक) आदि पद प्रमाण

बढ़ाई हुई राशि से भाजित करे और परस्पर गुणा करे, तब सम्पातफल अर्थात् एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंगों का प्रमाण आता है तथा इन एक, दो, तीन आदि भंगों को जोड़ देने पर सन्निपातफल अर्थात् सान्निपातिक भंग प्राप्त हो जाते हैं।।12।।

शंख का क्षेत्रफल

मिच्छत्ते दस भंगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा।
तिगुणा ते चदुहीणा अविरदसम्मस्स एमेव।।13।।
देसे खओवसमिए विरदे खवगाण ऊणवीसं तु।
ओसामगेसु पुध पुध पणतीसं भावदो भंगा।।14।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में उक्त भावों सम्बन्धी दश भंग होते हैं। सासादन और मिश्र गुणस्थान में भी इसी प्रकार दश-दश भंग जानना चाहिए। अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वे ही भंग त्रिगुणित और चतुर्हीन अर्थात् (10 x 3- 4 = 26) छब्बीस होते हैं। इसी प्रकार ये छब्बीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में भी होते हैं। क्षपक श्रेणी वाले चारों क्षपकों के उन्नीस भंग होते हैं। उपशम श्रेणी वाले चारों उपशामकों में पृथक्-पृथक् पैंतीस भंग भाव की अपेक्षा होते हैं।।13-14।।

एक्को मे सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो।
सेसा दु बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।1।।

ज्ञान-दर्शन लक्षणात्मक मेरा आत्मा एक है, शाश्वत (नित्य) है। शेष सर्व संयोगलक्षणात्मक भाव बाहरी हैं।।1।।

धवला पुस्तक

6

सिद्धों का लक्षण

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य।
सायारमणायारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं।।2।।

जो अशरीर हैं, जो जीव होकर प्रदेशों की अपेक्षा घनरूप हैं, ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त हैं, वे सिद्ध हैं। इस प्रकार साकार और अनाकार, यह सिद्धों का लक्षण है।।2।।

जीव की विशेषता

जीवपरिणामहेदू कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।
ण य णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि।।3।।

जीव के रागादि परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं, किन्तु ज्ञान परिणत जीव कर्म को नहीं प्राप्त होता है।।3।।

कर्मबन्ध की विशेषता

जारिसओ परिणामो तारिसओ चेव कम्मबंधो वि।
वत्थूसु विसम-समसण्णिदेसु अज्झप्पजोएण ।।4।।

विषम और सम संज्ञा वाली अर्थात् अनिष्ट और इष्ट वस्तुओं में आत्मसम्बन्धी अध्यात्मयोग से मिथ्यात्व आदि के निमित्त से जिस प्रकार का परिणाम होता है, कर्म-बन्ध उसी प्रकार का होता है।।4।।

इति शब्द के अर्थ

हेतावेवम्प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः।।5।।

हेतु, एवं, प्रकार-आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्ति के अर्थ में 'इति' शब्द को विद्वानों ने कहा है।।5।।

द्रव्य का स्वरूप

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा।।6।।

जो नैगम आदि नय और उनके भेद-प्रभेद रूप उपनयों के विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न सम्बन्ध रूप समुदाय है, उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य कथंचित् एक रूप और कथंचित् अनेक रूप है।।6।।

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुभवइ।
तस्सोदयक्खएण दु सुह-दुक्खविवज्जिओ होइ।।7।।

जिसके उदय से जीव सुख और दुःख इन दोनों का अनुभव करता है, उसके उदय का क्षय होने से वह सुख और दुख से रहित हो जाता है।।7।।

प्रतिषेधयति समस्तं प्रसक्तमर्थं तु जगति नोशब्दः।
स पुनस्तदवयवे वा तस्मादर्थान्तरे वा स्यात्।।8।।

जगत् में 'न' यह शब्द प्रसक्त समस्त अर्थ का तो प्रतिषेध करता है, किन्तु वह प्रसक्त अर्थ के अवयव अर्थात् एकदेश में अथवा उससे भिन्न अर्थ में रहता है अर्थात् उसका बोध कराता है।।8।।

भावस्तत्परिणामो द्विप्रतिषेधस्तदैक्यगमनार्थः।
नो तद्देशविशेषप्रतिषेधोन्यः स्व-परयोगात्।।9।।

भाव वस्तु के परिणाम को कहते हैं। दो बार प्रतिषेध उसी वस्तु की एकता का ज्ञान कराता है। 'नो' यह शब्द स्व और पर के योग से विवक्षित वस्तु के एकदेश का प्रतिषेधक और विधायक होता है।।9।।

णलया बाहू अ तहा णियंब पुट्ठी उरो य सीसं च।
अट्ठेव दु अंगाइं देहण्णाइं उवंगाइं ।।10।।

शरीर में दो पैर, दो हाथ, नितम्ब (कमर के पीछे का भाग), पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ अंग होते हैं। इनके सिवाय अन्य (नाक, कान, आँख इत्यादि) उपांग होते हैं।।10।।

सप्त धातुओं की प्रक्रिया

रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते।
मेदसोस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रं ततः प्रजा।।11।।

रस से रक्त बनता है, रक्त से मांस उत्पन्न होता है, मांस से मेदा पैदा होती है। मेदा से हड्डी बनती है, हड्डी से मज्जा पैदा होती है, मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है और शुक्र से प्रजा (सन्तान) उत्पन्न होती है।।11।।

पंच लब्धि

खयउवसमो विसोही देसण पाओग्ग करणलद्धी अ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते।।।।

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण, ये पाँच लब्धियाँ होती हैं। उनमें से प्रारंभ की चार तो सामान्य हैं, अर्थात् भव्य और अभव्य जीव, इन दोनों के होती हैं, किन्तु पांचवी करण लब्धि सम्यक्त्व उत्पन्न होने के समय भव्य जीव के ही होती है।।।।

प्रक्षेपों के प्रमाण

प्रक्षेपकसंक्षेपेण विभक्ते यद्धनं समुपलब्धाम्।
प्रक्षेपास्तेन गुणाः प्रक्षेपसमानि खंडानि।।1।।

यदि किसी राशि के विवक्षित राशिप्रमाण खण्ड करना हो, तो उन खण्डप्रमाणों (प्रक्षेपकों) को जोड़ लो और उससे राशि में भाग दे दो। इस भाग से जो धन लब्ध आवे, उससे उन प्रक्षेपकों का गुणा करने से क्रमशः प्रक्षेपों के प्रमाण खण्ड प्राप्त हो जावेंगे।।1।।

निषेकों का भागहार

इच्छिदणिसेयभत्तो पढमणिसेयस्स भागहारो जो।
पढमणिसेयेण गुणो तहिं तहिं होइ अवहारो।2।।

प्रथम निषेक का जो भागहार हो उसमें इच्छित निषेक का भाग देने तथा प्रथम निषेक से गुणा करने पर भिन्न-भिन्न निषेकों का भागहार उत्पन्न होता है।।2।।

पंच लब्धि

खय उवसमिय-विसोही देसण-पाओग्ग-करणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते।।1।।

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि, ये पाँच लब्धियाँ होती हैं। इनमें से पहली चार तो सामान्य हैं अर्थात् भव्य और अभव्य, दोनों प्रकार के जीवों के होती है, किन्तु करणलब्धि सम्यक्त्व होने के समय होती है।।1।।

उपशम सम्यक्त्व की अर्हता

दंसणमोहस्सुवसामओ दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो।
पंचिंदिओ य सण्णी णियमा सो होदि पज्जत्तो।।2।।

दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम करने वाला जीव चारों ही गतियों में जानना चाहिए। वह जीव नियम से पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है।।2।।

सणिव्वरय-भवणेसु य समुद्द-दीव-गुह-जोइस-विमाणे।
अहिजोग्ग-अणहिजोग्गे उवसामो होदि णायव्वो।।3।।

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध आदि सर्व नरकों में, सर्व-प्रकार के भवनवासी देवों में, सर्व समुद्रों और द्वीपों में गुह अर्थात् समस्त व्यन्तर देवों में समस्त ज्योतिष्क देवों में, सौधर्मकल्प से लेकर नव ग्रैवेयक विमान तक विमानवासी देवों में, अभियोग्य अर्थात् वाहनादि कर्म में नियुक्त वाहन देवों में, उससे भिन्न किल्विषिक आदि अनुत्तम तथा परिषद आदि उत्तम देवों में दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम होता है।।3।।

उपशम सम्यक्त्व की विशेषता

उवसामगो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो।
उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि।।4।।

दर्शनमोह का उपशामक सर्व ही जीव निर्व्याघात अर्थात् उपसर्गादिक के आने पर भी विच्छेद और मरण से रहित होता है तथा निरासान अर्थात् सासादन गुणस्थान को नहीं प्राप्त होता है। उपशान्त अर्थात् उपशम सम्यक्त्व होने के पश्चात् भजितव्य है, अर्थात् सासादन परिणाम को कदाचित् प्राप्त होता भी है और कदाचित् नहीं भी प्राप्त होता है। उपशमसम्यक्त्व का काल क्षीण अर्थात् समाप्त हो जाने पर मिथ्यात्व आदि किसी एक दर्शन मोहनीय प्रकृति का उदय आने से मिथ्यात्व आदि भावों को प्राप्त होता है। अथवा दर्शन मोहनीय कर्म के क्षीण हो जाने पर निरासान अर्थात् सासादन परिणाम से सर्वथा रहित होता है।।4।।

सायारे पट्ठवओ णिट्ठवओ मज्झिमो य भयणिज्जो।
जोगे अण्णदरम्मि दु जहण्णए तेउलेस्साए।।5।।

साकार अर्थात् ज्ञानोपयोग की अवस्था में ही जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रस्थापक अर्थात् प्रारम्भ करने वाला होता है, किन्तु निष्ठज्ञपरक अर्थात् उसे सम्पन्न करने वाला, मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है अर्थात् वह साकारोपयोगी भी हो सकता है, अनाकारोपयोगी भी हो सकता है। मनोयोग आदि तीनों योगों में से किसी भी एक योग में वर्तमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है। कम से कम तेजोलेश्या के जघन्य अंश में वर्तमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है यह मनुष्य और तिर्यञ्चों की अपेक्षा जानना चाहिये।।5।।

मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भयणिज्जं।।6।।

उपशामक के जबतक अन्तर प्रवेश नहीं होता है तबतक मिथ्यात्व वेदनीय कर्म का उदय जानना चाहिए। दर्शन मोहनीय के उपशान्त होने पर अर्थात् उपशम सम्यक्त्व के काल में और सासादन काल में मिथ्यात्व कर्म का उदय नहीं रहता है, किन्तु उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर मिथ्यात्व का उदय भजनीय है अर्थात् किसी के उसका उदय होता भी है और किसी के नहीं भी होता है।।6।।

सव्वम्हि ट्ठिदिविसेसे उवसंता तिण्णि होंति कम्मंसा।
एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा।।7।।

तीनों कर्मांश अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति, ये तीनों कर्म दर्शन मोहनीय की उपशान्त अवस्था में सर्व स्थिति विशेषों के साथ उपशान्त रहते हैं, अर्थात् उन तीनों कर्मों के एक भी स्थिति का उस समय उदय नहीं रहता है तथा एक ही अनुभाग में उन तीनों कर्मांशों के सभी स्थिति विशेष अवस्थित रहते हैं, अर्थात् अन्तर से बाहिरी

अनन्तरवर्ती जघन्य स्थिति विशेष में जो अनुभाग होता है वही अनुभाग उससे ऊपर के समस्त स्थिति विशेषों में भी होता है, उससे भिन्न प्रकार का नहीं।।7।।

मिच्छत्तपच्चओ खलु बंधो उवसामयस्स बोद्धव्वो।
उवसंते आसाणे तेण परं होदि भयणिज्जो।।8।।

उपशम के प्रथमस्थिति के अन्तिम समय तक मिथ्यात्व प्रत्ययक अर्थात् मिथ्यात्व के निमित्त से ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध जानना चाहिए। (यद्यपि असंयम, कषाय आदि अन्य भी बंध के कारण विद्यमान है, तथापि उनकी विवक्षा नहीं की गई है, किन्तु प्रधानता से मिथ्यात्व कर्म की ही विवक्षा की गई है।) दर्शनमोह की उपशान्त अवस्था में और सासादन सम्यक्त्व की अवस्था में मिथ्यात्वनिमि त्तक बंध नहीं होता है। इसके पश्चात् मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है अर्थात् मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के तन्निमित्तक बन्ध होता है और अन्य गुणस्थान को प्राप्त हुए जीवों के तन्निमित्तक बन्ध नहीं होता है ।।8।।

उपशम सम्यक्त्व की गति

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो।
तेण परं उदओ खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स।।9।।

अन्तर्मुहूर्त काल तक सर्वोपशम से अर्थात् दर्शन मोहनीय के सभी भेदों के उपशम से जीव उपशान्त अर्थात् उपशम सम्यग्दृष्टि रहता है। इसके पश्चात् नियम से उसके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन तीन कर्मों में से किसी एक कर्म का उदय होता है।।9।।

दर्शन मोह के अबन्धक

सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्साबंधगो भणिदो।
वेदगसम्माइट्ठी खइओ व अबंधगो होदि।।10।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय कर्म का अबंधक अर्थात् बन्ध नहीं करने वाला कहा गया है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा 'च' शब्द से उपशम सम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शन मोहनीय कर्म का अबन्धक होता है।।।10।।

सर्वोपशम और देशोपशम

सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण।
भजिदव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण।।11।।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ सर्वोपशम से होता है। इसी प्रकार विप्रकृष्ट जीव के अर्थात् जिसने पहले कभी सम्यक्त्व को प्राप्त किया था, किन्तु पश्चात् मिथ्यात्व को प्राप्त होकर और वहाँ सम्यक्त्व प्रकृति एवं सम्यग्मिथ्यात्व कर्म की उद्वेलना कर बहुत काल तक मिथ्यात्व-सहित परिभ्रमण कर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त किया है, ऐसे जीव के प्रथमोपशम सम्यक्त्व का लाभ भी सर्वोपशम से होता है, किन्तु जो जीव सम्यक्त्व से गिरकर अभीक्ष्ण अर्थात् जल्दी ही पुनः पुनः सम्यक्त्व को ग्रहण करता है वह सर्वोपशम और देशोपशम से भजनीय है। (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन तीन कर्मों के उदयाभाव को सर्वोपशम कहते हैं तथा सम्यक्त्व प्रकृति सम्बन्धी देशघाती स्पर्धकों के उदय को देशोपशम कहते हैं।)।।11।।

अनादि और सादि मिथ्यादृष्टि

सम्मत्तपढमलंभस्सणंतरंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं।
लंभस्स अपढमस्स दु भजिदव्वं पच्छदो होदि।।12।।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के जो सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ होता है उसके अनन्तर पूर्व मिथ्यात्व का उदय होता है, किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीव के जो सम्यक्त्व का अप्रथम अर्थात् दूसरी, तीसरी आदि बार लाभ

होता है, उसके अनन्तर पश्चात् समय में मिथ्यात्व भजितव्य है अर्थात् वह कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त होता है।।12।।

कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजिदव्वो।
एयं जस्स दु कम्मं ण य संकमणेण सो भज्जो।।13।।

जिस जीव के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति, ये तीन कर्म सत्ता में होते हैं अथवा 'तु' शब्द से मिथ्यात्व या सम्यक्त्व प्रकृति के बिना शेष दो कर्म सत्ता में होते हैं, वह नियम से संक्रमण की अपेक्षा भजितव्य है, अर्थात् कदाचित् दर्शनमोह का संक्रमण करने वाला होता है और कदाचित् नहीं भी होता है। जिस जीव के एक ही कर्म सत्ता में होता है वह संक्रमण की अपेक्षा भजनीय नहीं है, अर्थात् वह नियम से दर्शनमोह का असंक्रमक ही होता है।।3।।

सम्यग्दृष्टि जीव

सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा।।14।।

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो नियम से श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् अज्ञानवश सद्भूत अर्थ को स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के नियोग से असद्भूत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है ।।4।।

मिथ्यादृष्टि जीव

मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।5।।

मिथ्यादृष्टि जीव नियम से सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का तो श्रद्धान नहीं करता है, किन्तु असर्वज्ञों के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव का अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का श्रद्धान करता है।।15।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव

सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो।
तह वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होदि बोद्धव्वो।।6।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव साकारोपयोगी भी होता है और अनाकारोपयोगी भी होता है, किन्तु व्यंजनावग्रह में अर्थात् विचारपूर्वक अर्थ को ग्रहण करने की अवस्था में साकारोपयोगी ही होता है, ऐसा जानना चाहिए।।16।।

दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक और निष्ठापक

दंसणमोहक्खवणापट्ठवओ कम्मभूमिजादो दु।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवओ चावि सव्वत्थ।।7।।

कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ और मनुष्यगति में वर्तमान जीव ही नियम से दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक अर्थात् प्रारम्भ करने वाला होता है, किन्तु उसका निष्ठापूर्वक अर्थात् पूर्ण करने वाला सर्वत्र अर्थात् चारों गतियों में होता है।।7।।

निधत्ति और निकाचित

उदए संकम-उदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्क।
उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्मं।।18।।

जो कर्म उदय में न दिया जा सके वह उपशान्त, जो संक्रमण व उदय दोनों में ही न दिया जा सके वह निधत्त तथा जो उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण व उदय, चारों में ही न दिया जा सके वह निकाचित कारण

है।।18।।

कर्मों का जघन्य स्थिति बन्ध

बारस य वेदणिज्जे णामा-गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
ट्ठिदिबंधो दु जहण्णो भिण्णमुहुत्तं तु सेसाणं।।19।।

वेदनीय का बारह मुहूर्त, नाम व गोत्र का आठ मुहूर्त तथा शेष कर्मों का अन्तर्मुहूर्त मात्र जघन्य स्थिति बन्ध होता है।।19।।

ओवट्ठणा जहण्णा आवलिया ऊणिया तिभागेण।
एसा ट्ठिदिसु जहण्णा तहाणुभागेसणंतेसु।।20।।

यहाँ अपकर्षण में जघन्य अतिस्थापना का प्रमाण त्रिभाग से हीन आवली मात्र है। यह जघन्य अतिस्थापना का प्रमाण स्थितियों के विषय में ग्रहण करना चाहिये। अनुभागविषयक जघन्य अपवर्तना अनन्त स्पर्धकों से प्रतिबद्ध है। अर्थात् जब तक अनन्त स्पर्धकों की अतिस्थापना नहीं होती तब तक अनुभागविषयक अपकर्षण की प्रवृत्ति नहीं होती।।20।।

संकामेदुक्कड्डदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजिदव्वा।।21।।

जिन कर्मप्रदेशों का संक्रमण अथवा उत्कर्षण करता है वे आवलीमात्र काल तक अवस्थित अर्थात् क्रियान्तरपरिणाम के बिना जिस प्रकार जहाँ निक्षिप्त हैं। उसी प्रकार ही वहाँ निश्चल भाव से रहते हैं। इसके पश्चात् उक्त कर्मप्रदेश वृद्धि, हानि एवं अवस्थानादि क्रियाओं से भजनीय हैं।।21।।

ओकड्डदि जे अंसे से काले ते च होंति भजिदव्वा।
वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीय संकमे उदए।।22।।

जिन कर्मांशों का अपकर्षण करता है वे अनन्तर काल में स्थित्यादि

की वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण और उदय, इनसे भजनीय हैं, अर्थात् अपकर्षण किये जाने के अनन्तर समय में ही उनमें वृद्धि आदिक उक्त क्रियाओं का होना संभव है।।22।।

एक्कं च ट्ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु दिट्ठदिविसेसु।
वड्ढेदि रहस्सेदि च तहाणुभागेसणंतेसु।।23।।

एक स्थितिविशेष का उत्कर्षण करने वाला नियम से असंख्यात स्थितिविशेषों में बढ़ाता अथवा घटाता है। इसी प्रकार एक अनुभागस्पर्धकों में ही बढ़ाता अथवा घटाता है। इसका अभिप्राय यह है कि एक स्थिति का उत्कर्षण करने में जघन्य निक्षेप आवली के असंख्यातवें भागमात्र व अपकर्षण करने में जघन्य निक्षेप आवली के त्रिभाग मात्र होता है तथा अनुभाग के उत्कर्ष व अपकर्षण का जघन्य व उत्कृष्ट निक्षेप अनुभागस्पर्धक प्रमाण होता है ।।23।।

संछुहइ पुरिसवेदे इत्थीवेदं णवुंसयं चेव।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्मि संछुहइ।।24।।

स्त्रीवेद और नपुंसकवेद को पुरुषवेद में तथा पुरुषवेद व हास्यादि छह, इन सात नोकषायों को संज्वलनक्रोध में नियम से स्थापित करता है।।24।।

गुणित हीनाधिकता

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेडि असंखेज्जा पदेसअग्गेण बोद्धव्वा।।25।।

बंध से उदय अधिक है और उदय से संक्रमण अधिक होता है। इनकी अधिकता प्रदेशाग्र से असंख्यातगुणित श्रेणी रूप जानना चाहिये। अर्थात् बंध द्रव्य से उदय द्रव्य असंख्यातगुणा है और उदयद्रव्य से संक्रमणद्रव्य असंख्यातगुणा है।।25।।

गुणसेडिअसंखेज्जा पदेसअग्गेण संकमो उदओ।
से काले से भज्जो बंधो पदेसग्गो।।26।।

संक्रमण (गुणसंक्रमण) और उदय उत्तरोत्तर अनन्तर काल में अपने-अपने प्रदेशाग्र की अपेक्षा असंख्यातगुणित श्रेणी रूप होते हैं। किन्तु प्रदेशाग्र की अपेक्षा बन्ध भजनीय है, अर्थात् वह योगों की हानि, वृद्धि व अवस्थान के अनुसार हानि, वृद्धि या अवस्थान रूप होता है।।।26।।

उदओ च अणंतगुणो संपहिबंधेण होदि अणुभागे।
से कालो उदयादो संपदिबंधो अणंतगुणो।।27।।

अनुभागविषयक साम्प्रतिक बन्ध से साम्प्रतिक अनुभागोदय अनन्तगुणा होता है। इससे अनन्तर काल में होने वाले उदय से साम्प्रतिक बन्ध अनन्तगुणा होता था।।27।।

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेडि अणंतगुणा बोद्धव्वा होदि अणुभागे।।28।।

बन्ध से अधिक उदय और उदय से अधिक संक्रमण होता है। इस प्रकार अनुभाग के विषय में अनन्तगुणित गुणश्रेणी जानना चाहिये।।28।।

गुणसेडि अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे।
गणणादियंतसेडी पदेसअग्गेण बोद्धव्वा।।29।।

(अप्रशस्त प्रकृतियों के) अनुभाग का वेदक अनन्तगुणित हीन गुणश्रेणी रूप से होता है तथा प्रदेशाग्र की अपेक्षा गणनातिक्रान्त अर्थात् असंख्यातगुणी श्रेणी रूप से वेदक होता है, ऐसा जानना चाहिये।।29।।

बंधोदएहि णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि।।30।।

नियमतः बन्ध वह उदय से अनुभाग अर्थात् अनुभाग बन्ध और

अनुभाग उदय उत्तरोत्तर अनन्तरकाल में अनन्तगुणे हीन हैं, परन्तु अनुभागसंक्रम भाज्य है अर्थात् उक्त हीनता के नियम से रहित है।।30।।

जीव की संग्रह कृष्टियाँ

बारस णव छ त्तिण्णि य किट्टीओ होंति अहव णंताओ।
एक्केक्कम्हि कसाए तिग तिग अहवा अणंताओ।।31।

क्रोध के उदय से श्रेणी पर चढ़े हुए जीव के बारह, मान के उदय से चढ़े हुए जीव के नौ, माया के उदय से चढ़े हुए जीव के छह और लोभ के उदय से चढ़े हुए जीव के तीन संग्रहकृष्टियाँ अथवा अनन्त अन्तरकृष्टियां होती हैं।।31।।

कृष्टि का कारक और अकारक

किट्टी करेदि णियमा ओवट्टेंतो ठिदी य अणुभागे।
वड्ढेंतो किट्टीए अकारगो होदि बोद्धव्वो।।32।।

स्थिति व अनुभाग का अपकर्षण करने वाला नियम से कृष्टियों को करता है, किन्तु स्थिति व अनुभाग का उत्कर्षण करने वाला कृष्टि का अकारक होता है। ऐसा समझना चाहिए।।32।।

कृष्टि का लक्षण

गुणसेडि अणंतगुणा लोभादीकोधपच्छिमपदादो।
कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं।।33।।

चार संज्वलन कर्मों के अनुभाग के विषय में संज्वलन लोभ की जघन्य कृष्टि से लेकर संज्वलन-क्रोध की अन्तिम उत्कृष्टि यथाक्रम से अनन्तगुणित गुणश्रेणी है। कृष्टि का लक्षण है।।33।।

किट्टी च ठिदिविसेसेसु असंखेज्जेसु णियमसा होदि।
णियमा अणुभागेसु च होदि हु किट्टी अणंतेसु।।34।।

कृष्टि नियम से असंख्यात स्थिति भेदों में और नियमतः अनन्त अनुभागों में होती है।।34।।

सव्वाओ किट्टीओ विदियट्ठिदिए दु होंति सव्विस्से।
जं किट्टिं वेदयदे तिस्से अंसा य पढमाए।।35।।

सब अर्थात् संग्रह व अवयव कृष्टियां समस्त द्वितीय स्थिति में होती हैं, परन्तु जिसे कृष्टि का वेदन करता है उसके अंश प्रथम स्थिति में रहते हैं।।35।।

जिनेन्द्र दर्शन का महत्त्व

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुञ्जरम्।
शतधा भेदमायाति गिरिवज्रहतो यथा।।1।।

जिनेन्द्रों के दर्शन से पाप संघात रूपी कुंजर के सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार कि वज्र के आघात से पर्वत के सौ टुकड़े हो जाते हैं।।1।।

दीपो यथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरीक्षम्।
दिशान्न कांचिद्विदिशान्न कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्।।2।।
जीवस्तथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्।3।।

"जिस प्रकार दीपक जब बुझता है तब वह न तो पृथिवी की ओर जाता न आकाश और न किसी दिशा को जाता है, न विदिशा को, किन्तु तैल के क्षय होने से केवल शान्त हो जाता है, उसी प्रकार निर्वृत्ति को प्राप्त जीव न पृथिवी की ओर जाता है न आकाश की ओर, न किसी दिशा को जाता न विदिशा को, किन्तु क्लेश के क्षय हो जाने से केवल शान्ति को प्राप्त होता है।।2-3।।

धवला पुस्तक

7

जे बंधयरा भावा मोक्खयरा भावि जे दु अज्झप्पे।
जे चावि बंधमोक्खे अकराया ते वि विण्णेया।।1।।

अध्यात्म में जो बन्ध के उत्पन्न करने वाले भाव हैं और जो मोक्ष को उत्पन्न करने वाले भाव हैं तथा जो बन्ध और मोक्ष दोनों को नहीं उत्पन्न करने वाले भाव हैं, वे सब भाव जानने योग्य हैं।।1।।

आस्रव भाव और संवर भाव

मिच्छत्ताविरदी वि य कसायजोगा य आसवा होंति।
दंसण-विरमण-णिग्गह-णिरोहया संवरो होंति।।2।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये कर्मों के आस्रव भाव हैं अर्थात् कर्मों के आगमनद्वार हैं तथा सम्यग्दर्शन, संयम अर्थात् विषयविरक्ति, कषायनिग्रह और मन-वचन-काय का निरोध ये संवर अर्थात् कर्मों के निरोधक भाव हैं।।2।।

भावों की विशेषता

ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।
भावो दु पारिणामिओ करणोभयवज्जियो होंति।।3।।

औदायिक भाव बन्ध करने वाले हैं, औपशामिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के कारण है तथा पारिणामिक भाव बन्ध और मोक्ष दोनों के कारण से रहित हैं।।3।।

कर्मों के उदय और क्षय की अवस्था

दव्व-गुण-पज्जए जे जस्सुदएण य ण जाणदे जीवो।
तस्सक्खएण सो च्चिय जाणदि सव्वं तयं जुगवं ।।4।।

जिस ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों को नहीं देखता है, उसी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से वही जीव उन सभी तीनों को एक साथ देखने लगता है।।4।।

दव्व-गुण-पज्जए जे जस्सुदएण य ण पस्सदे जीवो।
तस्सक्खएण सो च्चिय पस्सदि सव्वं तयं जुगवं ।।5।।

जिस दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों को नहीं देखता है, उसी दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से वही जीव उन सभी तीनों को एक साथ देखने लगता है ।।5।।

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुहवइ।
तस्सोदयक्खएण दु जायदि अप्पत्थणंतसुहो।।6।।

जिस वेदनीय कर्म के उदय से जीव सुख और दुःख इस दो प्रकार की अवस्था का अनुभव करता है उस कर्म के उदय के क्षय से आत्मोत्थ अनंतसुख उत्पन्न होता है।।6।।

मिच्छत्त-कसायासंजमेहि जस्सोदएण परिणमइ।
जीवो तस्सेव खया त्तव्विवरीदे गुणे लहइ।।7।।

जिस मोहनीय कर्म के उदय से जीव मिथ्यात्व, कषाय और असंयम रूप से परिणमन करता है, उसी मोहनीय के क्षय से इनके विपरीत गुणों को प्राप्त करता है।।7।।

जस्सोदएण जीवो अणुसमयं मरदि जीवदि वराओ।
तस्सोदयक्खएण दु भव-मरणविवज्जियो होइ।8।।

जिस आयु कर्म के उदय से बेचारा जीव प्रतिसमय मरता और जीता

है, उसी कर्म के उदयक्षय से वह जीव जन्म और मरण से रहित हो जाता है।।8।।

अंगोवंग-सरीरिंदिय-मणुस्सासजोगणिप्फत्ती।
जस्सोदएण सिद्धो तण्णामखाएण असरीरो।।9।।

जिस नाम कर्म के उदय से अंगोपांग, शरीर, इन्द्रिय, मन और उच्छ्‌वास से योग्य निष्पत्ति होती है, उसी नाम कर्म के क्षय से सिद्ध अशरीरी होते हैं।।9।।

उच्चुच्च उच्च तह उच्चणीच णीचुच्च णीच णीचं।
जस्सोदएण भावो णीचुच्चविवज्जिदो तस्स।।10।।

जिस गोत्र कर्म के उदय से जीव उच्चोच्च, उच्चनीच, नीचोच्च, नीच या नीचनीच भाव को प्राप्त होता है, उसी गोत्र कर्म के क्षय से वह जीव नीच और ऊँच भावों से मुक्त होता है।।10।।

विरियोवभोग-भोगे दाणे लाभे जदुदयदो विग्घं।
पंचविहलद्धिजुत्तो तक्कम्मखाया हवे सिद्धा।।11।।

जिस अन्तराय कर्म के उदय से जीव के वीर्य, उपभोग, भोग, दान और लाभ में विघ्न उत्पन्न होता है, उसी कर्म के क्षय से सिद्ध पंचविध लब्धि से संयुक्त होते हैं।।1।।

सिद्ध की वन्दना

जयमंगलभूदाणं विमलाणं णाण-दंसणमयाणं।
तेलोक्कसेहराणं णमो सया सव्वसिद्धाणं।।12।।

जो जग में मंगलभूत हैं, विमल हैं, ज्ञान-दर्शनमय हैं और त्रैलोक्य के शेखर रूप हैं ऐसे समस्त सिद्धों को मेरा सदा नमस्कार हो।।12।।

सामित्त अणियोगद्दार

नैगम नय

कं पि णरं दट्ठूण य पावजणसमागमं करेमाणं।
णेगमणएण भण्णइ णेरइओ एस पुरिसो त्ति।।1।।

किसी मनुष्य को पापी लोगों का समागम करते हुए देखकर नैगम नय से कहा जाता है कि वह पुरुष नारकी है।।1।।

व्यवहार नय

ववहारस्स दु वयणं जइया कोदंड-कंडगयहत्थो।
भमइ मए मग्गंतो तइया सो होइ णेरइओ।।2।।

व्यवहार नय का वचन इस प्रकार है– जब कोई मनुष्य हाथ में धनुष और बाण लिये मृगों की खोज में भटकता फिरता है तब वह नारकी कहलाता है।।2।।

ऋजुसूत्र नय

उज्जुसुदस्स दु वयणं जइआ इर ठाइदूण ठाणम्मि।
आहणदि मए पावो तइया सो होइ णेरइओ।।3।।

ऋजुसूत्र नय का वचन इस प्रकार है– जब कोई मनुष्य हाथ में धनुष और बाण लिये मृगों की खोज में भटकता फिरता है तब वह नारकी कहलाता है।।3।।

शब्द नय

सद्दणयस्स दु वयणं जइया पाणेहि मोइदो जंतू।
तइया सो णेरइओ हिंसाकम्मेण संजुत्तो।।4।।

शब्द नय का वचन इस प्रकार है– जब जन्तु प्राणों से विमुक्त कर

दिया जाय तभी वह आघात करने वाले हिंसा कर्म से संयुक्त मनुष्य नारकी कहा जाय।।4।।

समभिरूढ़ नय

वयणं दु समभिरूढं णारयकम्मस्स बंधगो जइया।
तइया सो णेरइओ णरयकम्मेण संजुत्तो।।5।।

समभिरूढ़ नय का वचन इस प्रकार है– जब मनुष्य नारक कर्म का बन्धक होकर नारक कर्म से संयुक्त हो जाय तभी वह नारकी कहा जाय।।5।।

एवंभूत नय

णिरयगइं संपत्तो जइया अणुहवइ णारयं दुक्खं।
तइया सो णेरइओ एवंभूदो णओ भणदि।।6।।

जब वही मनुष्य नरक गति को प्राप्त होकर नरक के दुःख अनुभव करने लगता है तभी वह नारकी है, ऐसा एवंभूत नय कहता है।।।6।।

समुत्कीर्तन का लक्षण

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं।
एदे पंच वियप्पा ट्ठाणसमुक्कित्तणे णेया।।7।।

संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्दिष्ट, इन पाँच विकल्पों का स्थान समुत्कीर्तन जानना चाहिये।।7।।

संख्या का स्वरूप

सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिभंगेसु एक्कमेक्केसु।
मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा।।8।।

सभी पूर्ववर्ती भंग उत्तरवर्ती प्रत्येक भंग में मिलाये जाते हैं, अतएव

उन भंगों को क्रमशः गुणित करने पर सब भंगों की संख्या उत्पन्न होती है।।8।

प्रस्तार का स्वरूप

पढमं पयडिपमाणं कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च।
पिंडं पडि एक्केक्के णिक्खित्ते होदि पत्थारो।।9।।

पहले प्रकृति प्रमाण को क्रम से रखकर अर्थात् उसकी एक-एक प्रकृति अलग-अलग रखकर एक-एक के ऊपर उपरिम प्रकृतियों के पिण्ड प्रमाण को रखने पर प्रस्तार होता है।।9।।

णिक्खत्तु विदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं।
पिंडं पडि णिक्खित्ते एवं सेसा वि कायव्वा।।10।।

दूसरे प्रकृतिपिण्ड का जितना प्रमाण है उतने बार प्रथम पिंड को रखकर उसके ऊपर द्वितीय पिंड को एक-एक करके रखना चाहिये। (इस निक्षेप के योग को प्रथम समझ और अगले प्रकृतिपिंड को द्वितीय समझ तत्प्रमाण इस नये प्रथम निक्षेप को रखकर जोड़ना चाहिये।) आगे भी शेष प्रकृतिपिण्डों को इसी प्रक्रिया से रखना चाहिये।।10।।

पढमक्खो अंतगओ आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो।
दोण्णि व गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो।।11।।

प्रथम अक्ष अर्थात् प्रकृति विशेष जब अन्त तक पहुँचकर पुनः आदि स्थान पर आता है, तब दूसरा प्रकृतिस्थान भी संक्रमण कर जाता है अर्थात् अगली प्रकृति पर पहुँच जाता है और जब ये दोनों स्थान अन्त को पहुँचकर आदि को प्राप्त हो जाते हैं तब तृतीय अक्ष का भी संक्रमण होता है।।11।।

संगमाणेण विहत्ते सेसं लक्खित्तु पक्खिवे रूवं।
लक्खिज्जंते सुद्धे एवं सव्वत्थ कायव्वं।।12।।

जितने वां उदयस्थान जानना अभीष्ट हो उसी स्थान संख्या को पिंडमान से विभक्त करे। जो शेष रहे उसे अक्षस्थान समझे। पुनः लब्ध में एक अंक मिलाकर दूसरे पिंड–मानकर भाग देवे और शेष को अक्षस्थान समझ। जहाँ भाग देने से कुछ न बचे वहाँ अन्तिम अक्षस्थान समझे और फिर लब्ध में एक अंक न मिलावे। इस प्रकार समस्त पिडों द्वारा विभाजन क्रिया करने से उद्दिष्ट स्थान निकल आता है।।12।।

संठाविदूण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे।
अवणेज्जोणंकिदयं कुज्जा पढमं तियं जाव।।13।।

एक अंक को स्थापित करके आगे के पिंड का जो प्रमाण हो उससे गुणा करे और लब्ध में से अनंकित को घटा दे। ऐसा प्रथम पिंड के अंत तक करता जावे। इस प्रकार उद्दिष्ट निकल आता है।।13।।

घातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति

सव्वारणीयं पुण उक्कस्सं होदि दारुगसमाणे।
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं।।14।।

घातिया कर्मों की जो अनुभाग शक्ति लता, दारु, अस्थि और शैल समान कही गयी है उसमें दारुतुल्य से ऊपर अस्थि और शैल तुल्य भागों में उत्कृष्ट सर्वावरणीय शक्ति पाई जाती है, किन्तु दारुसम भाग के निचले अनन्तिम भाग में (वह उससे नीचे सब लतातुल्य भाग में) देशावरण शक्ति है तथा ऊपर के अनन्त बहुभागों में सर्वावरण शक्ति है।।14।।

देशघाती कर्म

णाणावरणचदुक्कं दंसणतिगमंतराइगा पंच।
ता होंति देसघादी संजलणा णोकसाया य।।15।।

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चार ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन दर्शनावरण, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँचों अन्तराय तथा संज्वलनचतुष्क और नव नोकषाय ये तेरह मोहनीय कर्म देशघाती होते हैं।।15।।

एसो य सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।16।।

ज्ञान और दर्शनरूप लक्षण वाला मेरा आत्मा ही एक और शाश्वत है। शेष समस्त संयोगरूप लक्षण वाले पदार्थ मुझसे बाह्य हैं।।16।।

सिद्ध का लक्षण

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य।
सायारमणायारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं।।17।।

जो अशरीर अर्थात् काय रहित हैं, शुद्ध जीव प्रदेशों से घनीभूत हैं, दर्शन और ज्ञान में अनाकार व साकार उपयोग से उपयुक्त हैं, वे सिद्ध हैं। यह सिद्ध जीवों का लक्षण हैं।।17।।

नय का स्वरूप

विधिविषक्त प्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानं।
गुणो परो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टांतसमर्थनस्ते।।18।।

(हे श्रेयांस जिन!) आपके मत में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन स्व-चतुष्टय की अपेक्षा किये जाने वाले विधान का स्वरूप परचतुष्टय की अपेक्षा से होने वाले प्रतिषेध से सम्बद्ध पाया जाता है। विधि और प्रतिषेध, इन दोनों में से एक प्रधान होता है वही प्रमाण है और दूसरा गौण है। इनमें जो प्रधानता का नियामक है वही नय है, जो दृष्टान्त का अर्थात् धर्म विशेष का समर्थन करता है।।18।।

दर्शन का स्वरूप

जं सामण्णंगहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं।
अविसेसिदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए।।19।।

वस्तुओं का आकार न करके व पदार्थों में विशेषता न करके जो सामान्य का ग्रहण किया जाता है, उसे ही शास्त्र में दर्शन कहा है।।23।।

चक्षु और अचक्षु दर्शन

चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खुदंसणं वेंति।
दिट्ठस्स य जं सरणं णायव्वं तं अचक्खु त्ती।।20।।

जो चक्षु इन्द्रियों का आलम्बन लेकर प्रकाशित होता है या दिखता है, उसे चक्षु दर्शन कहते हैं और जो अन्य इन्द्रियों से दर्शन होता है उसे अचक्षु दर्शन जानना चाहिये।।20।।

अवधि दर्शन का लक्षण

परमाणुआदियाइं अंतिमखंध त्ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं।।21।।

परमाणु से लेकर अन्तिम स्कन्ध तक जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है वह अवधिदर्शन है।।21।।

मिथ्यात्वी का लक्षण

एवं सुत्तपसिद्धं भणंति जे केवलं ण चत्थि त्ति।
मिच्छादिट्ठी अण्णो को तत्तो एत्थ जियलोए।।22।।

इस प्रकार सूत्र द्वारा प्रसिद्ध होते हुए भी जो कहते हैं कि केवल दर्शन नहीं है, उनसे बड़ा इस जीव लोक में कौन मिथ्यात्वी होगा?।।22।।

कालोत्ति समत्तमणिओगद्दारं

मुहभूमीण विसेसो उच्छयभजिदो दु जो हवे वड्ढी।
वड्ढी इच्छिगुणिदा मुहसहिया होइ वड्ढिफलं।।1।।

मुख और भूमिका जो विशेष अर्थात् अन्तर हो उसे उत्सेध से भाजित कर देने पर जो वृद्धि का प्रमाण आता है, उस वृद्धि को अभीष्ट से गुणा करके मुख में जोड़ने पर वृद्धि का फल प्राप्त हो जाता है।।1।।

इगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क एक्काए।
उदुआदिविमाणिंदा तिरधियसट्ठी मुणेयव्वा।।2।।

सौधर्म-ईशान कल्पों में इकतीस विमान प्रस्तर हैं, सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में सात, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में चार, लांतव-कापिष्ठ में दो, शुक्र-महाशुक्र में एक, शतार-सहस्रार में एक, आनत-प्रानत और आरण-अच्युत कल्पों में छह तथा नौ ग्रैवेयकों में एक-एक, अनुदिशों में एक और अनुत्तर विमानों में एक इस प्रकार ऋतु आदिक इन्द्रक विमान तिरेसठ जानना चाहिए।।2।।

दव्वपमाणुगमोत्ति समत्तमणिओगद्दारं

अवहार काल

बारस दस अट्ठेव य मूला छ त्तिग दुगं च णिरएसु।
एक्कारस णव सत्त य पण य चउक्कं च देवेसु।।1।।

नरकों में द्वितीयादि पृथिवियों का द्रव्य प्रमाण लाने के लिए जगश्रेणी का बारहवां, दशवां, आठवां, छठा, तीसरा और दूसरा वर्गमूल अवहार काल है तथा देवों में सानत्कुमारादि पाँच कल्पयुगलों का द्रव्य प्रमाण लाने के लिए जगश्रेणी का ग्यारहवां, नौवां, सातवां, पाँचवां और चौथा

वर्गमूल अवहार काल है।।1।।

तल्लीनमधुगविमलं धूमसिलागाविचारभयमेरू।
तटहरिखझसा होंति हु माणुसपज्जत्त संखंका।।2।।

तकारादि अक्षरों से सूचित क्रमशः छह, तीन, तीन, शून्य, पाँच, नौ, तीन, चार, पाँच, तीन, नौ, पाँच, सात, तीन, तीन, चार, छह, दो, चार, एक, पाँच, दो, छह, एक, आठ, दो, दो, नौ और सात ये मनुष्य पर्याप्त राशि की संख्या के अंक हैं।।2।।

निरस्यति परस्यार्थं स्वार्थं कथयति श्रुतिः।
तमो विधुन्वती भास्यं यथा भासयति प्रभा।।3।।

जिस प्रकार प्रभा अन्धकार को नष्ट करती हुई प्रकाशनीय पदार्थ का प्रकाशन करती है, उसी प्रकार श्रुति पर के अभीष्ट का निराकरण करती है और अपने अभीष्ट अर्थ को कहती है।।3।।

खेत्ताणुगमोत्ति समत्तमणिओगद्दारं

भवनत्रिक की अवगाहना

पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराण दस धणू होंति।
वेंतर-जोदिसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा।।1।।

असुरकुमारों के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धनुष और शेष कुमार देवों की दश धनुष होती है। व्यन्तर देवों की ऊँचाई दश धनुष और ज्योतिषी देवों की सात धनुष प्रमाण जानना चाहिये।।1।।

वैमानिक देवों की अवगाहना

सोहम्मीसाणेसु य देवा खलु होंति सत्तरयणीया।
छच्चेव य रयणीयो सणक्कुमारे य माहिंदे।।2।।

सौधर्म व ईशान कल्प में स्थित देव सात रत्नि ऊँचे और सनत्कुमार

व माहेन्द्र कल्प में छह रत्नि ऊँचे होते हैं।।2।।

बम्हे य लांतर वि य कप्पे खलु होंति पंच रयणीयो।
चत्तारि य रयणीयो सुक्क-सहस्सारकप्पेसु।।3।।

ब्रह्म व लान्तव कल्प में पाँच तथा शुक्र व सहस्रार कल्पों में चार रत्नि प्रमाण उत्सेध है।।3।।

आणद पाणदकप्पे आहुट्ठाओ हवंति रयणीयो।
तिण्णेव य रयणीओ तहारणे अच्चुदे चेय।।4।।

आनत-प्राणत कल्प में साढ़े तीन रत्नि और आरण व अच्युत कल्प में एक रत्नि प्रमाण शरीर की ऊँचाई जानना चाहिये।।4।।

हेट्ठिमगेवज्जेसु अ अड्ढाइज्जाओ होंति रयणीओ।
मज्झिमगेवज्जेसु अ रयणीओ होंति दो चेय।।5।।

अधस्तन ग्रैवेयकों में अढ़ाई रत्नि और मध्यम ग्रैवेयकों में दो रत्निप्रमाण शरीर की ऊँचाई है।।5।।

उवरिमगेवज्जेसु अ दिवट्ठरयणीओ होदि उस्सेहो।
अणुत्तरविमाणवासी णेया रयणी मुणेयव्वा।।6।।

उपरिम ग्रैवेयकों में डेढ़ रत्नि तथा अनुत्तर विमानवासी देवों के शरीर की ऊँचाई एक रत्नि प्रमाण जानना चाहिये।।6।।

पृथ्वियों में शीत-उष्णता

षष्ठ-सप्तमयोः शीतं शीतोष्णं पंचमे स्मृतम्।
चतुर्ष्वत्युष्णमुद्दिष्टस्तासामेव महीगुणाः।।1।।

छठी और सातवीं पृथिवी में शीत तथा पांचवीं में शीत व उष्ण दोनों माने गये हैं। शेष चार पृथिवियों में अत्यन्त उष्णता है। ये उनके ही पृथ्वीगुण हैं।।1।।

सम्यक्त्वादि में विरहकाल

सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोद्दस हवंति।
विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो।।1।।

उपशाम सम्यक्त्व में सात दिन, (उपशाम सम्यक्त्व सहित) विरताविरति अर्थात् देशव्रत में चौदह दिन और विरति अर्थात् महाव्रत में पन्द्रह दिन प्रमाण विरहकाल जानना चाहिये।।1।।

धवला पुस्तक

४

बन्ध और मोक्ष का स्वरूप

बंधेण य संजोगो पोग्गलदव्वेण होइ जीवस्स।
बंधो पुण विण्णेओ बंधविओओ पमोक्खो दु।।1।।

जीव का पुद्‌गल द्रव्य से जो बन्ध रूप से संयोग होता है, उसे बन्ध जानना चाहिये और बन्ध के वियोग को मोक्ष जानना चाहिये।।1।।

बंधो बंधविही पुण सामित्तद्धाण पच्चयविही य।
एदे पंच णिओगा मग्गणठाणेसु मगेज्जा।।2।।

बन्ध, बन्धविधि, बन्धस्वामित्व, अध्वान अर्थात् बन्ध सीमा और प्रत्ययविधि, ये पाँच नियोग अनुयोग मार्गणास्थानों में खोजने योग्य हैं।।2।।

बंधोदय पुव्वं वा समं व णियएण कस्स व परेण।
अण्णदरस्सुदएण व सांतरविगयंतरं का च।।3।।
पच्चय-सामित्तविही संजुत्तद्धाणएण तह चेय।
सामित्तं णेयव्वं पयडीणं ठाणमासेज्ज।।4।।

बन्ध पूर्व में है, उदय पूर्व में हैं, या दोनों साथ हैं, किस कर्म का बन्ध निज के उदय के साथ होता है, किसका पर के उदय के साथ और किसका अन्यन्तर के उदय के साथ, कौन प्रकृति सान्तरबन्ध वाली है और कौन निरन्तरबन्ध वाली है, प्रत्ययविधि, स्वामित्वविधि तथा गतिसंयुक्त बन्धाध्वान के साथ प्रकृतियों के स्थान का आश्रयकर स्वामित्व जानना चाहिये।।3-4।।

बंधोदय पुव्वं वा समं व सपरोदए तदुभएण।
सांतर णिरंतरं वा चरिमेदर सादिआदीया ।।5।।

बन्ध पूर्व में होता है, उदय पूर्व में होता है, या दोनों साथ होते हैं, वह बन्ध स्वोदय से, परोदय से या दोनों के उदय से होता है, उक्त बन्ध सान्तर है या निरन्तर है, वह अन्तिम समय में होता है या इतर समय में होता है तथा वह सादि है या अनादि है।।5।।

गुणस्थानों में उदय व्युच्छित्ति

दस चदुरिगि सत्तारस अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्क एय दुग दुग चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविही।।6।।

दश, चार, एक, सत्तरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, दो, चौदह उनतीस और तेरह, (इस प्रकार क्रमशः मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में उदयव्युच्छित्ति प्रकृतियों की संख्या हैं)।।6।।

देवाउ-देवचउक्काहार दुअं च अजसमट्ठण्हं।
पढममुदओ विणस्सदि पच्छा बंधो मुणेयव्वो।।7।।

देवायु, देवचतुष्क अर्थात् देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक शरीर-अंगोपांग तथा आहारक शरीर-अंगोपांग एवं अयशकीर्ति, इन आठ प्रकृतियों का पहिले उदय नष्ट होता है, पश्चात् बन्ध-व्युच्छित्ति होती है, ऐसा जानना चाहिये।।7।।

बन्ध एवं उदय व्युच्छेद

मिच्छत्त-भय-दुगुंछा-हस्स-रई-पुरिस-थावरादावा।
सुहुमं जाइचउक्कं साहारणयं अपज्जत्तं।8।।
पण्णरस कसाया विणु लोहेणेक्केण आणुपुव्वी य।
मणुसाणं एदासिं समगं बंधोदवुच्छेदो।9।।

मिथ्यात्व, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, पुरुषवेद, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, साधारण, अपर्याप्त, संज्वलन लोभ के बिना पन्द्रह कषाय और मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, इन प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद और उदयव्युच्छेद साथ ही होता है।।8-9।।

पुव्वुत्तवसेसाओ एगासीदी हवंति पयडीओ।
ताणं बंधुच्छेदो पुव्वं पच्छोदउच्छेदो।।10।।

पूर्वोक्त प्रकृतियों से शेष जो इक्यासी प्रकृतियाँ रहती हैं उनका बन्ध व्युच्छेद पहिले और उदय व्युच्छेद पश्चात् होता है।।10।।

परोदय वाली कर्म प्रकृतियों

तित्थयर-णिरय-देवाउअ-चवेउव्वियछक्क दो वि आहारा।
एक्कारसयडीणं बंधो हु परोदए वुत्तो।।11।।

तीर्थंकर, नरकायु, देवायु, वैक्रियिक शरीरादि छह और दोनों आहारक, इन ग्यारह प्रकृतियों का बन्ध परोदय से कहा गया है।।1।।

स्वोदय परोदय बंध प्रकृतियाँ

णाणंतराय-दंसण-थिरादिचउ तेजकम्मदेहाइं।
णिमिणं अगुरुवलहुअं वण्णचउक्कं च मिच्छत्तं।।12।।
सत्तावीसेदाओ बज्झंति हु सोदएण पयडीओ।
सोदय परोदएण वि बज्झंतवसेसियाओ दु।।13।।

पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, दर्शनावरण चार, स्थिर आदिक चार, तैजस और कार्मण शरीर, निर्माण, अगुरुलघुत्व, वर्णादिक चार और मिथ्यात्व ये सत्ताईस प्रकृतियां तो स्वोदय से बंधती हैं और शेष प्रकृतियां स्वोदय-परोदय से बंधती हैं।।12-13।।

सत्तेताल धुवाओ तित्थयराहार-आउचत्तारि।
चउवण्णं पयडीओ बज्झंति णिरंतरं सव्वा।।14।।

सैतालीस ध्रुव प्रकृतियाँ, तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग और चार आयु, ये सब चौवन प्रकृतियाँ निरन्तर बंधती हैं।।14।।

प्रकृति बंध के प्रकार

णाणंतरायदसयं दंसण णव मिच्छ सोलस कसाया।
भयकम्म दुगुंच्छा वि य तेजा कम्मं च वण्णचदू।।15।।
अगुरुअलहु-उवघादं णिमिणं णामं च होंति सगदालं।
बंधो चउवियप्पो धुवबंधीणं पयडिबंधो।।16।।

ज्ञानावरण और अंतराय की दश, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भयकर्म, जुगुप्सा, तैजस और कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण नामकर्म, ये सैंतालीस ध्रुव बन्धी प्रकृतियाँ हैं। इनका प्रकृति बन्ध सादि, अनादि, ध्रुव एवं अध्रुव रूप से चार प्रकार का होता है।।15-16।।

सान्तर बन्ध वाली प्रकृतियाँ

इत्थि-णउंसयवेदा जाइचउक्कं असाद-णिरयदुगं।
आदाउज्जोवारइ-सोगासुह-पंचसंठाणा।।17।।
पंचासुहसंघडणा विहायगइ अप्पसत्थिया अण्णं।
थावर-सुहुमासुहदस चोत्तीसिह सांतरा बंधा।।18।।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, जाति चार, असाता वेदनीय, नरकगति, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अरति, शोक, अशुभ पाँच संस्थान, पाँच अशुभ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति तथा स्थावर, सूक्ष्म एवं अशुभ आदि अन्य दश, इस प्रकार ये चौंतीस प्रकृतियाँ यहाँ सान्तर बन्ध वाली

है।।17-18।।

सान्तर निरन्तर कर्म प्रकृतियाँ

सांतरणिरंतरेण य बत्तीसवसेसियाओ पयडीओ।
बज्झंति पच्चयाणं दुपयाराणं वसगयाओ।।19।।

शेष बत्तीस प्रकृतियाँ मूल व उत्तर भेद रूप दो प्रकार प्रत्ययों के वशीभूत होकर सान्तर-निरन्तर रूप से बंधती हैं।।19।।

गुणस्थानों में बन्ध प्रत्यय

चदुपच्चइगो बंधो पढमे उवरिमतिए तिपच्चइओ।
मिस्सगबिदिओ उवरिमदुगं च देसेगदेसम्हि।20।।
उवरिल्लपंचए पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्णं।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्णं होंति कम्माणं।21।।

प्रथम गुणस्थान में चारों प्रत्ययों से बन्ध होता है। इससे ऊपर तीन गुणस्थानों में मिथ्यात्व को छोड़कर शेष तीन प्रत्यय संयुक्त बन्ध होता है। संयम के एकदेशरूप देशासंयत गुणस्थान में दूसरा असंयम प्रत्यय मिश्ररूप तथा उपरितन कषाय व योग ये दोनों प्रत्ययों से बंध होता है। इसके ऊपर पाँच गुणस्थान में कषाय और योग इन दो प्रत्ययों के निमित्त से बन्ध होता। पुनः उपशान्तमोहादि तीन गुणस्थानों में केवल योगनिमित्तक बन्ध होता है। इस प्रकार गुणस्थान क्रम से आठ कर्मों के ये सामान्य प्रत्यय हैं।20-21।।

बंध प्रत्ययों की संख्या

पणवण्णा इर वण्णा तिदाल छादाल सत्ततीसा य।
चदुवीस दु-बावीसा सोलस एगूण जाव णव सत्तं।22।।

पचपन, पचास, तेतालीस, छयालीस, सैंतीस, चौबीस, दो बार

बाईस, सोलह और इसके आगे नौ तक एक-एक कम अर्थात् पन्द्रह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दश, नौ और सात, इस प्रकार क्रम से मिथ्यात्वादि अपूर्वकरण तक आठ गुणस्थानों में, अनिवृत्तिकरण के सात भागों में तथा सूक्ष्मसाम्परायादि सयोग केवली तक शेष गुणस्थानों में बन्ध प्रत्ययों की संख्या है।।22।।

गुणस्थानों में बन्ध प्रत्यय

दस अट्ठारस दसयं सत्तरह णव सोलसं च दोण्णं तु।
अट्ठ स चोद्दस पणयं सत्त तिए दु ति दु एयमेयं च।।23।।

मिथ्यात्व गुणस्थान में दश व अठारह, सासादन में दश व सत्रह, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि में नौ व सोलह, संयतासंयत में आठ और चौदह, प्रमत्तसंयतादिक तीन में पाँच व सात, अनिवृत्तिकरण में दो व तीन, सूक्ष्मसाम्पराय में दो तथा उपशान्त कषाय, क्षीणकषाय एवं सयोगिकेवली गुणस्थानों में एकमात्र इस प्रकार एक जीव के एक समय में जघन्य व उत्कृष्ट बन्ध प्रत्यय पाए जाते हैं।।23।।

आगमचक्खू साहू इंदिसचक्खू असेसजीवा जे।
देवा य ओहिचक्खू केवलचक्खू जिणा सव्वे।।24।।

साधु आगम रूप चक्षु से संयुक्त तथा जितने सब जीव हैं वे इन्द्रिय चक्षु के धारक होते हैं। अवधिज्ञान रूप चक्षु से सहित देव तथा केवलज्ञान रूप चक्षु से युक्त सब जिन होते हैं।।24।।

धवला पुस्तक

9

पंचनमस्कार मंत्र का माहात्म्य

एसो पंचणमोक्कारो सव्वपावप्पणासओ।
मंगलेसु अ सव्वेसु पढमं होदि मंगलं।।1।।

यह पंचनमस्कार मंत्र सर्व पापों का नाश करने वाला और सब मंगलों में प्रथम मंगल है।।1।।

मंगलाचरण का कारण/फल

आदी मंगलकरणं सिस्सा लहु पारवा हवंतु त्ति।
मज्झे अव्वोच्छित्ती विज्जा विज्जाफलं चरिमे।।2।।

शास्त्र के आदि में मंगल इसलिये किया जाता है कि शिष्य शीघ्र ही शास्त्र के पारगामी हों। मध्य में मंगल करने से निर्विघ्न कार्य परिसमाप्ति और अन्त में उस के करने से विद्या व विद्या के फल की प्राप्ति होती है।।2।।

ध्यान के आलम्बन

आलंबणेहि भरिओ लोगो झाइदुमणस्स खवयस्स।
जं जं मणसा पस्सइ तं तं आलंबणं होई।।3।।

ध्यान में मन लगाने वाले क्षपक के लिये यह लोक ध्यान के आलम्बनों से परिपूर्ण है। ध्यान में ध्याता जो-जो मन से देखता है वह-वह आलम्बन हो जाता है।।3।।

ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणिगोदजीवस्स।
जदेही तद्देही जहण्णिया खोत्तदो ओही।।4।।

नियम से सूक्ष्म निगोद जीव की जितनी जघन्य अवगाहना होती है उतना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अवधि है।।4।।

देशावधि के काण्डकों का क्षेत्र एवं काल

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्त ।।5।।

देशावधि के उन्नीस काण्डकों में से प्रथम काण्डक में जघन्य क्षेत्र घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और जघन्य काल आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। इसी काण्डक में उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट काल आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण है। द्वितीय काण्डक में क्षेत्र घनांगुल प्रमाण और काल कुछ कम आवली प्रमाण है। तृतीय काण्डक में क्षेत्र घनांगुलपृथक्त्व और काल पूर्ण आवली प्रमाण है।।5।।

आवलियपुधत्तं पुण हत्थो तह गाउअं मुहुत्तंतो।
जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु।।6।।

चतुर्थ काण्डक में काल आवलिपृथक्त्व और क्षेत्र एक हाथ प्रमाण है। पंचम काण्डक में क्षेत्र गव्यूति अर्थात् एक कोश तथा काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। छठे काण्डक में क्षेत्र एक योजन और काल भिन्न मुहूर्त अर्थात् एक समय कम मुहूर्त प्रमाण है। सप्तम काण्डक में काल कुछ कम एक दिवस और क्षेत्र पच्चीस योजन प्रमाण है।।6।।

भरहम्मि अद्धमासो साहियमासो वि जंबुदीवम्मि।
वासं च मणुअलोए वासपुधत्तं च रुजगम्मि।।7।।

अष्टम काण्डक में क्षेत्र भरत क्षेत्र और काल अर्ध मास प्रमाण है।

नवम काण्डक में क्षेत्र जम्बूद्वीप और काल एक मास से कुछ अधिक है। दशवें काण्डक में क्षेत्र मनुष्यलोक और काल एक वर्ष प्रमाण है। ग्यारहवें काण्डक में क्षेत्र रुचकद्वीप और काल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है।।7।।

भवनत्रिकों का अवधिज्ञान का क्षेत्र

पणुवीस जोयणाणि ओही वेंतर-कुारवग्गाणं।
संखोज्जजोयणाणि जोइसियाणं जहण्णोही।8।।

व्यन्तर और भवनवासी देवों का जघन्य अवधि क्षेत्र पच्चीस योजन और ज्योतिषी देवों का जघन्य अवधि क्षेत्र संख्यात योजन प्रमाण है।।8।।

असुराणमसंखोज्जा कोडीओ सेसजोदिसंताणं।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सो ओहिविसओ दु।9।।

असुरकुमार देवों के उत्कृष्ट अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन है। शेष नौ प्रकार के भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिषी देवों का उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र असंख्यात हजार योजन प्रमाण है।।9।।

वैमानिकों का अवधिज्ञान क्षेत्र

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं तु सणक्कुमार-माहिदा।
तच्चं तु बम्ह-लैय सुक्क-सहस्सारया चोत्थ।।10।।

सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देव प्रथम पृथिवी तक, सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के देव द्वितीय पृथिवी तक, ब्रह्म और लान्तव कल्पों के देव तृतीय पृथिवी तक तथा शुक्र और सहस्रार स्वर्गों के देव चतुर्थ पृथिवी तक देखते हैं।।10।।

आणद-पाणदवासी तह आरण-अच्चुदा य जे देवा।
पस्संति पंचमखिदि छट्टिठ गेवज्जया जे दु।।11।।

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पों में रहने वाले जो देव हैं वे पंचम पृथिवी तक तथा ग्रैवेयकों में उत्पन्न हुए देव छठी पृथिवी तक देखते हैं।।1।।

सव्वं च लोयणालि पस्संति अणुत्तरेस जे देवा।
सक्खेत्ते य सकम्मे रुवगदमणंतभागो दु।।12।।

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तरों में जो देव हैं वे सब लोकनाली अर्थात् कुछ कम चौदह राजु लम्बी और एक राजु विस्तृत लोकनाली को देखते हैं। स्वक्षेत्र अर्थात् अपने क्षेत्र के प्रदेश समूहों में से एक प्रदेश कम करके अपने-अपने अवधिज्ञानावरणकर्म द्रव्य में एकबार अनन्त अर्थात् ध्रुवहार का भाग देना चाहिये। इस प्रकार समूह समाप्त न हो जावे। ऐसा करने पर जो द्रव्य प्राप्त हो वह विवक्षित अवधि का विषयभूत द्रव्य जानना चाहिये।।12।।

कालो चउण्ण बुड्ढी कालो भजियव्वो खेत्तवुड्ढीए।
उड्ढीए दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्त-काला य।।13।।

काल की वृद्धि होने पर द्रव्यादि चारों की वृद्धि होती है। क्षेत्र की वृद्धि होने पर कालवृद्धि भजनीय है, अर्थात् वह होती भी है और नहीं भी होती है। द्रव्य और भाव की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल की वृद्धि भजनीय है।।13।।

तेया कम्मइसरीरं तेयादव्वं च भासदव्वं च।
बोद्धव्वमसंखेज्जा दीव-समुद्दा य वास यं।।14।।

नहीं, क्योंकि ऐसा होने पर (देशावधि के मध्य विकल्पों में जहाँ अवधिज्ञान) तैजस शरीर, उसके आगे कार्मण शरीर, उसके आगे तेजोद्रव्य अर्थात् विस्रसोपचय रहित तैजस वर्गणा, उसके आगे भाषा द्रव्य

अर्थात् विस्रसोपचय रहित भाषा वर्गणा (और उससे आगे मनोवर्गणा को) जानता है, वहाँ क्षेत्र असंख्यात द्वीप–समुद्र और काल असंख्यात वर्ष प्रमाण होता है।।14।।

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं।।15।।

प्रथम काण्डक में जघन्य देशावधि का क्षेत्र अंगुल का असंख्यातवां भाग और जघन्य काल आवली का असंख्यातवां भाग है। इसी काण्डक में उत्कृष्ट क्षेत्र और काल क्रमशः अंगुल व आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण है। द्वितीय काण्डक में क्षेत्र घनांगुल और काल कुछ कम आवली प्रमाण है। तृतीय काण्डक में क्षेत्र अंगुलपृथक्त्व और काल आवली प्रमाण है।।15।।

परमोहि असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि समयकालो दु।
रूवगद लहइ दव्वं खेत्तोवमअगणिजीवेहि।।16।।

परमावधि उत्कर्ष से क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोकमात्रों और काल की अपेक्षा असंख्यात लोक मात्र समय रूप काल को जानता है। वही (शलाकाभूत) क्षेत्रोपम अग्निकायिक जीवों से परिच्छिन्न रूपगत द्रव्य को उत्कर्ष से विषय करता है।।16।।

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणाभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो।।17।।

वचन के अगोचर ऐसे जीवादिक पदार्थों के अनन्तवें भाग प्रज्ञापनीय अर्थात् तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि में प्रतिपाद्य होते हैं तथा प्रज्ञापनीय पदार्थों के अनन्तवें भाग द्वादशांग श्रुत के विषय होते हैं।।17।।

ऋद्धियों के भेद

बुद्धि तवो वि य लद्धी विउव्वणलद्धी तहेव ओसहिया।
रस-बल-क्षक्खीणा वि य लद्धीओ सत्त पण्णत्ता।।18।।

बुद्धि, तप, विक्रिया, औषधि, रस, बल और अक्षीण, इस प्रकार ऋद्धियाँ सात कही गई हैं।।18।।

एक अक्षौहिणी सेना का प्रमाण

नवनागसहस्राणि नागे नागे शतं रथाः।
रथे रथे शतं दुर्गाः तुर्गे तुर्गे शतं नराः।।19।।

एक अक्षौहिणी सेना में नौ हजार हाथी, एक हाथी के आश्रित सौ रथ, एक रथ के आश्रित सौ घोड़े और एक-एक घोड़े के आश्रित सौ मनुष्य होते हैं।।19।।

निमित्त के भेद

अंगे सरो वंजण-लक्खणाणि छिण्णं च भौम्मं सुमिणंतरिक्खं।
एदे णिमित्तेहि य राहणिज्जा जाणंति लोयस्स सुहासुहाइं।।19।।

अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष, इन निमित्तों से आराधनीय साधु जनसमुदाय के शुभाशुभ को जानते हैं।।19।।

विद्या के भेद

जादीसु होइ विज्जा कुलविज्जा तह य होइ तवविज्जा।
विज्जाहरेसु एदा तवविज्जा होइ साहूणं।।20।।

जातियों में विद्या अर्थात् जातिविद्या है, कुलविद्या तथा तपविद्या भी विद्या हैं। ये विद्यायें विद्याधरों में होती हैं, किन्तु तपविद्या साधुओं के होती है।।20।।

जल-जंघ-तंतु-फल-पुप्फ-वीय-आगास-सेडिगइकुसला।
अट्ठविहचारणगण पइरिक्कसुहं पविहरंति।।21।।

जल, जंघा, तन्तु, फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणी का आलम्बन लेकर गमन में कुशल ऐसे आठ प्रकार के चरणागण अत्यन्त सुखपूर्वक विहार करते हैं।।21।।

विणएण सुदमधीदं किह वि पमादेण होदि विसरिदं।
तमुबट्ठादि परभवे केवलणाणं च आहवदि।।22।।

विनय से अधीत श्रुतज्ञान यदि किसी प्रकार प्रमाद से विस्मृत हो जाता है तो उसे (औत्पत्तिकी प्रज्ञा) परभव में उपस्थित करती है और केवलज्ञान को बुलाती है।।22।।

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्यादसति प्रतिबंधारि।
दाह्योऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबंधारि।।22।।

ज्ञानस्वभाव आत्मा प्रतिबन्ध का अभाव होने पर ज्ञेय के विषय में ज्ञान रहित कैसे हो सकता है, अर्थात् नहीं हो सकता। (क्या) अग्नि प्रतिबन्ध के अभाव में दाह्य पदार्थ का दाहक नहीं होता है? होता ही है।।22।।

खीणे दंसणमोहि चरित्तमोह तहेव घाइतिए।
सम्मत्त-विरयणाणी खइए ते होंति जीवणं।।23।।

दर्शनमोह, चारित्रमोह तथा तीन अन्य घातिया कर्मों के क्षीण हो जाने पर जीवों के सम्यक्त्व, वीर्य, और ज्ञान रूप वे क्षायिक भाव होते हैं।।23।।

उप्पण्णम्मि अणंते णट्ठम्मि य छादुमत्थिए णाणे।
देविंद-दाणविदा करेंति महिमं जिणवरस्स।।24।।

अनन्त ज्ञान के उत्पन्न होने और छाद्मस्थिक ज्ञान के नष्ट हो जाने

पर देवेन्द्र एवं दानवेन्द्र जिनेन्द्रदेव की महिमा करते हैं।।24।।

इम्मिस्से वसप्पिणीए चउत्थकालस्स पच्छिमे भाए।
चोत्तीसवाससेसे किंचिविसेसूणकालम्मि।।25।।

इस अवसर्पिणी के चतुर्थ काल के अन्तिम भाग में कुछ कम चौंतीस वर्ष प्रमाण काल के शेष रहने पर (धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई)।।25।।

भगवान् महावीर का गर्भावतरण

सुरमहिदो च्युदकप्पे भोगं दिव्वाणुभागमणुभूदो।
पुप्फुत्तरणामादो विमाणदो जो चुदो संतो।।26।।
बाहत्तरिवासणि य थोवविहूणाणि लद्धपरमाऊ।
आसाढजोण्णपक्खे छट्ठीए जोणिमुवयादो।।27।।

वर्धमान भगवान् अच्युत कल्प में देवों से पूजित हो दिव्य प्रभाव से संयुक्त भोगों का अनुभव कर पुनः पुष्पोत्तर नामक विमान से च्युत होकर कुछ कम बहत्तर वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयु को प्राप्त करते हुए आषाढ़ शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन योनि को प्राप्त हुए अर्थात् गर्भ में आये।।।26-27।।

भगवान् महावीर का जन्म

कुंडपुरपुरवरिस्सरसिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसिलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए।।28।।
अच्छित्ता णवमासे अट्ठ य दिवसे चइत्तसियपक्खे।
तेरसिए रत्तीए जादुत्तरफग्गुणीए दु।।29।।

तत्पश्चात् कुण्डलपुर रूप उत्तम पुर के ईश्वर सिद्धार्थ क्षत्रिय के नाथ कुल में सैकड़ों देवियों से सेव्यमान त्रिशला देवी के (गर्भ में) नौ

मास आठ दिन रहकर चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी की रात्रि में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए।।28-29।।

भगवान् का दीक्षा कल्याणक

मणुवत्तणसुहमउलं देवकयं सेविऊणं।
अट्ठावीसं सत्त य मासे दिवसे य बारसयं।।30।।
आहिणिबोहियबुद्धो छट्ठेण य मग्गसीबहुले दु।
दसमीए णिक्खंतो सुरमहिदो णिक्खमणपुज्जो।।31।।

वर्धमान स्वामी अट्ठाईस वर्ष सात मास और बारह दिन देवकृत श्रेष्ठ मानुषिक सुख का सेवन करके आभिनिबोधिक ज्ञान से प्रबुद्ध होते हुए षष्ठोपवास के साथ मगसिर कृष्णा दशमी के दिन गृहत्याग करके सुरकृत महिमा का अनुभव कर तप कल्याण द्वारा पूज्य हुए।।30-31।।

भगवान् का ज्ञान कल्याणक

गमइय छदुमत्थत्तं बारसवासाथ पंच मासे य।
पण्णरसाणि दिणाणि य तिरयणसुद्धो महावीरो।।32।।
उजुकूलणदीतीरे जंभियगामे बहिं सिलावट्टे।
छट्ठेणादावेंतो अवरण्हे पायछायाए।।33।।
वइसाहजोण्णपक्खो दसमीए खवगसेडिमारूढो।
हंतूण घाइकम्मं केवलणाण समावण्णो।।34।।

रत्नत्रय से विशुद्ध महावीर भगवान् बारह वर्ष, पाँच मास और पन्द्रह दिन छद्मस्थ अवस्था में बिताकर ऋजुकूला नदी के तीर पर जृम्भिका ग्राम में बाहर शिलापट्ट पर षष्ठोपवास के साथ आतापन योग युक्त होते हुए अपराह्न काल में पादपरिमित छाया के होने पर बैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान को प्राप्त हुए।।32-34।

भगवान् का मोक्ष कल्याणक

वासाणूणत्तीसं पंच य मासे य वीसदिवसे य।
चउविहअणगारेहि बारहहि गणेहि विहंरतो।।35।।
पच्छा पावाणयरे कत्तियमासे यकिण्हचोद्दसिए।
सादीए रत्तीए सेसरयं छेत्तु णिव्वाओ।।36।।

भगवान् महावीर उनतीस वर्ष, पाँच मास और बीस दिन चार प्रकार के अनगारों व बारह गणों के साथ विहार करते हुए पश्चात् पावानगर में कार्तिक मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को स्वाति नक्षत्र में रात्रि को शेष रज अर्थात् अघातिया कर्मों को नष्ट करके मुक्त हुए।।35-36।।

चतुर्थ काल की समाप्ति में शेष समय

एवं केवलकालो परुविदो।

परिणिव्वुदे जिणेदे चउत्थकालस्स जं भवे सेसं।
वासाणि तिण्णि मासा अट्ठ य दिवसा विण्णरसा।।37।।

महावीर जिनेन्द्र के मुक्त होने पर चतुर्थ काल का जो शेष है वह तीन वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिन प्रमाण है।।37।।

गणधर देव की ऋद्धियाँ

बुद्धि-तव-विउवणोसह-रस-बल-अक्खीण-सुस्सरत्तादी।
ओहि-मणपज्जवेहि य हवंति गणवालय सहिया।।38।।

गणधर देव बुद्धि, तप, विक्रिया, औषध, रस, बल, अक्षीण, सुस्वरत्वादि ऋद्धियों तथा अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान से सहित होते हैं।।38।।

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।39।।

पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति तथा सहेतुक बन्ध और मोक्ष।।39।।

धर्मतीर्थ का उद्भव

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तिथुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।40।।

वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई।।40।।

पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया।
सगलकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी।।41।।

पांच मास, पांच दिन और छह सौ वर्ष होते हैं। इसलिये शककाल से सहित राशि स्थापित करना चाहिये।।41।।

गुत्ति-पयत्थ-भयाइं चोद्दसरयणाइ समइकंताइं।
परिणिव्वुदे जिणिदे तो रज्जं सगणरिदस्स।।42।।

वीर जिनेन्द्र के मुक्त होने के पश्चात् गुप्ति, पदार्थ, भय और चौदह रत्नों अर्थात् चौदह हजार सात सौ तैरानवे वर्षों के बीतने पर शक नरेन्द्र का राज्य हुआ।।42।।

सत्तहस्सा णवसद पंचाणउदी सपंचमासा य।
अइकंता वासाणं जइया तइया सगुप्पत्ती।।43।।

जब सात हजार नौ सौ पंचानवै वर्ष और पांच मास बीत गये तब शक नरेन्द्र की उत्पत्ति हुई।।43।।

तिविहा य आणुपुव्वी दसधा णामं च छव्विहं माणं।
वत्तव्वदा य तिविहा विविहो अत्थाहियारो य।।44।।

आनुपूर्वी तीन प्रकार, नाम दश प्रकार, प्रमाण छह प्रकार,

वक्तव्यता तीन प्रकार और अर्थाधिकार अनेक प्रकार है।।44।।

निक्षेप के प्रकार

जत्थं बहुं जाणेज्जो अवरिमियं तत्थ णिक्खिवे णियमा।
जत्थ य बहुंण जाणदि चउट्ठयं णिक्खिवउ।।45।।

वह निक्षेप अनेक प्रकार है, क्योंकि जहाँ बहुत ज्ञातव्य हो वहाँ नियम से अपरिमित निक्षेपों का प्रयोग करना चाहिये और जहाँ बहुत को नहीं जानना हो वहाँ चार निक्षेपों का उपयोग करना चाहिए।।45।।

क्षायिक ज्ञान का स्वरूप

क्षायिकमेकमनंतं त्रिकालसर्वार्थयुगपद्विभासम्।
निरतिशयामत्ययच्युतमव्यवधानं जिनज्ञानम्।।46।। इति

जिन भगवान् का ज्ञान क्षायिक, एक अर्थात् असहाय, अनन्त, तीनों कालों के सब पदार्थों को एकसाथ प्रकाशित करने वाला, निरतिशय, विनाश से रहित और व्यवधान से विमुक्त है।।46।।

ईहा का लक्षण

अवायावयवोत्पत्तिस्संशयावयवच्छिदा।
सम्यग्निर्णयपर्यंता परीक्षहेति कथ्यते।।47।।

संशय के अवयवों को नष्ट करके अवाय के अवयवों को उत्पन्न करने वाली जो भले प्रकार निर्णय पर्यन्त परीक्षा होती है वह ईहा प्रत्यय कहा जाता है।।47।।

चत्तारि घणुसयाइं चउसट्ठ सयं च तह य घणुहाणं।
पासे रसे य गंधे दुगुणा दुगुणा असण्णि त्ति।।48।।

चार सौ धनुष, चौंसठ धनुष तथा सौ धनुष प्रमाण क्रम से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीवों का स्पर्श, रस एवं गन्ध विषयक क्षेत्र है।

आगे असंज्ञी पर्यन्त यह विषय क्षेत्र दूना-दूना होता गया है।।48।।

चतुरिन्द्रिय जीव के चक्षु का विषय

उणतीसजोयणसया चउण्णा तह य होंति णायव्वा।
चउरिंदियस्स णियम चक्खुप्फासो सुणियमेण।।49।।

चतुरिन्द्रिय जीव के चक्षु इन्द्रिय का विषय नियम से उनतीस सौ चौवन योजन प्रमाण है।।49।।

संज्ञी पंचेन्द्री का चक्षु का विषय

उणसट्ठिजोयणसया अट्ठ य तह जोयणा मुणेयव्वा।
पंचिदियसण्णीणं चक्खुप्पासो मुणेयव्वो।।50।।

पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवों के चक्षु इन्द्रिय का विषय उनसठ सौ आठ योजन प्रमाण जानना चाहिये।।50।।

असंज्ञी पंचेन्द्री का श्रोत्र-विषय

अट्ठेव धणुसहस्सा विसओ सोदस्स तह असण्णिस्स।
इय एदे णायव्वा पोग्गलपरिणामजोएण।।51।।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के श्रोत्र का विषय आठ हजार धनुष प्रमाण है। इस प्रकार पुद्गल परिणाम योग से ये विषय जानना चाहिये।।51।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय के क्षेत्र विषयक प्रमाण

पासे रसे य गंधे विसओ णव जायेणा मुणेयव्वा।
बारह जोयण सोदे चक्खुस्सुड्ंढ पवक्खामि।।52।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के स्पर्श, रस व गन्ध विषयक क्षेत्र नौ योजन प्रमाण तथा स्रोत्र का बारह योजन प्रमाण जानना चाहिये। चक्षु के विषय को आगे कहते हैं।।52।।

संज्ञी का चक्षु इन्द्रिय विषय प्रमाण

सत्तेतालसहस्सा बे चेव सया हवंति तेवट्ठा।
चक्खिदियस्स विसओ उक्कस्सो होदि अदिरित्तो।।53।।

चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय सैंतालीस हजार दो सौ तिरेसठ योजन से कुछ अधिक (7/20) है।।53।।

पुट्ठं सुणेइ सद्दं अप्पुट्ठं पस्सदे रूवं।
गंधं रसं च फासं बद्धं पुट्ठं जाणादि।।54।।

श्रोत्र से स्पृष्ट शब्द को सुनता है, परन्तु चक्षु से रूप को अस्पृष्ट ही देखता है। शेष इन्द्रियों से गन्ध, रस और स्पर्श को बद्ध व स्पृष्ट जानता है।।54।।

स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः।।55।। इति

नय को जो मोक्ष का कारण बतलाया है उसका हेतु पदार्थों की यथार्थोपलब्धि-निमित्तता है।।55।।

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पाय-धुवत्ता सप्पडिक्क्खा हवदि एक्का।।56।।

अस्तित्व रूप सत्ता उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य रूप तीन लक्षणों से युक्त समस्त वस्तु विस्तार के सादृश्य की सूचक होने से एक है उत्पादादि त्रिलक्षण स्वरूप 'सत्' इस प्रकार के शब्द व्यवहार एवं 'सत्' इस प्रकार के प्रत्यय के भी पाये जाने से समस्त पदार्थों में स्थित है विश्व अर्थात् समस्त वस्तुविस्तार के त्रिलक्षण रूप स्वभावों से सहित होने के कारण सविश्व रूप है, अनन्त पर्यायों से सहित है, भंग (व्यय), उत्पाद व ध्रौव्य स्वरूप है तथा अपनी प्रतिपक्षभूत असत्ता से संयुक्त है।।56।।

जातिरेव हि भावानां निरोधो हेतुरिष्यते।
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्यते पश्चात् स केन वः।।57।।

पदार्थों के विनाश में जाति अर्थात् उत्पत्ति ही कारण मानी जाती है, क्योंकि जो पदार्थ उत्पन्न होते ही नष्ट नहीं होता तो फिर वह पश्चात् आपके यहाँ किसके द्वारा नष्ट होगा? अर्थात् किसी के द्वारा नष्ट नहीं हो सकेगा।।57।।

नयवाद और परसमय

जावदिया वयणवहा तावदिया चे होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया।।58।।

जितने वचन मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं तथा जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय हैं।।58।।

नय की विशेषता

यथैकक कारककर्मसिद्धये समीक्ष्य शेंष स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्य-विशेषामातृका नयास्तवेष्य गुण-मुख्यकल्पतः।।59

जिस प्रकार एक कारक शेष को अपना सहायक कारक मान करके प्रयोजन की सिद्धि के लिये होता है, उसी प्रकार सामान्य व विशेष धर्मों से उत्पन्न नय आपको मुख्य और गौण की विवक्षा से इष्ट हैं।।59।।

य एव नित्य-क्षणिकादयो नयाः मिथोऽनपेक्षाः स्व-परप्रणशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्व-परोपकारिणः।।60।।

जो नित्य व क्षणिक आदि नय परस्पर में निरपेक्ष होकर अपना व पर का नाश करने वाले हैं वे ही आप विमल मुनि के यहाँ परस्पर की अपेक्षा युक्त हो अपने व पर के उपकारी हैं।।60।।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेत्र मिथ्यैकान्तास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्यऔत्।।61।।

मिथ्यानयों का विषय-समूह मिथ्या है, ऐसा कहने पर उत्तर देते हैं

कि वह मिथ्या ही हो, ऐसा हमारे यहाँ एकान्त नहीं है, किन्तु परस्पर की अपेक्षा न रखने वाले नय मिथ्या हैं तथा परस्पर की अपेक्षा रखने वाले वे वास्तव में अभीष्ट सिद्धि के कारण हैं।।61।।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभानड्मावसम्बन्धो द्रव्येमकमनेकधा।।62।।

नय एकान्त और उपनय एकान्त का विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का अभिन्न सत्ता-सम्बन्ध रूप समुदाय द्रव्य कहलाता है। वह द्रव्य कथंचित् एक और कथंचित् अनेक है।।62।।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया बयणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवइ दव्वं।।63।।

एक द्रव्य में जितनी अतीत व अनागत अर्थ पर्याय और व्यञ्जन पर्याय होती हैं उतने मात्र वह द्रव्य होता है।।63।।

मुख्यता और गौणता

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्म्मणः।
अंगित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदंगता।।64।।

अनन्त धर्म युक्त धर्मों के प्रत्येक धर्म में अन्य ही प्रयोजन होता है। सब धर्मों में किसी एक धर्म के अंगी होने पर शेष धर्म अंग होते हैं।।64।।

निक्षेप का वर्गीकरण

णामं ठवणा दवियं ति एस दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमट्ठो।।65।।

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन द्रव्यार्थिक नय के निक्षेप हैं, किन्तु भाव पर्यायार्थिक नय का निक्षेप है, यह परमार्थ सत्य है।।65।।

कृतिकर्म का लक्षण

दुओणदं जहाजादं बारसावत्तमेय वा।
चउतीसं तिसुद्धं च किदियम्म पउंजए।।66।।

यथाजात अर्थात् जातरूप के सदृश क्रोधादि विकारों से रहित होकर दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धियों से संयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करना चाहिये।।66।।

श्रुत के पदों की संख्या

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्रयधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्या एतच्छ्रुतं पंच पदं नमामि।।67।।

एक सौ बारह करोड़ तेरासी लाख अट्ठावन हजार पांच पद प्रमाण इस श्रुत को मैं नमस्कार करता हूँ।।67।।

षोडशशतंचतुस्त्रिंशत्कोटीनां त्रयशीतिमेव लक्षाणि।
शतसंख्याष्टासप्ततिमष्टाशीति च पदवर्णान्।।68।।

सोलह सौ चौंतीस करोड़ तेरासी लाख अठत्तर सौ अठासी मात्र एक पद के वर्णों को (नमस्कार करता हूँ)।।68।।

पद विभाग

तिविहं तु पदं भणिदं अत्थपद-पमाण-मज्झिमपदं ति।
मज्झिपदेण मणिदा पुव्वंगाणं पदविभागा।।69।।

अर्थपद्, प्रमाणपद और मध्यम पद, इस प्रकार पद तीन प्रकार कहा गया है। इनमें मध्यम पद से पूर्व और अंगों के पदविभाग कहे गये हैं।।69।।

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए।
कधं भुजेज्ज भासेज्ज कंधे पावं ण बज्झदि।।70।।

किस प्रकार चलना चाहिये या आचरण करना चाहिये, किस प्रकार ठहरना चाहिये, कैसे बैठना चाहिये, किस प्रकार सोना चाहिये, कैसे भोजन करना चाहिये और किस प्रकार भाषण करना चाहिये, जिससे कि पाप का बन्ध न हो?।।70।।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झदि।।71।।

यत्नपूर्वक चलना चाहिये, यत्नपूर्वक ठहरना चाहिये, यत्नपूर्वक बैठना चाहिये, यत्नपूर्वक सोना चाहिये, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये और यत्नपूर्वक भाषण करना चाहिये, इस प्रकार पाप का बन्ध नहीं होता।।71।।

एक्को चेव महप्पा सो दुवियपो त्तिलक्खणो भणिदो ।
चदुसंकमणाजुत्तो पंचग्गगुणाजुत्तो य।।72।।
छक्कापक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभंगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसठाणिओ भणिदो।।73।।

व अधः, इन छह दिशाओं में गमन करने रूप छह अपक्रमों से सहित होने के कारण छह प्रकार है। चूंकि सात भंगों से उसका सद्भाव सिद्ध है, अतः वह सात प्रकार है। ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के आस्रव से युक्त होने, अथवा आठ कर्मों या सम्यक्त्वादि आठ गुणों का आश्रय होने से आठ प्रकार है। नौ पदार्थों रूप परिणमन करने की अपेक्षा नौ प्रकार है। पृथिवी, जल, तेज, प्रत्येक व साधारण वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय रूप दस स्थानों में प्राप्त होने से दस प्रकार कहा गया है।।72-73।।

देशचारित्र के प्रकार

दंसण-वद-सामाइय-पोसह-सच्चि-रादिभत्ते य।
बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदी य।।74।।

दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तविरति, रात्रिभक्तविरति, ब्रह्मचर्य, आरम्भविरति, परिग्रहविरति, अनुमतिविरति और उद्दिष्टविरति, यह ग्यारह प्रकार का देशाचारित्र है।।74।।

पढमो अबंधयाणं बिदियो तेरासियाण बोद्धव्वो।
तदियो य णियदिपक्खे हवदि चउत्थो ससमयम्मि।।75।।

इनमें प्रथम अधिकार अबन्धकों का और द्वितीय त्रैराशिक अर्थात् आजीविकों का जानना चाहिये। तृतीय अधिकार नियतिपक्ष में और चतुर्थ अधिकार स्वसमय में है।।75।।

एक्केक्कं तिण्णि जणा दो द्दो यण इच्छदे तिवग्गम्मि।
एक्को तिण्णि ण इच्छइ सत्त वि पावेंति मिच्छत्त।।76।।

तीन जन त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम में एक की इच्छा करते हैं, अर्थात् कोई धर्म को, कोई अर्थ को और कोई काम को ही स्वीकार करते हैं। दूसरे तीन जन उनमें दो-दो की इच्छा करते हैं, अर्थात् कोई धर्म और अर्थ को, कोई धर्म और काम को तथा कोई अर्थ और काम को ही स्वीकार करते हैं। कोई एक तीनों की इच्छा नहीं करता अर्थात् तीन में से एक को भी नहीं चाहता है। इस प्रकार ये सातों जन मिथ्यात्व को प्राप्त होते हैं।।76।।

पुराण के प्रकार

बारसविहं पुराणं जं दिट्ठ जिणवरेहि सव्वेहि।
तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य।।77।।

पढमो अरहंताणं बिदिओ पुण चक्कवट्टिवंसो दु।
तदिओ वसुदेवाणं चउत्थो विज्जाहरणां तु।।78।।
चारणवंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्णसमणाणं।
सत्तमगो कुरुवंसो अट्ठमओ चापि हरविंसो।।79।।
णवमो अइक्खुवाणं वंसो दसमो ह कासियाणं तु।
वाई एक्कारसमो वारसमो णाहवंसो दु।।80।।

बारह प्रकार का पुराण, जिनवंशों और राजवंशों के विषयों में जो सब जिनेन्द्रों ने देखा है या उपदेश किया है, उस सबका वर्णन करता है। इनमें प्रथम पुराण अरहन्तों का, द्वितीय चक्रवर्तियों के वंश का, तृतीय वासुदेवों का, चतुर्थ विद्याधरों का, पाँचवा चारण वंश का, छठा प्रज्ञाश्रमणों का, सातवां कुरुवंश का, आठवां हरिवंश का, नौवां इक्ष्वाकुवंशजनों का, दशवां काश्यपों का या काशिकों का, ग्यारहवां वादियों का और बारहवां नाथवंश का है।।77-80।।

जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो।
वेदो विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणओ।।81।।
सत्ता जंतू य माई य माणी जोगी य संकटो।
असंकटो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य।।82।।

जीव कर्त्ता, वक्ता, प्राणी, भोक्ता, पुद्गल, वेद, विष्णु, स्वयंभू, शरीरी, मानव, सशक्त, जन्तु, मायी, मानी, योगी, संकट, असंकट, क्षेत्रज्ञ और अन्तरात्मा है।।81-82।।

उस्सासाउअपाण इंदियपाणा परक्कमो पाणो।
एदेसि पायाणं वड्ढी-हाणीओ वण्णेदि।।83।।

प्राणवाय पूर्व उच्छ्वास, आयुप्राण, इन्द्रिय, प्राण और पराक्रम अर्थात् बल प्राण, इन प्राणों की वृद्धि एवं हानि का वर्णन करता है।।83।।

दस चोद्दस अट्ठट्ठारस बारस य दोसु पुव्वेसु।
सोल वीसं तीसं दसमम्मि य पण्णरस वत्थू।।84।।
एदेसिं पुव्वाणं एवदिओ वत्थुसंगहो भणिदो।
सेसाणं पुव्वाणं दस दस वत्थू पणिवयामि।।85।।

दश, चौदह, आठ, अठारह, दो पूर्वों में बारह, सोलह, बीस, तीस और दशवें में पन्द्रह, इस प्रकार क्रम से आदि के इन दश पूर्वों की इतनी मात्र वस्तुओं का संग्रह कहा गया है। शेष चार पूर्वों के दश-दश वस्तु हैं। इनको मैं नमस्कार करता हूँ।।84-85।।

एक्केक्कम्हि य वत्थू वीसं वीसं च पाहुडा भणिदा।
विसम-समा हि य वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहि समा।।86।।

एक-एक वस्तु में बीस-बीस प्राभृत कहे गये हैं। पूर्वों में वस्तुएँ सम व विसम हैं, किन्तु वे सब वस्तुएँ प्रभृतों की अपेक्षा सम हैं।।86।।

उपशान्त, निधत्ति और निकचित का स्वरूप

उदए संकम-उदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं।
उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिंद चावि जं कम्मं।।87।।

जो कर्म उदय में नहीं दिया जा सके वह उपशान्त कहलाता है। जो कर्म संक्रमण व उदय में नहीं दिया जा सके उसे निधत्त कहते हैं। जो कर्म उदय, संक्रमण, उत्कर्षण व अपकर्षण, इन चारों में ही नहीं दिया जा सकता है वह निकाचित कहा जाता है।।87।।

इति शब्द के अर्थ

हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विप्र्र्ययये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इति-शब्दः प्रकीर्तितः।।88।।

हेतु, एवं, प्रकार, आदि, व्यवच्छेद, विपयर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्ति, इन अर्थों में इति शब्द कहा गया है।।86।। ऐसा वचन है।

निक्षेप का वर्गीकरण

णामट्ठवणादवियं एसो दव्वाट्ठियस्स णिक्खेवो।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमत्थो।।89।।

नाम स्थापना और द्रव्य, यह द्रव्यार्थिक नय का निक्षेप है, किन्तु भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नय का निक्षेप है, यह परमार्थ सत्य है।।89।।

पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक नय का स्वरूप

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं।।90।।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा पदार्थ नियम से उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी होते हैं, किन्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सब पदार्थ सदा उत्पाद और विनाश से रहित हैं।।90।।

आगम का स्वरूप

पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहतिरागमः।।91।।

जो आप्तवचन पूर्वापरविरुद्ध आदि दोषों के समूह से रहित और सब पदार्थों का प्रकाशक है वह आगम कहलाता है।।91।।

स्वाध्याय की निषिद्ध अवस्था

यमपठहरवश्रवणे रुधिरस्रावेऽगतोऽतिचारे च।
दातृष्वशुद्धकायेषु भुक्तवति चापि नाध्येयम्।।92।।

यमपटह का शब्द सुनने पर, अंग से रक्तस्राव के होने पर, अतिचार के होने पर तथा दाताओं के अशुद्धकाय होते हुए भोजन कर लेने पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।।92।।

तिलपलल-पृथुक-लाजा-पूपादिस्नग्धसुरभिगंधेषु।
भुक्तेषु भोजनेषु च दावाग्निधूमे च नाध्येम्।।93।।

तिलमोदक, चिउड़ा, लाई और पुआ आदि चिक्कण एवं सुगन्धित भोजनों के खाने पर तथा दावानल का धुआं होने पर अध्ययन नहीं करना चाहिये।।93।।

योजनमण्डलमात्रे संन्यासविधौ महोपवासे च।
आवश्यकक्रियायां केशेषु च लुच्यमानेषु।।94।।
सप्तदिनान्यध्ययनं प्रतिषिद्धं स्वर्गगते श्रमणसूरौ।
योजनमात्रे दिवसत्रितयं त्वतिदूरतो दिवसम्।।95।।

एक योजन के घेरे में संन्यासविधि, महोपवासविधि, आवश्यक क्रिया एवं केशों का लोंच होने पर तथा आचार्य का स्वर्गवास होने पर सात दिन तक अध्ययन का प्रतिषेध है। उक्त घटनाओं के योजन मात्र में होने पर तीन दिन तक तथा अत्यन्त दूर होने पर एक दिन तक अध्ययन निषिद्ध है।।94-95।।

प्राणिनि च तीव्रदुःखान्म्रियमाणे स्फुरति चातिवेदनया।
एकनिवर्तनमात्रे तिर्यक्षु चरत्सु च न पाठयम्।।96।।

प्राणी के तीव्र दुःख से मरणासन्न होने पर या अत्यन्त वेदना से तड़फड़ाने पर तथा एक निर्वतन (एक बीघा या गुंठा) मात्र में तिर्यंचों का संचार होने पर अध्ययन नहीं करना चाहिये।।96।।

तावन्मात्रे स्थावरकायक्षयकर्मणि प्रवृत्ते च।
क्षेत्राशुद्धौ दूराद् दुर्गंधे वातिकुणपे वा।।97।।
विगतार्थागमने वा स्वशरीरे शुद्धिवृत्तिविरहे वा।
नाध्येयः सिद्धान्तः शिवसुखफलमिच्छता व्रतिना।।98।।

उतने मात्र में स्थावरकाय जीवों के घात रूप कार्य में प्रवृत्त होने

पर, क्षेत्र की अशुद्धि होने पर, दूर से दुर्गन्ध आने पर अथवा अत्यन्त सड़ी गन्ध के आने पर, ठीक अर्थ समझ में न आने पर (?) अथवा अपने शरीर के शुद्धि से रहित होने पर मोक्षसुख के चाहने वाले व्रती पुरुष को सिद्धान्त का अध्ययन नहीं करना चाहिये।।97-98।।

अशुद्ध भूमि के स्थान

प्रमितिररत्निशतं स्यादुच्चारविमोक्षणक्षितेरारात्।
तनुसलिलमोक्षणेऽपि च पंचाशदरत्निरेवातः।।99।।
मानुषशारीरलेशावयवस्याप्यत्र दण्डपंचाशात्।
संशोध्या तिरश्चां तदर्द्धमात्रैव भूमिः स्यात्।।100।।

मल छोड़ने की भूमि से सौ अरत्नि प्रमाण दूर, तनुसलिल अर्थात् मूत्र के छोड़ने में भी इस भूमि से पचास अरत्नि दूर, मनुष्य शरीर के लेशमात्र अवयव के स्थान से पचास धनुष तथा तिर्यंचों के शरीर सम्बन्धी अवयव के स्थान से उससे आधी मात्र अर्थात् पच्चीस धनुष प्रमाण भूमि को शुद्ध करना चाहिये।।99-100।।

व्यन्तरभेरीताडन-त्त्पूजासंकटे कर्षणे वा।
समृक्षण-समार्ज्जनसमीपपचाण्डालबालेषु।।101।।
अग्निजलरूधिरदीपे मांसास्थिप्रजनने तु जीवानां।
क्षेत्रविशुद्धिर्न स्या्थोदितं सर्वभावज्ञैः।।102।।

व्यन्तरों के द्वारा भेरीताड़न करने पर, उनकी पूजा का संकट होने पर, कर्षण के होने पर, चाण्डाल बालकों के समीप में झाड़ा-बुहारी करने पर, अग्नि, जल व रुधिर की तीव्रता होने पर तथा जीवों के मांस व हड्डियों के निकाले जाने पर क्षेत्र की विशुद्धि नहीं होती जैसा कि सर्वज्ञों ने कहा है।।101-102।।

वाचना की विधि

क्षेत्रं संशोध्य पुनः स्वहस्तपादौ विशोध्य शुद्धमनाः।
प्राशुकदेशावस्थो गृह्णीयाद् वाचनां पश्चात्।।103।।

क्षेत्र की शुद्धि करने के पश्चात् अपने हाथ और पैरों को शुद्ध करके तदनन्तर विशुद्ध मन युक्त होता हुआ प्राशुक देश में स्थित होकर वाचना को ग्रहण करे।।103।।

युक्त्या समधीयानो वक्षणकक्षाद्यमस्पृशन् स्वाखम्।
यत्नेनाधीत्य पुनर्यथाश्रुतं वाचनां मुंचेत्।।104।।

बाजू और कांख आदि अपने अंग का स्पर्श न करता हुआ उचित रीति से अध्ययन करने और यत्नपूर्वक अध्ययन करके पश्चात् शास्त्र विधि से वाचना को छोड़ दे।।104।।

तपसि द्वादशसंख्ये स्वाध्यायः श्रेष्ठ उच्यते सद्भिः।
अस्वाध्यायदिनानि ज्ञेयानि ततोऽत्र विद्वद्भिः।।105।।

साधु पुरुषों ने बारह प्रकार के तप में स्वाध्याय को श्रेष्ठ कहा है। इसीलिये विद्वानों को स्वाध्याय न करने के दिनों को जानना चाहिये।।105।।

स्वाध्याय के निषिद्ध काल

पर्वसु नन्दीश्वरमहिमादिवसेषु चोपारागेषु।
सूर्याचन्द्रामसोरपि नाध्येयं जानता व्रतिना।।106।।

पर्वदिनों (अष्टमी व चतुर्दशी आदि), नन्दीश्वर के श्रेष्ठ महिम दिवसों अर्थात् अष्टाह्निक दिनों में और सूर्य-चन्द्र का ग्रहण होने पर विद्वान् व्रती को अध्ययन नहीं करना चाहिये।।106।।

अष्टम्यामध्ययनं गुरु-शिष्यद्वयवियोगमावहति।
कलहं तु पौर्णमास्यां करोति विघ्न चतुर्दश्याम्।।107।।

अष्टमी में अध्ययन गुरु और शिष्य दोनों के वियोग को करता है। पूर्णमासी के दिन किया गया अध्ययन कलह और चतुर्दशी के दिन किया गया अध्ययन विघ्न को करता है।।107।।

कृष्णचतुर्दश्यां यद्यधीयते साधवो ह्यामावस्याम्।
विद्योपवासविधयो विनाशवृत्तिं प्रयान्त्यशेषं सर्वे।।108।।

यदि साधुजन कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या के दिन अध्ययन करते हैं तो विद्या और उपवास विधि सब विनाशवृत्ति को प्राप्त होते हैं।।108।।

मध्यान्हे जिनरूपं नाशयति करोति संध्ययोर्व्याधिम्।
तुष्यन्तोऽप्यप्रियतां मध्यमरात्रौ समुपयान्ति।।109।।

मध्याह्न काल में किया गया अध्ययन जिनरूप को नष्ट करता है, दोनों संध्याकालों में किया गया अध्ययन व्याधि को करता है तथा मध्यम रात्रि में किये गये अध्ययन से अनुरक्तजन भी द्वेष को प्राप्त होते हैं।।109।।

अतितीव्रदु:खितानां रुदतां संदर्शने समीपे च।
स्तनयित्नुविद्युदभ्रेष्वतिवृष्टया उल्कनिर्घाते।।110।।

अतिशय तीव्र दुख से युक्त और रोते हुए प्राणियों को देखने या समीप में होने पर मेघों की गर्जना व बिजली के चमकने पर और अतिवृष्टि के साथ उल्कापात होने पर (अध्ययन नहीं करना चाहिये)।।110।।

अध्ययन समाप्ति काल

प्रतिपद्येकः पादो ज्येष्ठामूलस्य पौर्णमास्यां तु।
सा वाचनाविमोक्षे छाया पूर्वाह्णवेलायाम्।।111।।

जेठ मास की प्रतिपदा एवं पूर्णमासी को पूर्वाह्न काल में वाचना की

समाप्ति में एक पाद अर्थात् एक वितस्ति प्रमाण (जांघों की) वह छाया कही गई है। अर्थात् इस समय पूर्वाह्न काल में बारह अंगुल प्रमाण छाया के रह जाने पर अध्ययन समाप्त कर देना चाहिये।।111।।

सैवापराह्नकाले बेला स्याद्वाचनाविधौ विहिता।
सप्तपदी पूर्वाह्णापराह्णयोर्ग्रहण-मोक्षेषु।।112।।

वही समय (एक पद) अपराह्नकाल में वाचना की विधि में अर्थात् प्रारम्भ करने में कहा गया है। पूर्वाह्नकाल में वाचन का प्रारम्भ करने और अपराह्नकाल में उसके छोड़ने में सात पद (वितस्ति) प्रमाण छाया कही गई है (प्रातःकाल जब सात पद छाया हो जावे तब अध्ययन प्रारम्भ करे और अपराह्न में सात पद छाया रह जाने पर समाप्त करे)।।112।।

ज्येष्ठामूलात्परतोऽप्यापौषाद्द्वयंगुला हि वृद्धिः स्यात्।
मासे मासे विहिता क्रमेण सा वाचनाछाया।।113।।

ज्येष्ठ मास के आगे पौष मास तक प्रत्येक मास में दो अंगुल प्रमाण वृद्धि होती है। यह क्रम से वाचना समाप्त करने की छाया का प्रमाण कहा गया है।।113।।

एवं क्रमप्रवृद्धया पादद्वयमत्र हीयते पश्चात्।
पौषादाज्येष्टान्ताद द्वयंगुलमेवेति विज्ञेयम्।।114।।

इस प्रकार क्रम से वृद्धि होने पर पौष मास तक दो पाद हो जाते हैं। पश्चात् पौष मास से ज्येष्ठ मास तक दो अंगुल ही क्रमशः कम होते जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये।।114।।

दव्वादिवदिक्कमणं करेदि सुत्तत्थसिक्खलोहेण।
असमाहिसमज्झायं कलहं बाहि वियोगं च।।115।।

सूत्र और अर्थ की शिक्षा के लोभ से किया गया द्रव्यादिक का अतिक्रमण असमाधि अर्थात् सम्यक्त्वादि की विराधना, अस्वाध्याय

अर्थात् शास्त्रादिकों का अलाभ, कलह, व्याधि और वियोग को करता है।।115।।

विनयपूर्वक श्रुत की विशेषता

विणएण सुदमधीदं किह वि पमादेण होइ विस्सरिदं।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि।।116।।

विनय से पढ़ा गया श्रुत यदि किसी प्रकार भी प्रमाद से विस्मृत हो जाता है तो परभव में वह उपस्थित हो जाता है और केवलज्ञान को भी प्राप्त करता है।।116।।

सूत्र का स्वरूप

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तत्यं सूत्रमिच्युते बुधैः।।117।।

जो थोड़े अक्षरों से संयुक्त हो, सन्देह से रहित हो, परमार्थ सहित हो, गूढ़ पदार्थों का निर्णय करने वाला हो, निर्दोष हो, युक्ति युक्त हो और यथार्थ हो उसे पण्डितजन सूत्र कहते हैं।।117।।

अनुयोग के समानार्थक

अणियोगो य नियोगो भास विहासा य वट्टिया चेव।
एदे अणियोगस्स दु णामा एयट्ठया पंच।।118।।

अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा और वर्त्तिका, ये पाँच अनुयोग के समानार्थक नाम हैं।।118।।

दृष्टान्त के भेद

सूई मुद्दा पडिघो संभवदल-वट्टिया चेव।
अणियोगणिरुत्तीए दिट्ठंत होंति पंचैते।।119।।

अनुयोग की निरुक्ति में सूची, मुदा, प्रतिघ, सम्भवदल और वर्त्तिका, ये पाँच दृष्टान्त हैं।।119।।

लिंगत्तियं वयणसमं अवणिदुवण्णिदमिस्सयं चेव।
अज्झत्थं च बहित्थं पचक्खपरोक्ख सोलसिमे।।120।।

(तीनों) वचनों के साथ तीन लिंग, अपनीत, उपनीत व मिश्र अर्थात् उदात्त, अनुदात्त व स्वरित (?), अभ्यन्तर, बाह्य, प्रत्यक्ष और परोक्ष, ये सोलह हैं।।120।।

एयादीया गणण दोहादीया वि जाण संखे त्ति।
तीयादीणं णियमा कदि त्ति सण्णा दु बोद्धव्वा।।121।।

एक आदिक को गणना और दो आदि को संख्या समझो तथा तीन आदिक की नियम से 'कृति' यह संज्ञा जानना चाहिये।।121।।

पंचेन्द्रिय काल

सोधम्मे माहिंदे पढमपुढवीए होदि चदुगुणिदं।
बम्हादि आरणच्चुद पुढवीणं होदि पचगुणं।।122।।

सौधर्म, माहेन्द्र और प्रथम प्रथिवी में चार बार और ब्रह्म कल्प से लेकर आरण अच्युत कल्पों तथा द्वितीयादि पृथिवियों में पाँच बार उत्पन्न होने पर उक्त पंचेन्द्रिय काल पूर्ण होता है।।122।।

पढद्यमपुढवीए चदुरो पण (पण) सेसासु होंति पुढवीसु।
चदु चदु देवेसु भवा वावीसं ति सदपुघत्तं।।123।।

प्रथम पृथिवी में चार भव और शेष पृथिवियों में पाँच-पाँच भव होते हैं। बाईस सागरोपम स्थिति तक के देवों में चार भव होते हैं। इस प्रकार पंचेन्द्रिय पर्यायकाल सागरोपम शत पृथक्त्व प्रमाण होता है।।123।।

त्रस पर्याय का काल

सोहम्मे माहिदे पढमपुढवीसु होदि चदुगुणिदं।
बम्हादिआणच्युद पुढवीणं अट्ठगुणं।।124।।
गेवज्जेसु च बिगुणं उवरिमगेवज्जएगवज्जेसु।
दोण्णि सहस्साणि भवे कोडिपुधत्तेण अहियाणि।।125।।

सौधर्म, माहेन्द्र और प्रथम पृथिवी में चार बार उत्पन्न होता है। ब्रह्म कल्प से आरण-अच्युत कल्पों और द्वितीयादि शेष पृथिवियों में आठ बार उत्पन्न होता है। एक उपरिम ग्रैवेयक को छोड़कर सब ग्रैवेयकों में दो बार उत्पन्न होता है। इस प्रकार त्रस पर्याय का काल पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम प्रमाण होता है।।124-125।।

स्त्रियों का देव पर्याय काल

सोहम्मे सत्तगुध्सं तिगुध्सं जसच डु युयुक्कव्वसे त्ति।
सेसेसु भवे बिगुणं जाव दु हारणच्चुदो कप्पो।।126।।

स्त्रीवेदी सौधर्म कल्प में सात बार, ईशान से लेकर महाशुक्र कल्प तक तीन बार और आरण-अच्युत कल्प तक शेष कल्पों में दो बार उत्पन्न होता है।।126।।

पणगादी दोहि जुदा सत्तावीसा त्ति पल्ल देवीणं।
तत्तो सत्तुत्तरियं जाव दु आरणच्चुओ कप्पो।।127।।

देवियों की आयु सत्ताईस पल्य तक दो से युक्त पाँच आदि पल्य प्रमाण अर्थात् सौधर्म स्वर्गमें पाँच, ईशान में सात, सनत्कुमार में नौ, माहेन्द्र में ग्यारह, इस प्रकार दो पल्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होकर सहस्रार कल्प में सत्ताईस पल्य प्रमाण है। इसके आगे आरण-अच्युत कल्प तक उत्तरोत्तर सात पल्य अधिक होते गये हैं।।127।।

पुरुषों का देव पर्याय काल

पुरिसेसु सदपुधत्तं असुरकुमारेसे होदि तिगुणेण।
तिगुणे णवगेवज्जे सग्गठिदी सग्गठिदी छग्गुणं होदि।।128।।

पुरुषवेदियों में रहने का काल शतपृथक्त्व (सागरोपम) प्रमाण है। असुरकुमारों में तीन बार उत्पन्न होता है। नौ ग्रैवेयकों में तीन बार उत्पन्न होता है। स्वर्गों की स्थिति छहगुणी होती है।।128।।

जह चिय मोराण सिह णायाणं लंछणं व सत्थाणं।
मुक्खारूढ गणिय तत्थब्भासं तदो कुज्जा।।129।।

जिस प्रकार मयूरों की शिख उनका मुख्यतया से रूढ लक्षण है, उसी प्रकार न्याय शास्त्रों का मुख्य लक्षण गणित है। अतएव इसका अभ्यास करना चाहिये।।129।।

धवला पुस्तक

10

पद की विशेषता

अत्थो पदेण गम्मइ पदमिह अट्ठरहियमणभिलप्पं।
पदमत्थस्स णिमेणं अत्थालावो पदं कुणई।।1।।

अर्थ पद से जाना जाता है। यहाँ अर्थ रहित पद उच्चारण के अयोग्य है। पद अर्थ का स्थान है। अतः अर्थोच्चारण पद को उत्पन्न करता है।।1।।

आठ अनुयोगद्वार

पदमीमांसा संखा गुणयारो चउत्थयं च सामित्तं।
ओजो अप्पाबहुगं ठाणाणि य जीवसमुहारो।।2।।

पदमीमांसा, संख्या, गुणकार, चौथा स्वामित्व, ओज, अल्पबहुत्व, स्थान और जीवसमुहार, ये आठ अनुयोगद्वार हैं।।2।।

चोद्दस बादरजुम्मं सोलस कदजुम्ममेत्थ कलियोजो।
तेरस तेजोजो खलु पण्णरसेवं खु विण्णेया।।3।।

यहाँ चौदह को बादरयुग्म, सोलह को औतयुग्म, तेरह को कलिओज और पन्द्रह को तेजोज राशि जानना चाहिये।।3।।

पद भंग

तेरस पण णव पण णव दस दोबारस दसट्ठ अट्ठेव।
छच्छक्कट्ठेव तहा सामण्णपदादिपदभंगा।।4।।

तेरह, पाँच, नौ, पाँच, नौ, दस, दो, बारह, दस, आठ, आठ, छह, छह तथा आठ, ये सामान्य पद आदि के पदभंग हैं।।4।।

अवहारेणोवट्टिद अवहिरणिज्जम्मि जं हवे लद्धं।
तेणोवट्टिदमिट्ठं अहियं लद्धीय अद्धाणं ।।5।।

भागहार का भज्यमान राशि में भाग देने पर जो लब्ध आता है उससे इष्ट को भाजित करने पर लब्धि के अधिक स्थान प्राप्त होते हैं।।5।।

फालिसलागब्भहियाणुवारिदरूवाण जत्तिया संखा।
तत्तियपक्खोवूणा गुणहाणीरूवजणणट्ठं।।6।।

फालिशलाकाओं से अधिक पूर्ववर्ती अंकों की जितनी संख्या हो, गुणहानि के स्थानों को उत्पन्न करने के लिये उतने प्रक्षेप कम करने चाहिये।।6।।

ओजम्मि फालिसंखे गुणहाणी रूवसंजुआ अहिया।
सुद्धा रूवा अहिया फाली संखम्मि जुम्मम्मि।।7।।

फलियों की ओज अर्थात् विषम संख्या के होने पर गुणहानि में एक मिलाने पर अधिक स्थान आता है, एक जोड़ने पर अधिक गुणहानि आती है और फलियों की सम संख्या के होने पर शून्य जोड़ने पर अधिक गुणहानि आती है।।7।।

तिण्णं दलेण गुणिदा फालिसलागा हवंति सव्वत्थ।
फालिं पडि जाणेज्जो साहू पक्खोवरूवाणिं।8।।

तीन के आधे से गुणा करने पर सर्वत्र फालि की शलाकायें होती हैं और प्रत्येक फालि के प्रति प्रक्षेप रूपों को भले प्रकार से जान लेना चाहिये(?)।।8।।

फालीसंखं तिगुणिय अद्धं काऊण सगलरूवाणि।
पुणरवि फालीहि गुणे विसेससंखाणमेदि फुडं।9।।

फालियों की संख्या को तिगुणा कर फिर आधा करने पर जो समस्त अंक प्राप्त होते हैं, उन्हें फिर भी फलियों की संख्या से गुणित करने पर

स्पष्ट रूप से विशेषों की संख्या आती है(?)।।9।।

रूवूणिच्छागुणिदं पचयं सादिं गुणेउ फालीहि।
तिण्णेगादितिउत्तरविसेससंखाणमेदि फुडं।।10।।

एक कम इच्छाराशि से गुणित प्रचय को पुनः फालियों की संख्या से गुणा करने पर स्पष्ट रूप से तीन एक आदि तीनोत्तर विशेषों की संख्या आती है (?)।।10।।

इच्छहिदायामेण य रूवजुदेणवहरेज्ज विक्खंभं।
लद्धं दीहत्तजुदं इच्छिदहारो हवइ एवं।।11।।

रूपाधिक इच्छित आयाम से विस्तार को अपहृत करना चाहिये। ऐसा करने से जो लब्ध हो उसमें दीर्घता को मिलाने पर इच्छित भागहार होता है।।11।।

सोलसयं छप्पण्णं तत्तो गोवुच्छविसेसएण अहियाणि।
जाव दु बे सद सोलस तत्तो य विसद छप्पण्णं।।12।।
अडदाल सीदि बारसअहियसदं तह सदं च चोद्दालं।
छावत्तरि सदभेयं अट्ठुत्तर-विसद-छप्पण्णं।।13।।

सोलह, छप्पन इससे आगे दो सौ सोलह प्राप्त होने तक एक गोपुच्छ विशेष (32) से उत्तरोत्तर अधिक, इसके पश्चात् दो सौ छप्पन तथा अड़तालीस, अस्सी, एक सौ बारह, एक सौ चवालीस, एक सौ छिहत्तर, दो सौ आठ और दो सौ छप्पन ये चतुर्थ क्षेत्र के खण्डों का प्रमाण है।।12-13।।

गच्छ का प्रमाण

घणमट्ठुत्तरगुणिदे विणुगादीउत्तरूणवग्गजुदे।
मूलं परिमूलूणं बिगुणुत्तरभागिदे गच्छो।।14।।

घन को आठ से और फिर उ त्तर से गुणा करके उसमें द्विगुणित आदि में से उत्तर को कम करके जो राशि प्राप्त हो उसके वर्ग को जोड़ दे। फिर इसके वर्गमूल में से पहले के प्रक्षेप के वर्गमूल को कम करके शेष रही राशि में द्विगुणित उत्तर का भाग देने पर गच्छ का प्रमाण आता है।।12-14।।

एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितश्च पदवृद्धैः।
गच्छस्संपातफलं समाहतं सन्निपातफलम्।।15।।

एक को आदि लेकर एक अधिक क्रम से पद प्रमाण वृद्धि को प्राप्त संख्या में अन्त में स्थापित एक को आदि लेकर पद प्रमाण वृद्धिंगत संख्या का भाग देने पर गच्छ के बराबर संपातफल अर्थात् प्रत्येक भंग का प्रमाण आता है। इसको आगे-आगे स्थापित संख्याओं से गुणत करने पर सन्निपातफल अर्थात् द्विसंयोगी आदि के भंगों का प्रमाण होता है।।15।।

गुणश्रेणि निर्जरा

सम्मत्तुप्पत्ती वि य सावय-विरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खए कसायउवसामए य उवसंते।।16।।
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए।।17।।

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति, श्रावक (देशविरत), विरत (महाव्रती), अनन्त कर्मांश अर्थात् अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोह का क्षय करने वाला, चारित्र मोह का उपशम करने वाला, उपशान्त मोह, चारित्र मोह का क्षपण करने वाला, क्षीण मोह और जिन, इनके नियम से उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणि रूप से कर्म निर्जरा होती है, किन्तु निर्जरा का काल उससे विपरीत संख्यातगुणित श्रेणि रूप से है, अर्थात् उक्त निर्जराकाल जितना जिन

भगवान् के उससे संख्यातगुण क्षीण मोह के है, उससे संख्यात गुणा चारित्र मोहक्षपक के है इत्यादि।।16-17।। इन गाथा सूत्रों से जाना जाता है कि यहाँ असंख्यातगुणित श्रेणी रूप से कर्म निर्जरा होती है।

कर्मों के भाग में हीनाधिकता

आउवभागो थोवो णामा-गोदे समो तदो अहिओ।
आवरणमंतराए भागो मोहे वि अहिओ दु।।18।।
सव्वुवरि वेयणीए भागो अहिओ दु कारणं किंतु।
सुह-दुक्खकारणत्ता ट्ठिदिविसेसेण सेसाणं।।19।।

आयु का भाग सबसे स्तोक है, नाम व गोत्र में समान होकर वह आयु की अपेक्षा अधिक है, उससे अधिक भाग आवरण अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय का है, इससे अधिक भाग मोहनीय है। सबसे अधिक भाग वेदनीय में है, इसका कारण उसका सुख-दुख में निमित्त होना है। शेष कर्मों के भाग की अधिकता उनकी अधिक स्थिति होने के कारण है।।18-19।।

पढमिच्छ सलागगुणा तत्थादीवग्गणा चरिमसुद्धा।
सेसेण चरिमहीणा सेसेगूणं तमागासं।।20।।

प्रथम स्पर्धक की आदि वर्गणा को अभीष्ट स्पर्धकशलाकाओं से गुणित करने पर वहाँ की आदिम वर्गणा का प्रमाण होता है। इसमें से पिछले स्पर्धक की चरम वर्गणा को कम करने पर जो शेष रहे उतनी चूँकि अगले स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से पिछले स्पर्धक की अन्तिम वर्गणा हीन है। अतः उस शेष में से एक कम करने पर अवशेष आकाश अर्थात् स्पर्धकों के अन्तर का प्रमाण होता है।।20।।

जत्थिच्छसि सेसाणं आदीदो आदिवग्गणं णादुं।
जत्तो तत्थ सहेट्ठं पढमादि अणंतरं जाणे।।21।।

जहाँ–जहाँ जिन स्पर्धकों की आदि वर्गणा जानना अभीष्ट हो वहाँ पिछले स्पर्धक की वर्गणा को प्रथम वर्गणा सहित करने पर अनन्तर स्पर्धक की प्रथम वर्गणा होती है।।21।।

बिदियादिवग्गणा पुण जावदिरूवेहि होदि संगुणिदा।
तावदिमफद्दयस्स दु जुम्मस्स स वग्गणा होदि।।22।।

द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा को जितने अंकों से गुणित किया जाता है उतने में युग्म स्पर्धक की वह प्रथम वर्गणा होती है।।22।।

दो–दो रूवक्खेवं धुवरूवे कादुमादियं गुणिदं।
पक्खेव सलागसमाणे ओजे आदिं धुवं मोत्तुं।।23।।

ध्रुव रूप में दो–दो अंकों का प्रक्षेप करके उससे प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा को गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतना प्रक्षेपशलाकाओं से युक्त ध्रुव रूप में पिछले ओज स्पर्धकों के प्रमाण को नियम से घटाने पर जो शेष रहे उतनेंवे ओज स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का प्रमाण होता है।।23।।

विसमगुणादेगूणं दलिदे जुम्मम्मि तथ फद्दयाणि।
ते चेव रूवसहिदा ओजे उभओ वि सव्वाणि।।24।।

विषमगुण अर्थात् ओज स्पर्धक के गुणकार में से एक कम करके आधा करने पर वहाँ युग्म स्पर्धकों का प्रमाण आता है। उनमें ही एक अंक के मिला देने पर ओज स्पर्धकों का प्रमाण हो जाता है। उक्त दोनों स्पर्धकों के प्रमाण को जोड़ने से समस्त स्पर्धकों की संख्या प्राप्त होती है।।24।।

विरलिदइच्छं विगुणिय अण्णोण्णगुणं पुणो दुपडिरासिं।
कादूण एक्करासिं उत्तरजुदआदिणा गुणिय।।25।।
उत्तरगुणिदं इच्छं उत्तर–आदीय संजुदं अवणे।
सेसं हरेज्ज पदिणा आदिमछेदद्धगुणिदेण।।26।।

विरलित इच्छा राशि को दूना करके परस्पर गुणा करने पर जो प्राप्त हो उसकी दो प्रतिराशियां करके उनमें से एक राशि को चय युक्त आदि से गुणित करके उसमें से चयगुणित इच्छा को चय युक्त आदि से संयुक्त करके घटा देना चाहिये। ऐसा करने पर जो शेष रहे उसमें प्रथम हार के अर्ध भाग से गुणित प्रतिराशि का भाग देना चाहिये।।25-26।।

प्रक्षेपकसंक्षेपेण विभक्ते यद्धनं समुपलब्धं।
प्रक्षेपास्तेन गुणाः प्रक्षेपसमानि खण्डानि।।27।।

किसी एक राशि के विवक्षित राशि प्रमाण खण्ड करने के लिये प्रक्षेपों को जोड़कर उसका उक्त राशि में भाग देने पर जो लब्ध हो उससे प्रक्षेपों को गुणित करने पर प्रक्षेपों के समान खण्ड होते हैं।।27।।

आउअभागो थोवो णामा-गोदे समो तदो अहियो।
आवरणमंतराए भागो अहिओ दु मोहे वि।।28।।
सव्वुवरि वेयणीए भागो अहिओ दु कारणं किंतु।
पयडिविसेसो कारण णो अण्णं तदणुवलंभादो।।29।।

आयु का भाग स्तोक है। उससे नाम और गोत्र का भाग विशेष अधिक होता हुआ परस्पर समान है। उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का भाग अधिक है। उससे अधिक भाग मोहनीय का है। वेदनीय का भाग सबसे अधिक है, किन्तु इसका कारण प्रकृति विशेष है, अन्य नहीं, क्योंकि वह पाया नहीं जाता।।28-29।।

धवला पुस्तक

11

निक्षेप की विशेषता

अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवहारणट्ठं च।।1।।

अप्रकृत का निवारण करने के लिये, प्रकृत की प्ररूपणा करने के लिये, संशय को नष्ट करने के लिये और तत्त्वार्थ का निश्चय करने के लिये निक्षेप किया जाता है।।1।।

काल के भेदों का स्वरूप

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्णं एस सहाओ वालो खणभंगुरो णियदो।।1।।

समयादिरूप व्यवहारकाल चूंकि जीव व पुद्गल के परिणमन से जाना जाता है, अतः वह उससे उत्पन्न कहा जाता है और जीव व पुद्गल का परिणाम चूंकि द्रव्यकाल के होने पर होता है, अत एव वह द्रव्यकाल से उत्पन्न कहा जाता है। इनमें व्यवहारकाल क्षणक्षयी और निश्चयकाल अविनश्वर है।।।1।।

काल का स्वरूप

ण य परिणमइ सयं सो ण य परिणामेइअण्णमण्णेसि।
विविहपरिणामियाणं हवइ हु हेऊ सयं कालो।।2।।

वह काल न स्वयं परिणमता है और न अन्य पदार्थ को अन्य स्वरूप से परिणमाता है, किन्तु स्वयं अनेक पर्यायों में परिणत होने वाले

पदार्थों के परिणमन में वह उदासीन निमित्त मात्र होता है।।2।।

कालाणु का लक्षण

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी दव ते कालाणू मुणेयव्वा।।3।।

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर जो रत्नराशि के समान एक-एक पर स्थित हैं, उन्हें कालाणु जानना चाहिये।।3।।

कालो त्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीर्हतरट्ठाई।।4।।

'काल' यह नाम निश्चयकाल के अस्तित्व को प्रगट करता है, जो द्रव्य स्वरूप से नित्य है। दूसरा व्यवहार काल यद्यपि उत्पन्न होकर नष्ट होने वाला है, तथापि वह (समय सन्तान की अपेक्षा व्यवहार नय से आवली व पल्य आदि स्वरूप से) दीर्घकाल तक स्थित रहने वाला है।।4।।

अच्छेदनस्य राशेः रूपं छेदं वदन्ति गणितज्ञः।
अंशाभावे नाशं छेदस्याहुस्तन्वेव।।5।।

जब राशि में कोई छेद नहीं होता तब वह गणितज्ञ उसका छेद एक मान लेते हैं (जैसे 3=3/1) और जब अंश का अभाव हो जाता है तब छेदों का भी नाश समझना चाहिये।।5।।

प्रक्षेपकसंक्षेपेण विभक्ते यद्धनं समुपलब्धं।
प्रक्षेपास्तेन गुणा प्रक्षेपसमानि खंडानि।।6।।

प्रक्षेपों के संक्षेप अर्थात् योगफल का विवक्षित राशि में भाग देने पर जो धन प्राप्त हो उससे प्रक्षेपों को गुणा करने पर प्रक्षेपों के बराबर खण्ड होते हैं।।6।।

धवला पुस्तक

12

बारस पण दस पण दस पंचेक्कारस य सत्त सत्त णव।
दुविहणयगहणलीणा पुच्छासुत्तंकसंदिट्ठी।।1।।

बारह, पाँच, दस, पाँच, दस, पाँच स्थानों में ग्यारह, सात, सात और नौ, इस प्रकार दोनों नयों की अपेक्षा यह पृच्छासूत्रों के अंकों की संदृष्टि है।।1।।

एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितश्च पदवृद्धैः।
गच्छत्संपातफलं समाहतस्सन्निपातफलम्।।2।।

एक-एक अधिक होकर पद प्रमाण वृद्धिंगत गच्छ को पद प्रमाण वृद्धि को प्राप्त हुए एक आदि अंकों से भाजित करने पर संपातफल अर्थात् एक संयोगी भंगों का प्रमाण आता है। इनको परस्पर गुणित करने से सन्निपातफल अर्थात् द्विसंयोगी आदि भंग आते हैं।।2।।

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो।।3।।

वचन के अगोचर अर्थात् केवल केवलज्ञान के विषयभूत जीवादिक पदार्थों के अनन्तवें भाग मात्र प्रज्ञापनीय अर्थात् तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि के द्वारा प्रतिपादन के योग्य हैं तथा प्रतिपादन के योग्य उक्त जीवादिक पदार्थों का अनतवाँ भाग मात्र श्रुतनिबद्ध है।।3।।

आचार्यः पादमाचष्टे पादः शिष्य स्वमेधया।
तद्विद्यसेवया पादः पादः कालेन पच्यते।।4।।

आचार्य एक पाद को कहते हैं, एक पाद को शिष्य अपनी बुद्धि से

ग्रहण करता है, एक पाद उसके जानकार पुरुषों की सेवा से प्राप्त होता है तथा एक पाद समयानुसार परिपाक को प्राप्त होता है।।4।।

एयक्खेत्तोगाढ सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेदू सादियमहणादियं वा वि।।1।।

सूक्ष्म निगोद जीव का शरीर घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य अवगाहन का क्षेत्र एक क्षेत्र कहा जाता है। उस एक क्षेत्र में अवगाह को प्राप्त व कर्मस्वरूप परिणमन के योग्य सादि अथवा अनादि पुद्गल द्रव्य को जीव यथोक्त मिथ्यादर्शनादिक हेतुओं से संयुक्त होकर समस्त आत्मप्रदेशों के द्वारा बाँधता है।।1।।

भावों की बंध में विशेषता

ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।
परिणामिओ दु भावो करणोहयवज्जियो होदि।।2।।

औदयिक भाव बन्ध के कारण और औपशमिक, क्षायिक व मिश्र भाव मोक्ष के कारण हैं। पारिणामिक भाव बन्ध व मोक्ष दोनों के ही कारण नहीं है।।2।।

एए छज्ज समाणा दोण्णि य संझक्खरा सरा अट्ठ।
अण्णोण्णस्स परोप्परमुवेंति सव्वे समावेसं।।3।।

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अ, आ, इ, ई, उ और ऊ ये छह स्वर और ए व ओ, ये दो सन्ध्यक्षर, इस प्रकार ये सब आठ स्वर परस्पर आदेश को प्राप्त होते हैं।।3।।

बन्ध के कारण

जोगा पयडि-पदेसे ट्ठिदि-अणुभागे कसायदो कुणदि।।4।।

योग प्रकृति व प्रदेश को तथा कषाय स्थिति व अनुभाग को

करती है।।4।।

स्वाद्वाद की महिमा

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्।।1।।

हे अरिजन! आपके न्याय में 'सर्वथा' नियम को छोड़कर यथादृष्ट वस्तु की अपेक्षा रखने वाला 'स्यात्' शब्द पाया जाता है। वह आत्मविद्वेषी अर्थात् अपने आपका अहित करने वाले अन्य के यहाँ नहीं पाया जाता है।।1।।

भंगायामपमाणं लघुओ गरुओ त्ति अक्खणिक्खेवो।
तत्तो च दुगुण-दुगुणो पत्थारो विण्णसेयव्वो।।1।।

भंगों के आयाम प्रमाण अर्थात् प्रथम पंक्तिगत भंगों का जितना प्रमाण हो उतने बार लघु और गुरु इस प्रकार से अक्षनिक्षेप किया जाता है तथा आगे द्वितीयादि पंक्तियों में दुगुणे-दुगुणे प्रस्ताव का विन्यास करना चाहिये।।1।।

अक्ष परिवर्तन

पढमक्खो अंतगओ आदिग संकमेदि बिदियक्खो।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो।।2।।

प्रथम अक्ष अन्त को प्राप्त होकर जब पुनः आदि को प्राप्त होता है तब द्वितीय अक्ष बदलता है। जब प्रथम और द्वितीय दोनों ही अक्ष अन्त को प्राप्त होकर पुनः आदि को प्राप्त होते हैं तब तृतीय अक्ष बदलता है।।2।।

टि्ठदिघादे हंमंते अणुभागा आउआण सव्वेसिं।
अणुभागेण विणा वि हु आउववज्जाण दिट्ठदिघादो।।1।।

स्थितिघात के होने पर जब आयुओं के अनुभागों का नाश होता है

आयु को छोड़कर शेष कर्मों का अनुभाग के बिना भी स्थितिघात होता है।।1।।

अणुभागे हंमंते ट्ठिदिघादो आउआण सव्वेसिं।
ठिदिघादेण विणा वि हु आउववज्जाणमणुभागो।।2।।

अनुभाग का घात होने पर जब आयुओं का स्थितिघात होता है। स्थितिघात के बिना भी आयु को छोड़कर शेष कर्मों के अनुभाग का घात होता है।।2।।

सूत्र का लक्षण

अर्थस्य सूचनात्सम्यक्सूतेर्वार्थस्य सूरिणा।
सूत्रमुक्तमनल्पार्थं सूत्रकारेण तत्त्वतः।।3।।

भली भाँति अर्थ का सूचक होने से अथवा अर्थ का जनक होने से बहुत अर्थ का बोधक वाक्य सूत्रकार आचार्य के द्वारा यथार्थ में सूत्र कहा गया है।।3।।

बुद्धिविहीने श्रोतरि वक्तृत्वनर्थकं भवति पुंसाम्।
नेत्रविहीने भर्तरि विलास-लावण्यवत्स्त्रीणाम्।।4।।

जिस प्रकार पति के अन्धे होने पर स्त्रियों का विलास व सुन्दरता व्यर्थ (निष्फल) है, इसी प्रकार श्रोता के मूर्ख होने पर पुरुषों का वक्तापन भी व्यर्थ है।।4।।

सुहुमणुभागादुवरिं अंतरमकंद ति घादिकम्माणं।
केवलिणो वि य उवरिं भवओग्गह अप्पसत्थाणं।।5।।

कारण कि जघन्य क्षेत्र के साथ रहने वाले ज्ञानावरण के अनुभाग का अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्परायिक और क्षीणकषाय परिणामों द्वारा काण्डक स्वरूप से और अनुसमयापवर्तना से जघन्य अनुभाग के समान घात नहीं होता है। यद्यपि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक का अनुभाग

भी घात को प्राप्त हो चुका है तो भी वह जघन्य अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणत्व को छोड़कर शेष पाँच अवस्थाविशेषों में प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि अक्षपक के विशुद्ध परिणामों द्वारा घाता जाने वाला अनुभाग क्षपकों द्वारा घाते जाने वाले अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणा पाया जाता है।।5।।

धवला पुस्तक

13

प्रमाणनयनिक्षेपैर्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते।
युक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत्।।1।।

जिस पदार्थ का प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा, नैगमादि नयों के द्वारा और नामादि निक्षेपों के द्वारा सूक्ष्म दृष्टि से विचार नहीं किया जाता है, वह पदार्थ युक्त (संगत) होते हुए भी अयुक्तसा (असंगतसा) प्रतीत होता है और अयुक्त होते हुए भी युक्तसा प्रतीत होता है।।1।।

कालाणु का स्वरूप/विशेषता

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा।।2।।

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान जो एक-एक स्थित हैं वे कालाणु हैं, ऐसा जानना चाहिये।।2।।

स्कन्ध और परमाणु का लक्षण

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी जो स परमाणू।।3।।

जो सर्वांश में समर्थ है उसे स्कन्ध कहते हैं। उसके आधे को देश और आधे के आधे को प्रदेश कहते हैं तथा जो अविभागी है उसे परमाणु कहते हैं।।3।।

(सत्ता) सत् का स्वरूप

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पायधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवइ एक्का।।4।।

सत्ता सब पदार्थों में स्थित है, सविश्वरूप है, अनन्त पर्यायवाली है, नाश, उत्पाद और ध्रौव्यस्वरूप है तथा सप्रतिपक्ष होकर भी एक है।।4।।

नय का स्वरूप

उच्चारदम्मि दु पदे णिक्खेवं वा कयं दु दट्ठूण।
अत्थं णयंति ते तच्चदो त्ति तम्हा णया भणिदा।।1।।

उच्चारण किये गये पद में जो निक्षेप होता है उसे देखकर वे अर्थ का तत्त्वतः निर्णय करा देते हैं, इसलिये उन्हें नय कहा है।।1।।

ईर्यापथ कर्म का लक्षण

अप्पं बादर मवुअं बहुअं लहुक्खं च सुक्किलं चेव।
मंदं महव्वयं पि य सादब्भहियं च तं कम्मं।।2।।

वह ईर्यापथ कर्म अल्प है, बादर है, मृदु है, बहुत है, रुक्ष है, शुक्ल है, मन्द अर्थात् मधुर है, महान् व्यय वाला है और अत्यधिक सात रूप है।।2।।

गहिदमगहिदं च तहा बद्धमबद्धं च पुट्ठऽपुट्ठं च।
उदिदाणुदिदं वेदिदमवेदिदं चेव तं जाणे।।3।।

उसे गृहीत होकर भी अगृहीत, बद्ध होकर भी अबद्ध, स्पृष्ट होकर भी अस्पृष्ट, उदित होकर भी अनुदित और वेदित होकर भी अवेदित जानना चाहिये।।3।।

णिज्जरिदाणिज्जरिदं उदीरिदं चेव होदि णायव्वं।
अणुदीरिदं ति य पुणो इरियावहलक्खणं एदं।।4।।

वह निर्जरित होकर भी निर्जरित नहीं है और उदीरत होकर भी अनुदीरित है। इस प्रकार यह ईर्यापथ कर्म का लक्षण है।।4।।

वीतराग सुख की विशेषता

जं च कामसुहं लोए जं च दिव्वं महासुहं।
वीयरायसुहस्सेदं णंतभागं ण अग्घदे।।5।।

लोक में जो काम सुख है और जो दिव्य महासुख है, वह वीतराग सुख के अनन्तवे भाग के योग्य भी नहीं है।।5।।

उपवास का स्वरूप

अप्रवृत्तस्य दोषेभ्यस्सहवासो गुणैः सह।
उपवासस्य विज्ञेयो न शरीरविशोषणाम्।।6।।

उपवास में प्रवृत्ति नहीं करने वाले जीव को अनेक दोष प्राप्त होते हैं और उपवास करने वाले को अनेक गुण, ऐसा यहाँ जानना चाहिये। शरीर के शोषण करने को उपवास नहीं कहते।।6।।

आहार का परिमाण

बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरणो भणिदो।
पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं हवे कवला।।7।।

उदरपूर्ति के निमित्त पुरुष का बत्तीस ग्रास और महिला का अट्ठाईस ग्रास आहार कहा है।।7।।

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने।।8

(हे कुन्थु जिनेन्द्र!) आपने आध्यात्मिक तप को बढ़ाने के लिये दुश्चर बाह्य तप का आचरण किया और प्रारम्भ के दो मलिन ध्यानों को छोड़कर अतिशय को प्राप्त उत्तर के दो ध्यानों में प्रवृत्ति की।।8।।

प्रायश्चित्त की निरुक्ति

प्राय इत्युच्यते लोकश्चित्तं तस्य मनो भवेत्।
तच्चित्तग्राहकं कर्म्म प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।9।।

प्रायः यह पद लोकवाची है और चित्त से अभिप्राय उसके मन का है। इसलिये उस चित्त को ग्रहण करने वाला कर्म प्रायश्चित्त है, ऐसा समझना चाहिये।।9।।

कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि तनूभवन्त्यात्मविगर्हणेन।
प्रकाशनात्संवरणाच्च तेषामत्यन्तमूलोद्धरणं वदामि।।10।।

अपनी गर्हा करने से, दोषों का प्रकाशन करने से और उनका संवर करने से किये गये अतिदारुण कर्म कृश हो जाते हैं। अब उनका समूल नाश कैसे हो जाता है, यह कहते हैं।।10।।

प्रायश्चित के भेद

आलोयण-पडिकमणे उभय-विवेगे तहा विउसग्गो।
तवछेदो मूलं पि य परिहारो चेव सद्दहणा।।11।।

आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान ये प्रायश्चित के दस भेद हैं।।11।।

ध्यान और अनुप्रेक्षा

जं थिरमज्झवसाणं तं झाणं जं चलंतय चित्तं।
तं होइ भावणा वा अणुपेहा वा अहव चिंता।।12।।

जो परिणामों की स्थिरता होती है उसका नाम ध्यान है और जो चित्त का एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में चलायमान होना है वह या तो भावना है या अनुप्रेक्षा है या चिन्ता है।।12।।

ध्याता का लक्षण

ज्झाणिस्स लक्खणं से अज्जव-लहुअत्त-बुड्ढवुवएसा।
उवएसाणासुत्तं णिस्सग्गगदाओ रुचियो से।।13।।

जिसकी उपदेश, जिनाज्ञा और जिनसूत्र के अनुसार आर्जव, लघुता और वृद्धत्व गुण से युक्त स्वभावगत रुचि होती है, वह ध्यान करने वाले का लक्षण है।।13।।

जच्चिय देहावत्था जया ण ज्झाणावरोहिणी होइ।
ज्झाएज्जो तदवत्थो ट्ठियो णिसण्णो णिवण्णो वा।।14।।

जैसे भी देह की अवस्था जिस समय ध्यान में बाधक नहीं होती उस अवस्था में रहते हुए खड़ा होकर या बैठकर कायोत्सर्ग पूर्वक ध्यान करे।।14।।

सव्वासु वट्टमाणा मुणओ जं देस-काल-चेट्ठासु।
वरकेवलादिलाहं पत्ता बहुसो खवियपावा।।15।।

सब देश, सब काल और सब अवस्थाओं में विद्यमान मुनि अनेकविध पापों का क्षय करके उत्तम केवलज्ञान आदि को प्राप्त हुए।।15।।

तो जत्थ समाहाणं होज्ज मणो-वयण-कायजोगाणं।
भूदोवघायरहिओ सो देसो ज्झायमाणस्स।।16।।

मनोयोग, वचनयोग और काययोग जहाँ समवधान हो और जो प्राणियों के उपघात से (अर्थात् एकाग्रता) रहित हो वही देश ध्यान करने वाले के लिये उचित है।।16।।

ध्यान हेतु स्थान

णिच्चं विय-जुवइ पसू-णवुंसय-कुसीलवज्जियं जइणो।
ट्ठाण वियणं भणियं विसेसदो ज्झाणकालम्मि।।17।।

जो स्थान श्वापद, स्त्री, पशु, नपुंसक और कुशील जनों से रहित हो और जो निर्जन हो, यतिजनों को विशेषरूप से ध्यान के समय ऐसा ही स्थान उचित माना है।।17।।

थिरकयजोगाणं पुण मुणीण झाणेसु णिच्चलमणाणं।
गामम्मि जणाइण्णे सुण्णे रण्णे य ण विसेसो।।18।।

परन्तु जिन्होंने अपने योगों को स्थिर कर लिया है और जिसका मन ध्यान में निश्चल है ऐसे मुनियों के लिये मनुष्यों से व्याप्त ग्राम में और शून्य जंगल में कोई अन्तर नहीं है।।18।।

कालो वि सो च्चिय जहिं जोगसमाहाणमुत्तमं लहइ।
ण उ दिवसणिसावेलादिणियमणं ज्झाइणो समए।।19।।

काल भी वही योग्य है जिसमें उत्तम रीति से योग का समाधान प्राप्त होता है। ध्यान करने वाले के लिए दिन, रात्रि और वेला आदि रूप से समय में किसी प्रकार का नियमन नहीं किया जा सकता।।19।।

तो देसकालचेट्ठाणियमो झाणस्स णत्थि समयम्मि।
जोगाण समाहाणं जह होइ तहा पयइयव्वं।।20।।

ध्यान के समय में देश, काल और चेष्टा का भी कोई नियम नहीं है। तत्त्वतः जिस तरह योगों को समाधान हो उस तरह प्रवृत्ति करनी चाहिये।।20।।

धर्म्य ध्यान के आलम्बन

आलंबणाणि वायण-पुच्छण-परियट्टणाणुपेहाओ।
सामाइयादियाइं सव्वं आवासयाइं च।।21।।

वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और सामायिक आदि सब आवश्यक कार्य, ये सब ध्यान के आलम्बन हैं।।21।।

विसमं हि समारोहइ दिढदव्वालंबणो जहा पुरिसो।
सुत्तादिकयालंबो तह झाणवरं समारुहइ।।22।।

जिस प्रकार कोई पुरुष नसैनी आदि दृढ़ द्रव्य के आलम्बन से विषम भूमि पर भी आरोहण करता है उसी प्रकार ध्याता भी सूत्र आदि के आलम्बन से उत्तम ध्यान को प्राप्त होता है।।22।।

ध्यान की अर्हता

पुव्वकयब्भासो भावणाहि ज्झाणस्स जोग्गदमुवेदि।
ताओ य णाण-दंसण-चरित्त-वेरग्गजणियाओ।।23।।

जिसने पहले उत्तम प्रकार से अभ्यास किया है वह पुरुष ही भावनाओं द्वारा ध्यान की योग्यता को प्राप्त होता है और वे भावनायें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वैराग्य से उत्पन्न होती है।।23।।

णाणे णिच्चब्भासो कुणइ मणोवारणं विसुद्धिं च।
णाणगुण मुणियसारो तो ज्झायइ णिच्चलमईओ।।24।।

जिसने ज्ञान का निरन्तर अभ्यास किया है वह पुरुष ही मनोनिग्रह और विशुद्धि को प्राप्त होता है, क्योंकि जिसने ज्ञानगुण के बल से सारभूत वस्तु को जान लिया है वही निश्चलमति हो ध्यान करता है।।24।।

संकाइसल्लरहियो पसमत्थेयादिगुणगणोवईओ।
होइ असंमूढमणो दंसणसुद्धीए ज्झाणम्मि।।25।।

जो शंका आदि शल्यों से रहित है और जो प्रशम तथा स्थैर्य आदि गुणगणों से उपचित है, वही दर्शनविशुद्धि के बल से ध्यान में असंमूढ मन वाला होता है।।25।।

ध्यान की विशेषता

णवकम्माणादाणं पोराणवि णिज्जरा सुहादाणं।
चारित्तभावणाए ज्झाणमयत्तेण य समेइ।।26।।

चारित्र भावना के बलसे जो ध्यान में लीन है, उसके नूतन कर्मों का ग्रहण नहीं होता, पुराने कर्मों की निर्जरा होती है और शुभ कर्मों का आस्रव होता है।।26।।

सुविदियजयस्सहावो णिस्संगो णिब्भवो णिरासो य।
वेरग्गभावियमणो ज्झाणम्मि सुणिच्चलो होइ।।27।।

जिसने जगत् के स्वभाव को जान लिया है, जो निःसंग है, निर्भय है, सब प्रकार की आशाओं से रहित है और वैराग्य की भावना से जिसका मन ओतप्रोत है वही ध्यान में निश्चल होता है।।27।।

किंचिदि्ठदिमुपावत्तइत्तु ज्झेये णिरुद्धदिट्ठीओ।
अप्पाणम्मि सदिं संधित्तु संसारमोक्खट्ठं।।28।।

जिसकी दृष्टि ध्येय में रुकी हुई है वह बाह्य विषय से अपनी दृष्टि को कुछ क्षण के लिए हटाकर संसार से मुक्त होने के लिए अपनी स्मृति को अपने आत्मा में लगावे।।28।।

पच्चाहरित्तु विसएहि इंदियाइं मणं च तेहिंतो।
अप्पाणम्मि मणं तं जोग पणिधाय धारेदि।।29।।

इन्द्रियो को विषयों से हटाकर और मन को भी विषयों से दूरकर समाधि पूर्वक उस मन को अपने आत्मा में लगावे।।29।।

सिद्धों के गुण

द्रव्यतः क्षेत्रतश्चैव कालतो भावतस्तथा।
सिद्धाष्टगुणसंयुक्ता गुणाः द्वादशधा स्मृताः।।30।।

सिद्धों के आठ गुण होते हैं। उनमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार गुण मिलाने पर बारह गुण माने गये हैं।।30।।

अकसायमवेदत्तं अकारयत्तं विदेहदा चेव।
अचलत्तमलेपत्तं च होंति अच्चंतियाइं से।।31।।

अकषायत्व, अवेदत्व, अकारकत्व, देहराहित्य, अचलत्व, अलेपत्व, ये सिद्धों के आत्यन्तिक गुण होते हैं।।31।।

ध्यान के आलम्बन

आलंबणेहि भरियो लोगो ज्झाइदुमणस्स खवगस्स।
जं जं मणसा पेच्छइ तं तं आलंबणं होइ।।32।।

यह लोक ध्यान के आलम्बनों से भरा हुआ है। ध्यान में मन लगाने वाला क्षपक मन से जिस-जिस वस्तु को देखता है वह-वह वस्तु ध्यान का आलम्बन होती है।।32।।

सुणिउणमणाइणिहणं भूदहिदं भूदभावणमणग्घं।
अमिदमजिदं महत्थं महाणुभावं महाविसयं।।33।।
ज्झाएज्जो णिरवज्जं जिणाणमाणं जगप्पईवाणं।
अणिउणजणदुण्णेयं णयभंगपमाणगमगहणं।।34।।

जो सुनिपुण है, अनादिनिधन है, जगत् के जीवों का हित करने वाली है, जगत् के जीवों द्वारा सेवित है, अमूल्य है, अमित है, अजित है, महान् अर्थवाली है, महानुभाव है, महान् विषयवाली है, निरवद्य है, अनिपुण जनों के लिये दुर्ज्ञेय है और नयभंगों तथा प्रमाणागम से गहन है, ऐसी जग के प्रदीप स्वरूप जिन भगवान् की आज्ञा का ध्यान करना चाहिये।।33-34।।

तत्थ मइदुब्बलेण य तव्विज्जाइरियविरहिदो वा वि।
णेयगहणत्तणेण य णाणावरणादिएणं च।।35।।

हेदूदाहरणासंभवे य सरि-सुट्ठुज्जाण बुज्झेज्जो।
सव्वण्णुमयमवितत्थं तहाविहं चिंतए मदिमं।।36।।

मति की दुर्बलता होने से, अध्यात्म विद्या के जानकार आचार्यों का विरह होने से, ज्ञेय की गहनता होने से, ज्ञान को आवरण करने वाले कर्म की तीव्रता होने से और हेतु तथा उदाहरण सम्भव न होने से, नदी और सुखोद्यान आदि चिन्तवन करने योग्य स्थान में मतिमान् ध्याता 'सर्वज्ञप्रतिपादित मत सत्य है' ऐसा चिन्तवन करे।।35-35।।

जिनवचनों की प्रामाणिकता

अणुवगयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जयप्पवरा।
जियरायदोसमोहा ण अण्णहावाइणो तेण।।37।।

यतः जग में श्रेष्ठ जिन भगवान्, जो उनको नहीं प्राप्त हुए ऐसे अन्य जीवों का भी अनुग्रह करने में तत्पर रहते हैं और उन्होंने राग, द्वेष और मोह पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिये वे अन्यथावादी नहीं हो सकते।।37।।

आज्ञा विचय ध्यान

पंचत्थिकायछज्जीवकाइए कालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि।।38।।

पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, काल द्रव्य तथा इस प्रकार आज्ञाग्राह्य अन्य जितने पदार्थ हैं, उनका यह आज्ञाविचय ध्यान के द्वारा चिन्तवन करता है।।38।।

अपाय विचय ध्यान

रागद्दोसकसायासवादिकिरियासु वट्टमाणाणं।
इहपरलोगावाए ज्झाएज्जो वज्जपरिवज्जी।।39।।

पाप का त्याग करने वाला साधु राग, द्वेष, कषाय और आस्रव आदि

क्रियाओं में विद्यमान जीवों के इहलोक और परलोक से अपाय का चिन्तवन करे।।39।।

कल्लाणपावए जे उवाए विचिणादि जिणमयमुवेच्च।
विचिणादि वा अवाए जीवाणं जे सुहा असुहा।।40।।

अथवा जिनमत को प्राप्त कर कल्याण करने वाले जो उपाय हैं उनका चिन्तवन करता है। अथवा जीवों के जो शुभाशुभ भाव होते हैं उनसे अपाय का चिन्तवन करता है।।40।।

विपाक विचय ध्यान

पयडिट्ठिदिप्पदेसाणुभागभिण्णं सुहासुहविहत्तं।
जोगाणुभागजणियं कम्मविवागं विजिंतेज्जो।।41।।

जो प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग इन चार भागों में विभक्त है, जो शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है तथा जो योग और अनुभाग अर्थात् कषाय से उत्पन्न हुआ है ऐसे कर्म के विपाक का चिन्तवन करे।।41।।

एगाणेगभवगयं जीवाणं पुण्णपावकम्मफलं।
उदओदीरणसंकमबंधे मोक्खं च विचिणादी।।42।।

जीवों को जो एक और अनेक भव में पुण्य और पाप कर्म का फल होता है तथा उसका उदय, उदीरणा, संक्रम, बन्ध और मोक्ष का चिन्तवन करता है।।42।।

संस्थान विचय ध्यान

जिणदेसियाइ लक्खणसंठाणासणविहाणमाणाइं।
उप्पाद-ट्ठिदिभंगादिपज्जया जे य दव्वाणं।।43।।

पंचत्थिकायमइयं लोगमणाइणिहणं जिणक्खादं।
णामादिभेयविहियं तिविहमहोलोगभागादिं।।44।।
खिदिवलयदीवसायरणयरविमाण भवणादिसंठाणं।
वोमादिपडिट्ठाणं णिययं लोगट्ठिदिविहाणं।।45।।

जिनदेव के द्वारा कहे गये छह द्रव्यों के लक्षण, संस्थान, रहने का स्थान, भेद, प्रमाण तथा उनकी उत्पाद, स्थिति और व्यय आदि रूप पर्यायों का, पाँच अस्तिकायमय, अनादिनिधन, नामादि अनेक भेदरूप और अधोलोक आदि भाग रूप से तीन प्रकार के लोक का तथा पृथिवीलय, द्वीप, सागर, नगर, विमान, भवन आदि के संस्थान का एवं आकाश में प्रतिष्ठान, नियत और लोकस्थिति आदि भेद का चिन्तवन करे।।43-45।।

उवजोगलक्खणमणाइणिहणमत्थंतरं सरीदादो।
जीवमरूविं कारिं भोइं च सयस्स कम्मस्स।।46।।
तस्स य सकम्मजणियं जम्माइजलं कसायपायालं।
वसयसयसावमीणं मोहावत्तं महाभीमं।।47।।
णाणमयकण्णहारं वरचारित्तमयमहापोयं।
संसारसागरमणोरपारमसुहं विचिंतेज्जो।।48।।

जीव उपयोग लक्षण वाला है, अनादिनिधन है, शरीर से भिन्न है, अरूपी है तथा अपने कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है। ऐसे उस जीव के कर्म से उत्पन्न हुआ जन्म-मरण आदि यही जल है, कषाय यही पाताल है, सैकडों व्यसनरूपी छोटे मत्स्य हैं, मोहरूपी आवर्त है और अत्यन्त भयंकर है, ज्ञानरूपी कर्णधार है और उत्कृष्ट चारित्रमय महापोत है। ऐसे इस अशुभ और अनादि अनन्त संसार का चिन्तवन करे।।46-48।।

किं बहुसो सव्वं चि य जीवादिपयत्थवित्थरो वेयं।
सव्वणयसमूहमयं ज्झायज्जो समयसब्भावं।।49।।

बहुत कहने से क्या लाभ, यह जितना जीवादि पदार्थों का विस्तार

कहा है उस सबसे युक्त और सर्वनय समूहमय समयद्भाव का ध्यान करे।।49।।

ज्झाणोवरमे वि मुणी णिच्चमणिच्चादिचिंतणापरमो।
होई सुभावियचित्तो धम्मज्झाणे जिह व पुव्वं।।50।।

ऐसा ध्यान करके उसके अन्त में मुनि निरन्तर अनित्य आदि भावनाओं के चिन्तवन में तत्पर होता है। जिससे वह पहले के समान धर्म्यध्यान में सुभावित्तचित्त होता है।।50।।

ध्यान का लक्षण

अंतोमुहुत्तमेत्तं चिंतावत्थाणमेगवत्थुम्हि।
छदुमत्थाणं ज्झाणं जोगणिरोहो जिणाणं तु।।51।।

एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त काल तक चिन्ता का अवस्थान होना छद्मस्थों का ध्यान है और योग निरोध जिन भगवान् का ध्यान है।।51।।

अंतोमुहुत्तपरदो चिंताज्झाणंतरं व होज्जाहि।
सुचिरं पि होज्ज बहुवत्थुसंकमे ज्झाणसंताणो।।52।।

अन्तर्मुहूर्त के बाद चिन्तान्तर या ध्यानान्तर होता है, या चिरकाल तक बहुत पदार्थों का संक्रम होने पर भी एक ही ध्यान सन्तान होती है।।52।।

धर्म्य ध्यानी की लेश्या

होंति कमविसुद्धाओ लेस्साओ पीय-पउम-सुक्काओ।
धम्मज्झाणोवगयस्स तिव्व-मंदादिभेयाओ।।53।।

धर्म्य ध्यान को प्राप्त हुए जीव के तीव्र-मन्द आदि भेदों को लिये हुए क्रम से विशुद्धि को प्राप्त हुई पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यायें होती हैं।।53।।

धर्म्यध्यान का चिन्ह

आगमउवदेसाणा णिसग्गदो जं जिणप्पणीयाणं।
भावाणं सद्दहणं धम्मज्झाणस्स तल्लिंगं।।54।।

आगम, उपदेश और जिनाज्ञा के अनुसार निसर्ग से जो जिन भगवान् के द्वारा कहे गये पदार्थों का श्रद्धान होता है वह धर्म्यध्यान का लिंग है।।54।।

जिण-साहुगुणुक्कित्तण-पसंसणा-विणय-दाणसंपण्णा।
सुद-सील-संजमरदा धम्मज्झाणे मुणेयव्वा।।55।।

जिन और साधु के गुणों का कीर्तन करना, प्रशंसा करना, विनय करना, दानसम्पन्नता, श्रुत, शील और संयम में रत होना, ये सब बातें धर्म्यध्यान में होती हैं, ऐसा जानना चाहिये।।55।।

धर्म्यध्यान का फल

होंति सुहासव-संवर-णिज्जरामरसुहाइं विउलाइं।
ज्झाणवरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स।।56।।

उत्कृष्ट धर्म्यध्यान के शुभ आस्रव, संवर, निर्जरा और देवों का सुख, ये शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं।।56।।

ध्यान की महिमा

जह वा घणसंघाया खणेण पवणाहया विलिज्जंति।
ज्झाणप्पवणोवहया तह कम्मघणा विलिज्जंति।।57।।

अथवा जैसे मेघपटल पवन से ताडित होकर क्षण मात्र में विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यानरूपी पवन से उपहत होकर कर्म-मेघ भी विलीन हो जाते हैं।।57।।

पृथक्त्व का स्वरूप

दव्वाइमणेगाइं तीहि वि जोगेहि जेण ज्झायंति।
उवसंतमोहणिज्जा तेण पुधत्तं ति तं भणिदं।।58।।

यतः उपशान्त मोह जीव अनेक द्रव्यों का तीनों ही योगों के आलम्बन से ध्यान करते हैं इसलिये उसे पृथक्त्व ऐसा कहा है।।58।।

सवितर्क का स्वरूप

जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुव्वगयअत्थकुसलो य।
ज्झायदि ज्झाणं एदं सविदक्कं तेण तं ज्झाणं।।59।।

यतः वितर्क का अर्थ श्रुत है और यतः पूर्णगत अर्थ में कुशल साधु ही इस ध्यान को ध्याते हैं, इसलिये इस ध्यान को सवितर्क कहा है।।59।।

सवीचार का स्वरूप

अत्थाण वंजणाण य जोगाण य संकमो हु वीचारो।
तस्स य भावेण तगं सुत्ते उत्तं सवीचारं।।60।।

अर्थ, व्यंजन और योगों का संक्रम वीचार है। जो ऐसे संक्रम से युक्त होता है उसे सूत्र में सवीचार कहा है।।60।।

एकत्व का स्वरूप

जेणेगमेव दव्वं जोगेणेक्केण अण्णदरएण।
खीणकसाओ ज्झायइ तेणेयत्तं तगं भणिदं।।61।।

यतः क्षीणकषाय जीव एक ही द्रव्य का किसी एक योग के द्वारा ध्यान करता है, इसलिये उस ध्यान को एकत्व कहा है।।61।।

वितर्क का स्वरूप

जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुव्वगयअत्थकुसलो य।
ज्झायादि झाणं एदं सविदक्कं तेण तज्झाणं।।62।।

यतः वितर्क का अर्थ श्रुत है और जिसलिये पूर्वगत अर्थ में कुशल साधु इस ध्यान को ध्याता है, इसलिये इस ध्यान को सवितर्क कहा है।।62।।

अवीचार का स्वरूप

अत्थाण वंजणाण य जोगाय य संकमो हु वीचारो।
तस्स अभावेण तगं ज्झाणमवीचारमिदि वुत्तं।।63।।

अर्थ, व्यंजन और योगों के संक्रम का नाम वीचार है। यतः उस वीचार के अभाव से यह ध्यान होता है, इसलिये इसे अवीचार कहा है।।63।।

शुक्लध्यान के आलम्बन

अह खंति-मद्दवज्जव-मुत्तीओ जिणमदप्पहाणाओ।
आलंबणेहि जेहिं सुक्कज्झाणं समारुहइ।।64।।

इस विषय में गाथा, क्षमा, मार्दव, आर्जव और संतोष ये जिनमत में ध्यान के प्रधान आलम्बन कहे गये हैं, जिन आलम्बनों का सहारा लेकर साधु शुक्ल ध्यान पर आरोहण करते हैं।।64।।

शुक्ल ध्यान की विशेषता

जह चिरसंचियमिंधणमणलो पवणुग्गदो धुवं दहइ।
तह कम्मिंधणमियं खणेण झाणाणलो दहइ।।65।।

जिस प्रकार चिरकाल से संचित हुए ईंधन को वायु से वृद्धि को प्राप्त हुई अग्नि अतिशीघ्र जला देती है, उसी प्रकार अपरिमित कर्मरूपी ईंधन को ध्यानरूपी अग्नि क्षणमात्र में जला देती है।।65।।

जह रोगासयसमणं विसोसणविरेयणोसहविहीहि।
तह कम्मासयसमणं ज्झाणाणसणादिजोगेहि।।66।।

जिस प्रकार विशोषण, विरेचन और औषध के विधान से रोगाशय का शमन होता है, उसी प्रकार ध्यान और अनशन आदि निमित्त से कर्माशय का भी शमन होता है।।66।।

शुक्ल ध्यान के चिन्ह

अभयासंमोहविवेगविसग्गा तस्स होंति लिगाइं।
लिंगिज्जइ जेहि मुणी सुक्कज्झाणेवगयचित्तो।।67।।

अभय, असंमोह, विवेक और विसर्ग ये शुक्ल ध्यान के लिंग हैं, जिनके द्वारा शुक्ल ध्यान को प्राप्त हुआ चित्तवाला मुनि पहिचाना जाता है।।67।।

चालिज्जइ वीहेइ व धीरो ण परिस्सहोवसग्गेहि।
सुहुमेसु ण सम्मुज्झइ भावेसु ण देवमायासु।।68।।

वह धीर परीषह और उपसर्गों से न तो चलायमान होता है और न डरता है तथा वह सूक्ष्म भावों में और देवमाया में भी नहीं मुग्ध होता है।।67।।

देहविचित्तं पेच्छइ अप्पाणं तह य सव्वसंजोए ।
देहोवहिवोसग्गं णिस्संगो सव्वदो कुणदि।।69।।

वह देह को अपने से भिन्न अनुभव करता है। उसी प्रकार सब प्रकार के संयोगों से अपनी आत्मा को भी भिन्न अनुभव करता है तथा निःसंग हुआ वह सब प्रकार से देह और उपाधि का उत्सर्ग करता है।।69।।

ण कसायसमुत्थेहि वि बाहिज्जइ माणसेहि दुक्खेहि।
ईसाविसायसोगादिएहि ज्झाणोवगयचित्तो।।70।।

ध्यान में अपने चित्त को लीन करने वाला वह कषायों से उत्पन्न

हुए ईर्ष्या, विषाद और शोक आदि मानसिक दुःखों से भी नहीं बाधा जाता है।।70।।

सीयायवादिएहि मि सारीरेहि बहुप्पयारेहिं।
णो बाहिज्जइ साहू ज्झेयम्मि सुणिच्चलो संतो।।71।।

ध्येय में निश्चल हुआ वह साधु शीत व आतप आदिक बहुत प्रकार की शारीरिक बाधाओं के द्वारा भी नहीं बाधा जाता है।।71।।

अविदक्कमवीचारं सुहुमकिरियबंधणं तदियसुक्कं।
सुहुमम्मि कायजोगे भणिदं तं सव्वभावगयं।।72।।

तीसरा शुक्लध्यान अवतिर्क, अवीचार और सूक्ष्म क्रिया से सम्बन्ध रखने वाला होता है, क्योंकि काययोग के सूक्ष्म होने पर सर्वभावगत यह ध्यान कहा गया है।।72।।

तृतीय शुक्ल ध्यान

सुहुमम्मि कायजोगे वट्टंतो केवली तदियसुक्कं।
ज्झायदि णिरुंभिदुं जो सुहुमं तं कायजोगं पि।।73।।

जो केवली जिन सूक्ष्म काययोग में विद्यमान होते हैं वे तीसरे शुक्लध्यान का ध्यान करते हैं और उस सूक्ष्म काययोग का भी निरोध करने के लिये उसका ध्यान करते हैं।।73।।

तोयमिव णालियाए तत्तायसभायणोदरत्थं वा।
परिहादि कमेण तहा जोगजलं ज्झाणजलणेण।।74।।

जिस प्रकार नाली द्वारा जल का क्रमशः अभाव होता है, या तपे हुए लोहे के पात्र में स्थित जल का क्रमशः अभाव होता है, उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा योगरूपी जल का क्रमशः नाश होता है।।74।।

जह सव्वसरीरगयं मंतेण विसं णिरुंभए डंके।
तत्तो पुणोऽवणिज्जदि पहाणझर मंतजोएण।।75।।

जिस प्रकार मन्त्र के द्वारा सब शरीर में भिदे हुए विष का डंक के स्थान में निरोध करते हैं और प्रधान क्षरण करने वाले मन्त्र के बल से उसे पुनः निकालते हैं।।75।।

तह बादरतणुविसयं जोगविसं ज्झाणमंतबलजुत्तो।
अणुभावम्मि णिरुंभदि अवणेदि तदो वि जिणवेज्जो।।76।।

उसी प्रकार ध्यानरूपी मन्त्र के बल से युक्त हुआ यह सयोग केवली जिनरूपी वैद्य बादर शरीर विषयक योग विषय को पहले रोकता है और इसके बाद उसे निकाल फेंकता है।।76।।

व्युपरत क्रिया निवर्ति

अविदक्कमवीचारं अणियट्टी अकिरियं च सेलेसिं।
ज्झाणं णिरुद्धजोगं अपच्छिमं उत्तमं सुक्कं।।77।।

अन्तिम उत्तम शुक्ल ध्यान वितर्क रहित है, वीचार रहित है, अनिवृत्ति है, क्रिया रहित है, शैलेशी अवस्था को प्राप्त है और योग रहित है।।77।।

शब्द के भेद-प्रभेद

तद विददो घण सुसिरो घोसो भासा त्ति छव्विहो सद्दो।
सो पुण सद्दो तिविहो संतो घोरो य मोघो य।।1।।

शब्द छह प्रकार हैं - तत, वितत, घन, सुषिर, घोष और भाषा। पुनः वह शब्द तीन प्रकार का है- प्रशस्त, घोर और मोघ।।1।।

पभवच्चुदस्स भागा वट्ठाणं णियमसा अणंता दु।
पढमागासपदेसे बिदियम्मि अणंतगुणहीणा।।2।।

उत्पत्तिस्थान में च्युत हुए पुद्गलों के अनन्त बहुभाग प्रमाण पुद्गल

नियम से प्रथम आकाश प्रदेश में अवस्थान करते हैं तथा दूसरे आकाश प्रदेश में अनन्तगुणे हीन पुद्‌गल अवस्थान करते हैं।।2।।

भासागदसमसेडिं सद्दं जदि सुणदि मिस्सयं सुणदि।
उस्सेडिं पुण सद्दं सुणेदि णियमा पराघादे।।3।।

भाषागत सम श्रेणिरूप शब्द को यदि सुनता है तो मिश्र को ही सुनता है और उच्छ्रेणि को प्राप्त हुए शब्द को यदि सुनता है तो नियम से पराघात के द्वारा सुनता है।3।।

असंज्ञी पंचेन्द्रियों तक के इन्द्रिय विषय क्षेत्र

चत्तारि धणुसयाइं चउसट्ठि सयं च तह य धणुहाणं।
फासे रसे य गंधे दुगुणा दुगुणा असण्णि त्ति।।4।।
उणतीसजोयणसया चउवण्णा तह य होंति णायव्वा।
चउरिंदियस्स णियमा चक्खुप्फासो सुणियमेण।।5।।
उणसट्ठिजोयणसया अट्ठ य तह जोयणा मुणेयव्वा।
पंचिंदियसण्णीणं चक्खुप्फासो सुणियमेण।।6।।
अट्ठेव धणुसहस्सा विसओ सोदस्स तह असण्णिस्स।
इय एदे णायव्वा पोग्गलपरिणामजोएण।।7।।

स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रियाँ क्रम से चार सौ धनुष, चौसठ धनुष और सौ धनुष के स्पर्श, रस और गन्ध को जानती हैं। आगे असंज्ञी तक इन इन्द्रियों का विषय दूना-दूना है। चतुरिन्द्रिय जीव के चक्षु इन्द्रिय का विषय नियम से उनतीस सौ चौवन योजन है। पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीव के चक्षु इन्द्रिय का विषय उनसठ सौ आठ योजन जानना चाहिये। असंज्ञी जीव श्रोत्र इन्द्रिय का विषय आठ हजार धनुष है। यह सब विषय पुद्‌गलों की पर्यायों के निमित्त से जानना चाहिये।।4-7।।

संज्ञी पञ्चेन्द्रियों के इन्द्रिय विषय क्षेत्र

पासे रसे य गंधे विसओ णव जोयणा मुणेयव्वा।
बारह जोयण सोदे चक्खुस्सद्धं पवक्खामि।।8।।
सत्तेतालसहस्सा बे चेव सया हवंति तेवट्ठी।
चक्खिंदियस्स विसओ उक्कस्सो होइ अदिरित्तो।।9।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना और घ्राण का विषय नौ योजन तथा श्रोत्र इन्द्रिय का विषय बारह योजन जानना चाहिये। चक्षु इन्द्रिय का विषय आगे कहते हैं। चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय सेंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन से कुछ अधिक है।।8-9।।

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।।10।।

जहाँ अन्यथानुपपत्ति है वहाँ पक्षसत्त्वादि उन तीन के होने से क्या मतलब अर्थात् कुछ भी नहीं, और जहाँ अन्यथानुपपत्ति नहीं है वहाँ उन तीन के होने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा अर्थात् कुछ भी नहीं।।10।।

वर्ण की संख्या

तेत्तीसवंजणाइं सत्तावीसं हवंति सव्वसरा।
चत्तारि अजोगवहा एवं चउसट्ठि वण्णाओ।।11।।

तेंतीस व्यंजन, सत्ताईस और चार अयोगवाह इस प्रकार कुल वर्ण चौंसठ होते हैं।।11।।

एकमात्रो भवेध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्द्धमात्रकम्।।12।।

एक मात्रा वाला ह्रस्व कहलाता है, दो मात्रा वाला दीर्घ कहलाता है, तीन मात्रा वाला प्लुत जानना चाहिये और व्यंजन अर्ध मात्रा वाला होता है।।12।।

एयट्ठ च च य छ सत्तयं च च य सुण्ण सत्त तिय सत्तं।
सुण्णं णव पण पंच य एगं छक्केक्कगो य पणगं च।।13।।

एक, आठ, चार, चार, छह, सात, चार, चार, शून्य, सात, तीन, सात, शून्य, नौ, पांच, पांच, एक, छह, एक और पांच अर्थात् 18446740737095551615।।13।।

एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितश्च पदवृद्धैः।
गच्छः संपातफलं समाहतः सन्निपातफलम्।।14।।

एक से लेकर एक-एक बढ़ाते हुए पदप्रमाण संख्या स्थापित करो। पुनः उनमें अन्त में स्थापित एक से लेकर पदप्रमाण बढ़ी हुई संख्या का भाग दो। इस क्रिया के करने से संख्यातफल, गच्छप्रमाण प्राप्त होता है। उस सम्पातफल को त्रेसठ बटे दो आदि से गुणा कर देने पर सन्निपातफल प्राप्त होता है।।14।।

संकलणरासिमिच्छे दोरासिं थावयाहि रूवहियं।
तत्तो एगदरुद्धं एगंदरगुणं हवे गणिदं।।15।।

यदि संकलन राशि का लाना अभीष्ट हो तो एक राशि वह जिसकी कि संकलन राशि अभीष्ट है तथा दूसरी राशि उससे एक अंक अधिक, इस प्रकार दो राशियों को स्थापित करें। तत्पश्चात् उनमें से किसी एक राशि के अर्ध भाग को दूसरी राशि से गुणित करने पर गुणित अर्थात् विवक्षित राशि के संकलन का प्रमाण होता है।।15।।

गच्छकदी मूलजुदा उत्तरगच्छादिएहिं संगुणिदा।
छहि भजिदे जं लद्धं संकलणाए हवे कलणा।।16।।

गच्छ का वर्ग करके इसमें मूल को जोड़ दें, पुनः आदि-उत्तर सहित गच्छ से गुणित करके उसमें छह का भाग दे। इससे जो लब्ध आवे वह संकलना की कलना होती है।।16।।

एकोत्तरपदवृद्धो रूपोनस्त्ववहृतश्च रूपाद्यैः।
प्रचयहतः प्रभवयुतो गच्छोद्धान्योन्यसंगुणितः।।17।।

वृद्धिंगत एकोत्तर पद को एक आदि से भाजित करके प्रचय से गुणित करे और प्रभव को जोड़ दे। पुनः गच्छ प्रमाण स्थानों को परस्पर गुणित करे। ऐसा करने से इच्छित संयोगी भंग प्राप्त होते हैं (?)।।17।। इस सूत्र द्वारा इच्छित संयोगी भंग ले आने चाहिये।

सोलससदाचोत्तीसं कोडी तेसीदि चेव लक्खाइं।
सत्तसहस्सट्ठसदा अट्ठासीदा य पदवण्णा।।18।।

सोलह सौ चौतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (16348307888) इतने मध्यम पद के वर्ण होते है।।18।।

पद के प्रकार

विविहं पदमुद्दिट्ठं पमाणपदमत्थमज्झिमपदं च।
मज्झिमपदेण वुत्ता पुव्वंगाणं पदविभागा।।19।।

पद तीन प्रकार का कहा गया है – प्रमाण पद, अर्थ पद और मध्यम पद। इनमें से मध्यम पद के द्वारा पूर्व और अंगों का पद विभाग कहा गया है।।19।।

श्रुतज्ञान के पद

बारससदकोडीओ तेसीदि हवंति तह य लक्खाइं।
अट्ठावण्णसहस्सं पंचेव पदाणि सुदणाणे।।20।।

श्रुतज्ञान के एक सौ बारह करोड़ तिरासी लाख अट्ठावन हजार और पाँच (1128358005) ही पद होते हैं।।20 ।।

स्वाध्यायी भिक्षु की विशेषता

सज्झायं कुव्वंतो पंचिंदियसंवुडो तिगुत्तो य।
होदि य एयग्गमणो विणएण समाहिदो भिक्खू।।21।।

स्वाध्याय को करने वाला भिक्षु पाँचों इन्द्रियों के व्यापार से रहित और तीन गुप्तियों से सहित होकर एकाग्र मन होता हुआ विनय से संयुक्त होता है।।21।।

जह जह सुदमोगाहिदि अदिसयरसपसरमसुदपुव्वं तु।
तह तह पल्हादिज्जदि णव-णवसंवेगरुद्धाए।।22।।

जिसमें अतिशय रस का प्रसार है और जो अश्रुतपूर्व है ऐसे श्रुत का वह जैसे-जैसे अवगाहन करता है वैसे-वैसे ही अतिशय नवीन धर्म श्रद्धा से संयुक्त होता हुआ परम आनन्द का अनुभव करता है।।22।।

गुप्ति की महिमा

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण।।23।।

अज्ञानी जीव जिस कर्म का लाखों करोड़ों भवों के द्वारा क्षय करता है उसका ज्ञानी जीव तीन गुप्तियों से गुप्त होकर अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर देता है।।23।।

अवधिक्षेत्र का वर्गीकरण

णेरइय-देव-तित्थयरोहिक्खेत्तस्स बाहिरं एदे।
जाणंति सव्वदो खलु सेसा देसेण जाणंति।।24।।

नारकी, देव और तीर्थंकर इनका जो अवधिक्षेत्र है उसके भीतर ये सर्वांग से जानते हैं और शेष जीव शरीर के एकदेश से जानते हैं।।24।।

षट्काय जीवों का आकार

मसुरिय-कुसग्ग-बिंदू सूइकलाओ पदाय संठाणा।
पुढविदगागणि-वाऊहरिद-तसा णेयसंठाणा।।25।।

पृथिवीकाय का आकार मसूर के समान होता है, जलकाय का आकार कुशाग्रबिन्दु के समान होता है, अग्निकाय का आकार सूचीकलाप के समान होता है तथा वायु का आकार ध्वजपट के समान होता है। हरितकाय तथा त्रसकाय अनेक आकार वाले होते हैं।।25।।

इन्द्रियों के आकार

जवणालिया मसूरी अदिमुत्तय-चंडगे खुरप्पे य।
इंदियसंठाणा खलु पासं तु अणेयसंठाणं ।।26।।

श्रोत्र, चक्षु, नासिका और जिह्वा इन इन्द्रियों का आकार क्रमशः यवनाली, मसूर, अतिमुक्तक फूल और अर्धचंद्र या खुरपा के समान है तथा स्पर्शन इंद्रिय अनेक आकार वाली है।।26।।

मुहूर्त का परिमाण

तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाणि तेवत्तरिं च उस्सासा।
एसो हवदि मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं।।27।।

सब मनुष्यों के तीन हजार सात सौ तिहत्तर (3773) उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है।।27।।

पूर्व का परिमाण

पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसयसहस्साइं।
छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वस्सकोडीणं।।28।।

सत्तर लाख करोड और छप्पन हजार करोड वर्षप्रमाण पूर्व का परिमाण जानना चाहिए।।28।।

पल्य का परिमाण

योजनं विस्तृतं पल्यं यच्च योजनमुच्छ्रितम्।
आसप्ताहःप्ररूढानां केशानां तु सुपूरितम्।।29।।
ततो वर्षशते पूर्णे एकैके रोम्णि उद्धृते।
क्षीयते येन कालेन तत्पल्योपममुच्यते।।30।।

एक योजन व्यास वाला और एक योजन ऊँचा पल्य अर्थात् कुशूल लेकर उसे एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए केशों से भर दे। अनन्तर पूरे सौ-सौ वर्ष होने पर एक-एक रोम निकाले, जितने काल में वह खाली होगा उतने काल को पल्योपम कहते हैं।।29-30।।

सागर और अवसर्पिणी का परिमाण

कोटिकोट्यो दशैतेषां पल्यानां सागरोपमम्।
सागरोपमकोटीनां दश कोट्योऽवसर्पिणी।।31।।

इन दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागरोपम होता है और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों का एक अवसर्पिणी काल होता है।।31।।

द्रव्य का स्वरूप

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड्भावसंबन्धो द्रव्यमेकमनेकधा।।32।।

नैगमादि नयों के और उनकी शाखा-उपशाखा रूप उपनयों के विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायों का कथंचित् तादात्म्य रूप जो समुदाय है उसे द्रव्य कहते हैं। वह कथंचित् एक रूप है और कथंचित् अनेक रूप है।।32।।

असंयम के प्रकार

पंचरस-पंचवण्णा दोगंधा अट्ठफास सत्तसरा।
मणसा चोद्दसजीवा बादालीसं तु अविरमणं।।33।।

पांच रस, पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, सात स्वर, मन और चौदह प्रकार के जीव, इनकी अपेक्षा अविरमण अर्थात् इन्द्रिय व प्राणी रूप असंयम ब्यालीस प्रकार का है।।33।।

सूत्र का लक्षण

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च।।34।।

जिसका गणधर ने कथन किया हो, उसी प्रकार जिसका प्रत्येकबुद्धों ने कथन किया हो, श्रुतकेवलियों ने जिसका कथन किया हो तथा अभिन्नदशपूर्वियों ने जिसका कथन किया हो, वह सूत्र है।।34।।

मुखमर्द्धं शरीरस्य सर्वं वा मुखमुच्यते।
तत्रापि नासिका श्रेष्ठा नासिकायाश्च चक्षुषी।।35।।

शरीर के आधे भाग को मुख कहते हैं, अथवा पूरा शरीर ही मुख कहलाता है। उसमें भी नासिका श्रेष्ठ है और नासिका से भी दोनों आँखें श्रेष्ठ हैं।।35।।

धवला पुस्तक

14

निक्षेप का प्रयोजन

अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च।।1।।

प्रकृत का निरूपण करने के लिये कहा भी है– अप्रकृत अर्थ का निराकरण करने के लिये, प्रकृत अर्थ का कथन करने के लिये, संशय का विनाश करने के लिये और तत्त्वार्थ का निश्चय करने के लिये निक्षेप किया जाता है।।1।।

समिति की विशेषता

जियदु मरदु वा जीवो अयदाचारस्स णिच्छओ बंधो।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदीहि।।2।।

चाहे जीव जिए चाहे मरे, अयत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने वाले जीव के नियम से बन्ध होता है, किन्तु जो जीव समिति पूर्वक प्रवृत्ति करता है उसके हिंसा हो जाने मात्र से बन्ध नहीं होता।।2।।

सरवासे दु पदंते जह दढकवचो ण भिज्जहि सरेहि।
तह समिदीहि ण लिंपइ साहू काएसु इरियंतो।।3।।

सरों की वर्षा होने पर जिस प्रकार दृढ़ कवच वाला व्यक्ति सरों से नहीं भिदता है, उसी प्रकार षट्कायिक जीवों के मध्य में समिति पूर्वक गमन करने वाला साधु पाप से लिप्त नहीं होता है।।3।।

जत्थेव चरइ बालो परिहारण्हू वि चरइ तत्थेव।
बज्झइ सो पुण बालो परिहारण्हू वि मुंचइ सो ।।4।।

जहाँ पर अज्ञानी भ्रमण करता है वहीं पर हिंसा के परिहार की विधि को जानने वाला भी भ्रमण करता है, परन्तु वह अज्ञानी पाप से बँधता है और परिहार विधि का जानकार उससे मुक्त होता है।।4।।

स्वयं ह्यहिंसा स्वयमेव हिंसनं न तत्पराधीनमिह द्वयं भवेत्।
प्रमादहीनोऽत्र भवत्यहिंसकः प्रमादयुक्तस्तु सदैव हिंसकः।।5।।

अहिंसा स्वयं होती है और हिंसा भी स्वयं ही होती है। यहाँ ये दोनों पराधीन नहीं हैं। जो प्रमादहीन है वह अहिंसक है, किन्तु जो प्रमादयुक्त है वह सदैव हिंसक है।।5।।

वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते शिवं च न परोपमर्दपरुषस्मृतेर्विद्यते।
वधोपनयमभ्युपैति च परान्निघ्नन्नपि त्वयायमतिदुर्गमः प्रशमहेतुरुद्योतितः।।6।।

कोई प्राणी दूसरे को प्राणों से वियुक्त करता है फिर भी वह बंध से संयुक्त नहीं होता तथा परोपघात जिसकी स्मृति कठोर हो गई है, अर्थात् जो परोपघात का विचार करता है उसका कल्याण नहीं होता तथा कोई दूसरे जीवों को नहीं मारता हुआ भी हिंसकपने को प्राप्त होता है। इस प्रकार हे जिन! तुमने यह अतिगहन प्रशम का हेतु प्रकाशित किया है, अर्थात् शान्ति का मार्ग बतलाया है।।।6।।

वर्गणा के भेद

अणुसंखासंखेज्जा तधणंता वग्गणा अगेज्झाओ।
आहार-तेज-भासा-मण-कम्मइय-धुवक्खंधा।।7।।
सांतरणिरंतरेदरसुण्णा पत्तेयदेह धुवसुण्णा।
बादरणिगोद सुण्णा सुहुमा सुण्णा महाखंधो।।8।।

अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्णणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणु-वर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा,

ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा।।7-8।।

वर्गणाओं का परिमाण

अणु संखा संखगुणा परित्तवग्गणमसंखलोगगुणं।
गुणगारो पंचण्णं अग्गहणाणं अभव्वणंतगुणो।।9।।

इनमें अणुवर्गणा एक है। संख्याताणुवर्गणा संख्यातगुणी है। असंख्याताणुवर्गणा असंख्यातलोकगुणी है। अनन्ताणुवर्गणा सहित पाँच अग्राह्यवर्गणाओं का गुणकार अभव्यों से अनन्तगुणा है।।9।।

आहारतेजभासा मणेण कम्मेण वग्गणाण भवे।
उक्कस्सस्स विसेसो अभव्वजीवेहि अधियो दु।।10।।

आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मणवर्गणा में अभव्यों से अनन्तगुणे जीवों का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना जघन्य से उत्कृष्ट लाने के लिए विशेष का प्रमाण है।।।10।।

वर्गणाओं का गुणकार

धुवसंतसांतराणं धुवसुण्णस्स य हवेज्ज गुणगारो।
जीवेहि अणंतगुणो जहण्णियादो दु उक्कस्से।।11।।

ध्रुवस्कन्धवर्गणा, सान्तरनिरन्तरवर्गणा और प्रथम ध्रुवशून्यवर्गणा में अपने जघन्य से उत्कृष्ट का प्रमाण लाने के लिए गुणकार का प्रमाण सब जीवों से अनन्तगुणा है।।।11।।

पल्लासंखोज्जदिमो भागो पत्तेयदेहगुणगारो।
सुण्णे अणंता लोगा थूलणिगोदे पुणो वोच्छं।।12।।

प्रत्येकशरीरवर्गणा का गुणकार पल्य का असंख्यातवां भाग है। दूसरी ध्रुवशून्यवर्गणा में गुणकार अनन्त लोक है। स्थूलनिगोद वर्गणा का

गुणकार आगे कहते हैं।।।12।।

सेडिअसंखेज्जदिमो भागो सुण्णस्स अंगुलस्सेव।
पलिदोवमस्स सुहुमे पदरस्स गुणो दु सुण्णस्स।।13।।

इसका गुणकार जगश्रेणि का असंख्यातवां भाग है। तीसरी शून्यवर्गणा का गुणकार अंगुल का असंख्यातवां भाग है। सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में गुणकार पल्य का असंख्यातवां भाग है। चौथी शून्यवर्गणा का गुणकार जगप्रतर का असंख्यातवां भाग है।।13।।

एदेसिं गुणगारो जहण्णियादो दु जाण उक्कस्से।
साहिअमिह महखंधेऽसंखेज्जदिमो दु पल्लस्स।।14।।

इन सब वर्गणाओं के ये गुणकार अपने जघन्य से उत्कृष्ट भेद लाने के लिए जानने चाहिए तथा महास्कन्ध में अपने जघन्य से अपना उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग अधिक है।।।14।।

इच्छं विरलिय गुणियं अण्णोण्णगुणं पुणो दुपडिरासिं।
काऊण एक्करासिं उत्तरजुदआदिणा गुणियं।।15।।
उत्तरगुणिदं इच्छं उत्तरआदीए संजुदं अवणे।
सेस हरेज्ज पडिणा आदिमछेदद्धगुणिदेण ।।16।।

इच्छित गच्छ का विरलन कर और उस विरलन राशि के प्रत्येक एक को दूना कर परस्पर गुणा करने से जो उत्पन्न हो उसकी दो प्रतिराशियाँ स्थापित कर उनमें से एक राशि को उत्तर सहित आदि राशि से गुणित कर इसमें से उत्तर गुणित और उत्तर आदि संयुक्त इच्छाराशि को घटा देने पर शेष रहे उसमें आदिम छेद के अर्धभाग से गुणित प्रतिराशि का भाग देने पर इच्छित संकलन का प्रमाण आता है।।5-16।।

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जं वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए।।7।।

योनिभूत बीज में जीव उत्पन्न होता है या अन्य जीव उत्पन्न होता है और जो मूली आदि हैं वे प्रथम अवस्था में प्रत्येक हैं।।17।।

सत्ता (सत्) की विशेषता

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पायधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवइ एक्का।।8।।

सत्ता सब पदार्थों में स्थित है, सविश्वरूप है, अनन्त पर्याय वाली है, व्यय, उत्पाद और ध्रुवत्व से युक्त है, सप्रतिपक्षरूप है और एक है।।18।।

मुहूर्त का प्रमाण

तिण्णिसहस्सा सत्तसदाणि त्तेहत्तरिं च उस्सासा।
एसो हवदि मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं ।।19।।

सभी मनुष्यों के तीन हजार सात सौ तिहत्तर (3773) उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है।।9।।

तिण्णि सदा छत्तीसा छावट्ठिसहस्स चेव मरणाणि।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा।।20।।

अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण और उतने ही क्षुद्रभव ग्रहण होते हैं।।20।।

एयक्खोत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेऊ सादियमह अणादियं चेदि।।21।।

अपने-अपने कहे गये हेतु के अनुसार कर्म के योग्य सादि, अनादि और सब जीवप्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाहीपने को प्राप्त हुए पुद्गल बाँध ाता है।।21।।

साहारणआहारो साहारणआणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं।।22।।

साधारण आहार और साधारण श्वास-उच्छ्वास का ग्रहण यह साधारण जीवों का साधारण लक्षण कहा है।।22।।

आधार के भेद

औपश्लेषिकवैषयिकाभिव्यापक इत्यपि।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च।।23।।

कट, आकाश और तिल में औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक इस प्रकार आधार तीन प्रकार का कहा है।।23।।

धवला पुस्तक

15

पुद्गल विपाकी नामकर्म प्रकृतियां

पंच य छ त्ति य छप्पं च दोण्णि पंच य हवंति अट्ठेव।
सरीरादीपस्संता पयडीओ आणुपुव्वीए।।1।।
अगुरुलहु-परूवघादा आदाउज्जोव णिमिणणामं च।
पत्तेय-थिर-सुहेदरणामाणि य पोग्गलविवागा।।2।।

शरीर से लेकर स्पर्श पर्यन्त अर्थात् शरीर, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये अनुक्रम से पाँच, छह, तीन, छह, पाँच, दो, पाँच और आठ प्रकृतियाँ, अगुरुलघु, परघात, उपघात, आतप, उद्योत, निर्माण, प्रत्येक व साधारण, स्थिर व अस्थिर तथा शुभ व अशुभ, ये नाम प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं।।1-2।।

जीव विपाकी नामकर्म प्रकृतियां

गदिजादी उस्सासो दोण्णि विहाया तसादितियजुगलं।
सुभगादीचदुजुगलं जीवविवागा य तित्थयरं।।3।।

गति, जाति, उच्छ्‌वास, दो विहायोगतियाँ, त्रस आदिक तीन युगल, सुभग आदिक चार युगल और तीर्थंकर, ये प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।।3।।

क्षेत्र विपाकी नामकर्म प्रकृतियां

चत्तारि आणुपुव्वी खेत्तविवागा त्ति जिणवरुद्दिट्ठा।
णीचुच्चागोदाणं होदि णिबंधो दु अप्पाणे।।4।।

चार आनुपूर्वी प्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं, ऐसा जिनेन्द्र देव के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। नीच व उच्च गोत्रों का निबन्ध आत्मा में है।।4।।

दाणंतराइयं दाणे लाभे भोगे तहेव उवभोगे।
गहणे होंति णिबद्धा विरियं जह केवलावरणं।।5।।

दानान्तराय दान के ग्रहण में, लाभान्तराय लाभ के ग्रहण में, भोगान्तराय भोग के ग्रहण में तथा उपभोगान्तराय उपभोग के ग्रहण में निबद्ध है। वीर्यान्तराय केवलज्ञानावरण के समान अनन्त द्रव्यों में निबद्ध है।।5।।

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।1।।

चूंकि असत् कार्य किया नहीं जा सकता है, उपादानों के साथ कार्य का सम्बन्ध रहता है, किसी एक कारण से सभी कार्यों की उत्पत्ति सम्भव नहीं है, समर्थ कारण के द्वारा शक्य कार्य ही किया जाता है तथा कार्य कारणस्वरूप ही है– उससे भिन्न सम्भव नहीं है। अतएव इन हेतुओं के द्वारा कारण व्यापार से पूर्व भी कार्य सत् ही है, यह सिद्ध है।।1।।

एकान्त वादियों का निराकरण

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलं।।2।।

नित्य एकान्त पक्ष में भी पूर्व अवस्था (मृत्पिण्डादि) के परित्यागरूप और उत्तर अवस्था (घटादि) के ग्रहण रूप विक्रिया घटित नहीं होती। अतः कार्योत्पत्ति के पूर्व में ही कर्त्ता आदि कारकों का अभाव रहेगा और जब कारक ही न रहेंगे तब भला फिर प्रमाण (प्रभूति क्रिया का अतिशाय साधक) और उसके फल (अज्ञाननिवृत्ति) की सम्भावना कैसे की जा सकती है? अर्थात् उनका भी अभाव रहेगा।।2।।

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी।।3।।

यदि कार्य सर्वथा सत् है तो वह पुरुष के समान उत्पन्न नहीं हो सकता और परिणाम की कल्पना नित्यस्वरूप एकान्त पक्ष की विघातक है।।3।।

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः।।4।।

इसके अतिरिक्त सर्वथा नित्यत्व की प्रतिज्ञा में मन, वचन व काय की शुभ प्रवृत्तिरूप पुण्य क्रिया तथा उनकी अशुभ प्रवृत्तिरूप पाप क्रिया भी नहीं बन सकती। अतएव पुण्य व पाप का अभाव होने पर जन्मान्तर प्राप्तिरूप प्रेत्यभाव तथा सुख व दुःख के अनुभवरूप पुण्य एवं पाप का फल भी कहां से होगा? नहीं हो सकेगा। इसलिये हे भगवन्! जिन एकान्तवादियों के आप नेता नहीं हैं उनके मत में बन्ध व मोक्ष की व्यवस्था भी नहीं बन सकती।।4।।

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत्।
मोपादाननियामो भून्माश्वासः कार्यजन्मनि।।5।।

यदि कार्य सर्वथा (पर्याय के समान द्रव्य से भी) असत् है तो वह आकाश कुसुम के समान उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त वैसे अवस्था में घट का उपादान मिट्टी है, तन्तु नहीं है, इस प्रकार उपादान नियम भी नहीं बन सकेगा। इसीलिये अमुक कार्य अमुक कारण से उत्पन्न होता है, अमुक से नहीं, इस प्रकार का कोई भी आश्वासन कार्य की उत्पत्ति में नहीं हो सकता।।5।।

जातिरेव हि भवानां निरोधो हेतुरिष्यते।
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन वः।।6।।

पदार्थों के विनाश में जाति (उत्पत्ति) को ही कारण माना जाता है, परन्तु जो उत्पन्न होकर भी नष्ट नहीं होता है वह फिर पीछे आपके यहाँ किसके द्वारा नाश को प्राप्त होगा? नहीं हो सकेगा।।6।।

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम्।।7।।

क्षणिक एकान्त पक्ष में भी प्रत्यभिज्ञान आदि का अभाव होने से कार्य का आरम्भ नहीं हो सकता और जब कार्य का आरम्भ नहीं हो सकता है तब उसके अभाव में भला पुण्य एवं पाप रूप फल की सम्भावना कहाँ से की जा सकती है? तथा पुण्य या पाप का अभाव होने पर जन्मान्तर रूप प्रेत्यभाव एवं बन्ध-मोक्षादि का भी सद्भाव नहीं रह सकता।।7।।

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।।8।।

घट, मुकुट और सुवर्ण सामान्य का अभिलाषी यह मनुष्य क्रमशः घट के नाश, मुकुट के उत्पाद और सुवर्ण सामान्य की स्थिति में शोक, प्रमोद एवं माध्यस्थ्य भाव को प्राप्त होता है। यह सहेतुक है, अकारण नहीं है।।8।।

पयोव्रतो न दध्याति न पयोऽत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम्।।9।।

'मैं केवल दूध को ग्रहण करूँगा' ऐसा नियम लेने वाला व्यक्ति दही को नहीं खाता है, 'मैं केवल दही खाऊँगा' ऐसा नियम रखने वाला व्यक्ति दूध को नहीं लेता है तथा 'मैं गोरस से भिन्न पदार्थ को ग्रहण करूँगा' ऐसा व्रत लेने वाला व्यक्ति दूध व दही दोनों को ही नहीं खाता है। इसीलिये वस्तु तत्त्व उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य इन तीनों स्वरूप है।।9।।

सत् का स्वरूप

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत्।।10।।

कोई भी वस्तु सामान्य स्वरूप से न उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है, क्योंकि इनमें सामान्य स्वरूप से स्पष्टतया अन्वय देखा जाता है, किन्तु वही विशेष स्वरूप को नष्ट भी होती है और उत्पन्न भी होती है। हे भगवन्! इस प्रकार आपके मत में एक ही वस्तु में उत्पादादि तीनों ही एक साथ रहते हैं। इन्हीं तीनों से युक्त वस्तु को सत् कहा जाता है।।10।।

भावैकान्ते पदार्थानामभावानापह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्।।11।।

अस्तित्व विषयक एकान्त पक्ष में अभावों का अपलाप होने से दूसरों के मत में पदार्थों के सर्वरूपता, अनादिता, अनन्तता और अस्वरूपता का प्रसंग आता है।।11।।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत्।।12।।

प्रागभाव का अपलाप होने पर कार्यरूप द्रव्य के अनादि हो जाने का प्रसंग आता है तथा प्रध्वंसरूप धर्म का (प्रध्वंसाभाव का) अभाव होने पर वह अनन्तता (अविनश्वरता) को प्राप्त हो जावेगा।।12।।

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्रसमवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा।।13।।

अन्यापोह (अन्योन्याभाव) का उल्लंघन होने पर विवक्षित कोई एक तत्त्व सब तत्त्वों स्वरूप हो जावेगा। अन्यत्र समवाय अर्थात् ज्ञानादि गुणविशेषों का अपने समवायी (आत्मादि) के व्यतिरिक्त दूसरे समवायों में समवाय होने पर अर्थात् अत्यन्ताभाव के अभाव में अभीष्ट स्वरूप

से किसी भी तत्त्व का निर्देश नहीं किया जा सकेगा।।13।।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम्।
बोध-वाक्यं प्रमाणं न केन साधन-दूषणम्।।14।।

'कोई भी पदार्थ सत्स्वरूप नहीं है' इस प्रकार से सर्वथा अभाव पक्ष को स्वीकार करने पर भी सत्स्वरूपता का अपलाप करने वाला शून्यैकान्तवादियों (माध्यमिक) के यहाँ बोधरूप स्वार्थानुमान और वाक्यरूप पदार्थानुमान प्रमाण का भी सद्भाव नहीं रह सकेगा। ऐसी अवस्था में शून्यता रूप स्वपक्ष की सिद्धि किस प्रमाण से की जावेगी तथा सत्स्वरूप पदार्थ को स्वीकार करने वाले अन्य वादियों के पक्ष को दूषित भी किस प्रमाण के द्वारा किया जावेगा।।14।।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽयुक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते।।15।।

'पदार्थ सत् व असत् स्वरूप है' इस प्रकार अनेकान्त विरोधियों के यहाँ उभयस्वरूपता का भी एकान्त पक्ष नहीं बनता, क्योंकि उसमें विरोध है। 'पदार्थ सर्वथा वचन के अगोचर है' इस प्रकार का भी एकान्तपक्ष सम्भव नहीं है, क्योंकि वैसा होने पर 'अवाच्य है' इस वाक्य का प्रयोग भी अयुक्त होगा।।15।।

कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा।।16।।

हे भगवन्! आपका अभीष्ट तत्त्व कथंचित् सत् स्वरूप ही है, वह कथंचित् असत् स्वरूप ही है, कथंचित् उभय (सत्-असत्) स्वरूप भी है और कथंचित् अवाच्य भी है। वह अभीष्ट तत्त्व नय के सम्बन्ध से ऐसा है, सर्वथा वैसा नहीं है।।16।।

कम्मं ण होदि एयं अणेयविहमेय बंधसमकाले।
मूलुत्तरपयडीणं परिणामवसेण जीवाणं।।17।।

कर्म एक नहीं है, वह जीवों के परिणामानुसार मूल व उत्तर प्रकतियों के बन्ध के समान काल में ही अनेक प्रकार का है।।17।।

राग-द्वेषाद्यूष्मा स योग-वर्त्यात्मदीप आवर्ते।
स्कन्धानादाय पुनः परिणमयति तांश्च कर्मतया।।18।।

संसार में राग-द्वेषरूपी उष्णता से संयुक्त वह आत्मारूपी दीपक योगरूप बत्ती के द्वारा (कार्मण वर्गणा के) स्कन्धों को ग्रहण करके फिर उन्हें कर्मस्वरूप से परिणमाता है।।18।।

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेऊ सादियमहणादियं वा वि।।19।।

जीव एकक्षेत्र में अवगाह को प्राप्त हुए तथा कर्म के योग्य सादि, अनादि अथवा उभय स्वरूप पुद्गल प्रदेश समूह को यथोक्त हेतुओं (मिथ्यात्व आदि) द्वारा अपने सब प्रदेशों से बंधता है।।19।।

कर्म के प्रदेशों की हीनाधिकता

आउअभागो थोवो णामा-गोदे समो तदो अहिओ।
आवरण-अंतराए तुल्लो अहिओ दु मोहे वि।।20।।
सव्वुवरि वेदणीए भागो अहिओ दु कारणं किंतु।
सुह-दुक्खकारण त्ता ठिदियविसेसेण सेसाणं।।21।।

आयु कर्म का भाग सबसे स्तोक है। नाम व गोत्र कर्म में वह समान हो करके उससे अधिक है। आवरण अर्थात् ज्ञानावरण व दर्शनावरण तथा अन्तराय में वह समान होकर उक्त दोनों कर्मों की अपेक्षा विशेष अधिक है। मोहनीय में उनसे विशेष अधिक है, किन्तु वेदनीय कर्म का द्रव्य सर्वोत्कृष्ट हो करके मोहनीय की अपेक्षा विशेष अधिक है। इसका

कारण वेदनीय का सुख व दुख में निमित्त होना है। शेष कर्मों का हीनाधिक भाग उनकी स्थिति विशेष से है।।20-21।।

एक्क य छक्केक्कारस दस सत्त चदुक्कमेक्कयं चेव।
दोसु य बारस भंगा एक्कम्हि य होंति चत्तारि।।1।।

दस, नौ, आठ, सात, छह, पाँच और चार प्रकृतियों के प्रवेशक के क्रम से एक, छह, ग्यारह, दस, सात, चार और एक (इतनी शलाकाओं से युक्त चौबीस) भंग, दो प्रकृतियों के प्रवेशक के बारह तथा एक प्रकृति के प्रवेशक के चार भंग होते हैं।।1।।

सत्तादि दसुक्कस्सं मिच्छे सण-मिस्सए णउक्कसं।
छादी य बारस भंगा एक्कम्हि य होंति चत्तारि।।2।।
पंचादि अट्ठणिहणा विरदाविरदे उदीरणट्ठाणा।
एगादी तियरहिदा सत्तुक्कस्सा य विरदस्स।।3।।

सात को आदि लेकर उत्कर्ष से दस (7, 8, 9, 10) प्रकृतियों तक के चार स्थान मिथ्यात्व गुणस्थान में होते हैं, अर्थात् इन चार स्थानों का स्वामी मिथ्यादृष्टि है। सात को आदि लेकर उत्कर्ष से नौ प्रकृतियों तक के तीन (7, 8, 9) स्थान सासादन और मिश्र गुणस्थान में होते हैं। छह प्रकृतियों को आदि लेकर उत्कर्ष से नौ तक के चार (6, 7, 8, 9) स्थान अविरत सम्यग्दृष्टि के होते हैं। पाँच को आदि लेकर आठ प्रकृतियों तक के चार (5, 6, 7, 8) उदीरणास्थान विरताविरत (देशविरत) गुणस्थान में होते हैं। एक को आदि लेकर उत्कर्ष से त्रिप्रकृतिक स्थान से रहित सात प्रकृतियों तक के छह (1, 2, 4, 5, 6, 7) उदीरणास्थान संयत जीव के होते हैं।।2-3।।

निधत्ति और निकाचित कर्म

उदए संकम-उदए चदुसु वि दादुं कमेण णो सक्कं।
उवसंतं च णिधत्तं णिकाचिदं चावि जं कम्म।।4।।

जो कर्म उदय में नहीं दिया जा सकता है वह उपशान्त, जो संक्रमण व उदय दोनों में नहीं दिया जा सकता है वह निधत्त तथा जो चारों (उदय, संक्रमण, अपकर्षण व उत्कर्षण) में भी नहीं दिया जा सकता है वह निकाचित कहा जाता है।।4।।

गुणश्रेणि निर्जरा

सम्मत्तुप्पत्तीए सावय विरदे अणंतकम्मसे।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते।।1।।
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीओ कालो संखेज्जगुणाए सेडीए।।2।।

सम्यक्त्वोत्पत्ति, श्रावक, विरत (संयत), अनन्तकर्मांश (अनन्तानुबन्धिविसंयोजक), दर्शनमोहक्षपक, कषायोपशामक, उपशान्तकषाय, क्षपक, क्षीणमोह और जिन, इनके क्रमशः उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी निर्जरा होती है, किन्तु इस निर्जरा का काल संख्यातगुणित श्रेणि रूप से विपरीत है। जैसे- जिनभगवान् की गुणश्रेणि निर्जरा का जितना काल है उससे क्षीणकषाय की गुणश्रेणि निर्जरा का काल संख्यातगुणा है इत्यादि।।1-2।।

धवला पुस्तक

16

संक्रम का स्वरूप एवं भेद

उल्लेवण विज्झादो अधापमत्तो गुणो य सव्वो य।
संकमइ जेहि कम्मं परिणामवसेण जीवाणं।।1।।

परिणामवश जिनके द्वारा जीवों का कर्म संक्रमण को प्राप्त होता है वे संक्रम पाँच हैं– उद्वेलनसंक्रम, विध्यातसंक्रम, अधातप्रवृत्तसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम।।1।।

गुणस्थानों की अपेक्षा संक्रम

बंधे अधापमत्तो विज्झाद अबंध अप्पमत्तंतो।
गुणसंकमो दु एत्तो पयडीणं अप्पसत्थाणं।।2।।

बन्ध के होने पर अधः प्रवृत्तिसंक्रम होता है। विध्यातसंक्रम अबन्ध अवस्था में अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त होता है। यहाँ से अर्थात् अप्रमत्त गुणस्थान से आगे के गुणस्थानों में बन्ध रहित अप्रशस्त प्रकृतियों का गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम भी होता है।।2।।

प्रकृतियों के भागहार

उगुदाल तीस सत्त य वीसं एगेग बार तियचउक्कं।
एवं चदु दुग तिय चदु पण दुग तिग दुगं च बोद्धव्वं।।3।।

उनतालीस, तीस, सात, बीस, एक, एक, बारह और तीन चतुष्क (4, 4, 4) इन प्रकृतियों के क्रम से एक, चार, दो, तीन, तीन, चार, पाँच, दो, तीन और दो ये भागहार जानने चाहिये।।3।।

द्रव्य लेश्या के वर्ण

किण्णं भमरसवण्णा णीला पुण णीलिगुणियसंकासा।
काऊ कवोदवण्णा तेऊ तवणिज्जवण्णाभा।।1।।
पम्मा पउमसवण्णा सुक्का पुण कासकुसुमसंकासा।
किण्णादिदव्वलेस्सावण्णविसेसा मुणेयव्वा।।2।।

कृष्ण लेश्या भ्रमर के सदृश, नील लेश्या नील गुण वाले के सदृश, कापोत लेश्या कबूतर जैसे वर्णवाली, तेजलेश्या सुवर्ण जैसी प्रभावाली, पद्म लेश्या पद्म के वर्ण समान और शुक्ल लेश्या कास के फूल के समान होती है। इन कृष्ण आदि द्रव्य लेश्याओं को क्रम से उक्त वर्णविशेषों रूप जानना चाहिये।।1-2।।

कृष्ण लेश्या का लक्षण

चंडो ण मुवइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एइ वसं किण्णाए संजुओ जीवो।।1।।

कृष्ण लेश्या से संयुक्त जीव तीव्र क्रोधी, बैर को न छोड़ने वाला, गाली देने रूप स्वभाव से सहित, दयाधर्म से रहित, दुष्ट और दूसरों के वश में न आने वाला होता है।।1।।

नील लेश्या का लक्षण

मंदो बुद्धीहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य।।2।।
णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होइ तिव्वसण्णाओ।
णीलाए लेस्साए वसेण जीवो हु पारंभो।।3।।

जीव नील लेश्या के वश में होकर मन्द, बुद्धिविहीन, विवेक से रहित, विषयलोलुप, अभिमानी, मायाचारी, आलसी, अभेद्य, निद्रा (या निन्दा) व धोखेबाजी में अधिक, धन-धान्य में तीव्र अभिलाषा रखने

वाला तथा अधिक आरम्भ को करने वाला होता है।।2-3।।

कापोत लेश्या का लक्षण

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोय-भयबहुलो।
असुअइ परिहवइ परं पसंसइ य अप्पयं बहुसो।।4।।
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पि व परे वि मण्णंतो।
तूसइ अहित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि-वड्ढीयो।।5।।
मरणं पत्थेइ रणे देह सुबहुअं पि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जमकज्जं काऊए पेरियो जीवो।।6।।

यह जीव कापोत लेश्या से प्रेरित होकर रुष्ट होता है, दूसरों की निन्दा करता है, उन्हें बहुत प्रकार से दोष लगाता है, प्रचुर शोक व भय से संयुक्त होता है, दूसरों से असूया (ईर्ष्या) करता है, पर का तिरस्कार करता है, अपनी अनेक प्रकार से प्रशंसा करता है, वह अपने ही समान दूसरों को भी समझता हुआ अन्य का कभी विश्वास नहीं करता है, अपनी प्रशंसा करने वालों से संतुष्ट होता है, हानि-लाभ को नहीं जानता है, युद्ध में मरण की प्रार्थना करता है, दूसरों के द्वारा प्रशंसित होकर उन्हें बहुत सा पारितोषिक देता है तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विवेक से रहित होता है।।4-6।।

पीत/तेज लेश्या का लक्षण

जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेय च सव्वसमपासी।
दय-दाणरओ मउओ तेऊए कीरए जीवो।।7।।

तेज लेश्या जीव को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य तथा सेव्य-असेव्य का जानकार, समस्त जीवों को समान समझने वाला, दया-दान में लवलीन और सरल करती है।।7।।

पद्म लेश्या का लक्षण

चाई भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमइ बहुअं पि।
साहु-गुरुपूजणरओ पम्माए परिणओ जीवो।।8।।

पद्म लेश्या में परिणत जीव त्यागी, भद्र, चोखा (पवित्र), ऋजुकर्मा (निष्कपट), भारी अपराध को भी क्षमा करने वाला तथा साधुपूजा व गुरुपूजा में तत्पर रहता है।।8।।

शुक्ल लेश्या का लक्षण

ण य कुणइ पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु।
णत्थि य राग-द्दोसो णेहो वि य सुक्कलेस्साए।।9।।

शुक्ल लेश्या के होने पर जीव न पक्षपात करता है और न निदान भी करता है। वह सब जीवों में समान रहकर राग, द्वेष व स्नेह से रहित होता है।।9।।

अहिणंदणमहिवंदिय अहिणंदियति हुवणं सुहत्तीए।
लेस्सपरिणामसण्णियमणियोगं वण्णइस्सामो।।1।।

तीनों लोकों को आनन्दित करने वाले अभिनन्दन जिनेन्द्र की अतिशय भक्तिपूर्वक वंदना करके 'लेश्यापरिणाम' संज्ञा वाले अनुयोगद्वार का वर्णन करते हैं।।1।।

अजियं जियसयलविभुं परमं जय-जीयबंधवं णमिउं।
सादासादगुणयोगं समासदो वण्णइस्सामो।।1।।

जिन्होंने समस्त विभुओं पर विजय प्राप्त कर ली है और जो जगत् के जीवों के हितैषी हैं, उन उत्कृष्ट अजित जिनेन्द्र को नमस्कार करके संक्षेप में सातासाता अनुयोगद्वार का वर्णन करते हैं।।1।।

संभवमरणविवज्जियमहिवंदिय संवं पयत्तेण।
दीह-रहस्सणुयोगं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए।।1।।

जन्म और मरण से रहित ऐसे सम्भव जिनेन्द्र की वन्दना करके प्रयत्नपूर्वक आनुपूर्वी के अनुसार दीर्घ और ह्रस्व अनुयोगद्वार की प्ररूपणा करता हूँ।।1।।

तिहुवणसुरिंदवंदियमहिवंदिय तिहुवणाहिवं सुमदिं।
भवधारणीयममलं अणुयोगं वण्णइस्सामो।।1।।

तीन लोक के देवों व इंद्रों से वन्दित ऐसे तीन लोक के स्वामी सुमति जिनेन्द्र की वन्दना करके निर्मल भवधारणीय नामक अनुयोगद्वार का वर्णन करते हैं ।।1।।

पउमदलगब्भउरं देवं पउमप्पहं णमंसित्ता।
पोग्गलअत्ताणुओअं समासदो वण्णइस्सामो।।1।।

पद्म पत्र के गर्भ के समान और वर्ण वाले पद्मप्रभ जिनेन्द्र को नमस्कार करके पुद्गलात्त अनुयोगद्वार का संक्षेप से वर्णन करते हैं।।1।।

णमिऊण सुपासजिणं तियसेसरवंदियं सयलणाणिं।
वोच्छं समासदो हं णिधत्तमणिधत्तमणुयोगं।।1।।

त्रिदशेश्वर अर्थात् इन्द्रों से वन्दित और पूर्णज्ञानी ऐसे सुपार्श्व जिन को नमस्कार करके मैं संक्षेप में निधत्तमनिधत्त अनुयोगद्वार का कथन करता हूँ।।1।।

हंसमिव धवलममलं जम्मण-जर-मरणवज्जियं चंदं।
वोच्छामि भावपणओ णिकाचिदणिकाचिदणुयोगं।।1।।

हंस के समान धवल, निर्मल तथा जन्म, जरा और मरण से रहित ऐसे चन्द्रप्रभ जिनको भावपूर्ण प्रणाम करके मैं निकाचित-अनिकाचित अनुयोगद्वार की प्ररूपणा करता हूँ।।1।।

णमिऊण पुप्फयंतं सुरहियधवलिद्धपुप्फअंचियच्चलणं।
कम्मट्ठिदिअणुयोगं वोच्छामि समासदो पयत्तेण।।1।।

सुगन्धित, धवल और समृद्ध पुष्पों द्वारा जिनके चरणों की पूजा की गयी है, उन पुष्पदन्त जिनेन्द्र को नमस्कार करके मैं प्रयत्नपूर्वक संक्षेप में कर्मस्थिति अनुयोगद्वार का कथन करता हूँ।।1।।

सीयलजिणमहिवंदिय तिहुवणजणीसीयलं पयत्तेण।
वोच्छं समासदो हं जहागमं पच्छिमक्खंध।।1।।

तीन लोक के जीवों को शीतल करने वाले ऐसे शीतल जिनेन्द्र की वन्दना करके मैं संक्षेप से आगम के अनुसार पश्चिम स्कन्ध अनुयोगद्वार की प्ररूपणा करता हूँ।।1।।

णमिऊण वड्ढमाणं अणंतणाणणुवट्टमाणं मिसिं।
वोच्छामि अप्पबहुअं अणुयोगं बुद्धिसारेण।।1।।

अनन्तज्ञान से अनुवर्तमान वर्धमान ऋषि को नमस्कार करके बुद्धि के अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार की प्ररूपणा करता हूँ।।1।।

आहारे परिभोयं परिग्गहग्गय तहा च परिणामा।
आदेसपमाणत्ता पुण अट्ठविहा पोग्गला अत्ता।।1।।

आहार, परिभोग, परिग्रहगत तथा परिणाम स्वरूप से पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, परन्तु आदेश प्रमाण की अपेक्षा (?) आठ प्रकार के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं।।1।।

अत्ता मवुति परिभोग परिगहणे तथा च परिणामे।
आहारे गहणे पुण चउव्विहा पोग्गला अत्ता।।2।।

ममत्व, परिभोग, परिग्रहण तथा परिणाम रूप से चार प्रकार के पुद्गल ग्रहण होते हैं तथा आहार ग्रहण में चार प्रकार के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं।।2।।

गाथानुक्रमणिका

गाथा	गाथा क्र./भाग	पृष्ठ क्र.
अ		
अइभीमदंसणेण य	225/2	72
अकसायमवेदत्तं	31/13	219
अग्निजलरूधिरदीपे	102/9	185
अगुरुअलहु–उवघादं	16/8	158
अगुरुलहु–परूवघादा	2/15	246
अच्छित्ता णवमासे	29/9	169
अच्छेदनस्य राशेः	5/11	203
अजियं जियसयलविभुं	1/16	259
अट्ठासी–अहियारेस	76/1	28
अट्ठविह–कम्म–विजडा	127/1	42
अट्ठत्तीसद्धलवा	34/3	87
अट्ठेव सयसहस्सा	48/3	90
अट्ठेव सयसहस्सा	49/3	91
अट्ठेव धणुसहस्सा	51/9	174
अट्ठेव धणुसहस्सा	7/13	230
अड्ढस्स अणलसस्स य	35/3	87
अडदाल सीदी बारस	13/10	196
अण्णाण–तिमिर–हरणं	51/1	21
अणवज्जा कय–कज्जा	27/1	15
अणियोगो य णियोगो	100/1	34
अणियोगो य नियोगो	118/9	189
अणुभागे हंमंते	2/12	208
अणुलोभं वेदंतो	190/1	60
अणुवगयपराणुग्गह	37/13	220
अणुसंखासंखेज्जा	7/14	240
अणु संखा संखगुणा	9/14	241

अतितीव्रदु:खितानां	110/9	187
अत्ता मवुत्ति परिभोग	2/16	261
अत्थाण वंजणाण य	60/13	225
अत्थाण वंजणाण य	63/13	226
अत्थादो अत्थतर	183/1	58
अत्थि अणंता जीवा	42/4	118
अत्थि अणंता जीवा	148/1	48
अत्थित्तं पुण संतं	102/1	35
अत्थो पदेण गम्मइ	1/10	194
अदिसयमाद-समुत्थं	46/1	20
अन्यथानुपपन्नत्वं	10/13	231
अपगयणिवारणट्ठं	59/3	93
अपगयणिवारणट्ठं	1/4	100
अप्पप्पवुत्ति-संचिद	86/1	30
अप्प-परोभय-बाधण	178/1	57
अप्पिदआदरभावो	1/5	120
अप्पं बादर मवुअं	2/13	212
अप्रवृत्तस्य दोषेभ्यस्	6/13	213
अभयासंमोहविवेग	67/13	227
अभावैकान्तपक्षेऽपि	14/15	251
अभिमुह-णियमिय-बोहण	182/1	58
अरसमरूवमगंधं	1/3	79
अर्थस्य सूचनात्सम्यक्	3/12	208
अल्पाक्षरमसंदिग्धं	117/9	189
अवगय-णिवारणट्ठं	15/1	12
अवगयणिवारणट्ठं	12/3	82
अवगयणिवारणट्ठं	1/11	202
अवगयणिवारणट्ठं	1/14	239
अवयणरासिगुणिदो	29/3	86

अवहारवड्ढिरूवा	24/3	85
अवहार विसेसेण य	25/3	85
अवहारेणोवट्टिद	5/10	195
अवहीयदि त्ति ओही	184/1	58
अवायावयवोत्पत्ति	47/9	173
अविदक्कमवीचारं	72/13	228
अविदक्कमवीचारं	77/13	229
अष्टम्यामध्ययनं गुरु	107/9	186
अष्टसहस्रमहीपति	42/1	19
अष्टादशसंख्यानां	36/1	17
असदकरणादुपादा	1/15	247
असरीरा जीवघणा	2/6	125
असरीरा जीवघणा	17/7	148
असहाय-णाण-दंसण	125/1	41
असुराणमसंखेज्जा	9/9	164
अह खंति-मद्दवज्जव	64/13	226
अहमिदा जह देवा	85/1	30
अहिणंदणमहिवंदिय	1/16	259

आ

आउअभागो थोवो	28/10	200
आउअभागो थोवो	20/15	252
आउवभागो थोवो	18/10	198
आक्षेपणी तत्त्वविधानभूतां	75/1	27
आगमउवदेसाणा णिसग्	54/13	224
आगमचक्खू साहू	24/8	160
आगमो ह्याप्तवचन	10/3	81
आगासं सपदेसं तु	4/4	100

आचार्यः पादमाचष्टे	4/12	205
आणद पाणदकप्पे	4/7	152
आणद–पाणदवासी	11/9	165
आदा णाण–पमाणं	198/1	62
आदि–अवसाण–मज्झ	19/1	13
आदिम्हि भद्द–वयणं	20/1	13
आदी मंगलकरणं	2/9	162
आदौ मध्येऽवसाने च	22/1	13
आभीयमासुरक्खा	180/1	57
आलोयण–पडिकमणे	11/13	214
आलंबणाणि वायण	21/13	216
आलंबणेहि भरिओ	3/9	162
आलंबणेहि भरियो	32/13	219
आवलि असंखसमया	33/3	87
आवलिय अणागारे	36/4	116
आवलियाए वग्गो	77/3	98
आवलियपुधत्तं पुण	6/9	163
आहरदि अणेण मुणी	164/1	53
आहरदि सरीराणं	98/1	33
आहारतेजभासा मणेण	10/14	241
आहारदंसणेण य	224/2	71
आहारयमुत्तत्थं	165/1	53
आहार–सरीरिंदिय	234/2	74
आहारे परिभोयं	1/16	261
आहिणिबोहियबुद्धो	31/9	170

इ

इगितीस सत्त चत्तारि	2/7	150
इगिवीस अट्ठ तह णव	11/5	122

इच्छहिदायामेण य	11/10	196
इच्छिदणिसेयभत्तो	2/6	128
इच्छं विरलिय (दु) गुणियं	15/14	242
इट्ठसलागाखुत्तो	7/4	106
इत्थि–णउंसयवेदा	17/8	158
इम्मिस्से वसप्पिणीए	25/9	169
इमिसे वसप्पिणीए	55/1	22
इह जाहि वाहिया वि य	223/2	71
इंगाल–जाल–अच्ची	151/1	49
इंदियमणोहिणा वा	230/2	73

उ

उगुदाल तीस सत्त य	3/16	256
उच्चारदम्मि दु पदे	1/13	212
उच्चारियमत्थपदं	3/1	4
उच्चुच्च उच्च तह	10/7	143
उच्छ्वासानां सहस्राणि	10/4	110
उज्जुसुदस्स दु वयणं	3/7	144
उजुकूलणदीतीरे	33/9	170
उणतीसजोयणसया	49/9	174
उणतीसजोयणसया	5/13	230
उणसट्ठिजोयणसया	50/9	174
उणसट्ठिजोयणसया	6/13	230
उत्तरगुणिदं इच्छं	26/10	199
उत्तरगुणिदं इच्छं	16/14	242
उत्तरदलहयगच्छे	44/3	89
उदए संकम–उदए	18/6	134
उदए संकम–उदए	87/9	182
उदए संकम–उदए	4/15	254

उदओ च अणंतगुणो	27/6	137
उप्पज्जंति वियंति य	8/1	8
उप्पज्जंति वियंति य	29/4	115
उप्पज्जंति वियंति य	90/9	183
उप्पण्णम्मि अणंते	24/9	168
उप्पणम्हि अणंते	60/1	23
उल्लेवण विज्झादो	1/16	256
उवजोगलक्खणमणाइ	46/13	222
उवयरणदंसणेण य	227/2	72
उवरिमगेवज्जेसु अ	6/7	152
उवरिल्लपंचए पुण	21/8	159
उवसमसम्मत्तद्धा	31/4	115
उवसमसम्मत्तद्धा	32/4	115
उवसामगो य सव्वो	4/6	129
उवसंते खीणे वा	191/1	60
उस्सासाउअपाण	83/9	181
	ऋ	
ऋषिगिरिरैन्द्राशायां	53/1	22
	ए	
एइंदियस फुसणं	142/1	46
एए छज्ज समाणा दोण्णि	3/12	206
एक्क तिय सत्त दस तह	34/4	116
एक्कम्मि काल–समए	119/1	40
एक्क य छक्केक्कारस	1/15	253
एकमात्रो भवेध्रस्वो	12/13	231
एक्कारस छ सत्त य	40/4	118
एक्कारसयं तिसु	14/4	107

एक्केक्कगुणट्ठाणे	47/3	90
एक्केक्कम्हि य वत्थू	86/9	182
एक्केक्कं तिण्णि जणा	76/9	180
एक्को चेय महप्पो सो	72/1	26
एक्को चेव महप्पा	72/9	178
एक्को मे सस्सदो अप्पा	1/6	125
एकोत्तरपदवृद्धो	12/5	123
एकोत्तरपदवृद्धो	15/10	197
एकोत्तरपदवृद्धो	2/12	205
एकोत्तरपदवृद्धो	14/13	232
एकोत्तरपदवृद्धो	17/13	233
एक्कं च ठिदिविसेसं तु	23/6	136
एगाणेगभवगयं	42/13	221
एदम्हि गुणट्ठाणे	117/1	39
एदेसिं गुणगारो जह	14/14	242
एदेसि पुव्वाणं एवदिओ	85/9	182
एयक्खेत्तोगाढं	19/4	112
एयक्खेत्तोगाढं	1/12	206
एयक्खेत्तोगाढं	21/14	243
एयक्खेत्तोगाढं	19/15	252
एयट्ठ च च य छ सत्तयं	13/13	232
एय-णिगोद-सरीरे	147/1	48
एय-णिगोद-सरीरे	210/1	66
एयणिगोदसरीरे	43/4	118
एयदवियम्मि जे अत्थ	199/1	63
एयदवियम्मि जे अत्थ	4/3	80
एयदवियम्मि जे अत्थ	63/9	177
एयादीया गणण दोहादीया	121/9	190
एयं ठाणं तिण्णि	10/5	122

एवं क्रमप्रवृद्धया	114/9	188
एवं सुत्तपसिद्धं	22/7	149
एस करेमि य पणमं	65/1	24
एसो पंचणमोक्कारो	1/9	162
एसो य सस्सदो अप्पा	16/7	148

ओ

ओकड्डदि जे अंसे से	22/6	135
ओगाहणा जहण्णा	4/9	163
ओजम्मि फालिसंखे	7/10	195
ओदइओ उवसमिओ	5/5	121
ओदइया बंधयरा	3/7	141
ओदइया बंधयरा	2/12	206
ओवट्ठणा जहण्णा	20/6	135
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणि	24/4	113
ओसा हिमो य घूमरि	150/1	48

औ

औपश्लेषिकवैषयिका	23/14	244

अं

अंगुलमावलियाए	5/9	163
अंगुलमावलियाए	15/9	166
अंगे सरो वंजण-लक्खणाणि	19/9	167
अंगोवंग-सरीरिंदिय	9/7	143
अंतोमुहुत्तपरदो	52/13	223
अंतोमुहुत्तमद्धं	9/6	131
अंतोमुहुत्तमेत्तं	51/13	223

क

कथंचित्ते सदेवेष्टं	16/15	251
कधं चरे कधं चिट्ठे	70/1	26
कधं चरे कधं चिट्ठे	70/9	178
कं पि णरं दट्ठूण य	1/7	144
कम्माणि जस्स तिण्णि दु	13/6	133
कम्मेव च कम्म-भवं	166/1	53
कम्मं ण होदि एयं	17/15	252
कल्लाणपावए जे	40/13	221
काऊ काऊ तह काऊ	237/2	75
कार्यद्रव्यमनादि स्यात्	12/15	250
कारिस-तणिट्टवागग्गि	173/1	55
कालो चउण्ण बुड्ढी	13/9	165
कालो ट्ठिदि-अवधाणं	103/1	35
कालो परिणामभवो	2/4	108
कालो परिणामभवो	1/11	202
कालो त्ति य ववएसो	1/4	108
कालो त्ति य ववएसो	4/11	203
कालो तिहा विहत्तो	21/3	84
कालो वि सो च्चिय जहिं	19/13	216
किंचिट्ठिदिमुपावत्त	28/13	218
किट्टी करेदि णियमा	32/6	138
किट्टी च ठिदिविसेसेसु	34/6	138
किण्णं भमरसवण्णा	1/16	257
किण्हादि-लेस्स-रहिदा	209/1	65
किण्हा भमरसवण्णा	238/2	75
किं कस्स केण कत्थ व	18/1	12
किं बहुसो सव्वं चि य	49/13	222
किमिराय-चक्क-तणु	177/1	56

कुक्खिकिमि-सिंपि	136/1	45
कुंडपुरपुरवरिस्सरसिद्ध	28/9	169
कुंथु-पिपीलिक मंकुण	137/1	45
कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि	10/13	214
कृष्णचतुर्दश्यां यद्य	108/9	187
केवलणाण-दिवायर	124/1	41
केवलदंसण-णाणे	37/4	117
कोटिकोट्यो दशैतेषां	31/13	236
कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो	67/9	178
क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि	7/15	249
क्षायिकमेकमनंतं	46/9	173
क्षेत्रं संशोध्य पुनः	103/9	186

ख

खय उवसमिय-विसोही	1/6	128
खय उवसमो विसोही	1/6	127
खवए य खीणमोहे	4/5	120
खवए य खीणमोहे	17/10	197
खवए य खीणमोहे	2/15	254
खिदिवलयदीवसायर	45/13	222
खीणे दंसणमोहि	23/9	168
खीणे दंसण-मोहे	59/1	23
खीणे दंसण-मोहे	213/1	66
खेत्तं खलु आगासं	3/4	100
खंधं सयलसमत्थं	3/13	211

ग

गइ-कम्म-विणिव्वत्ता	84/1	29
गच्छकदी मूलजुदा	16/13	232

गणरायमच्च-तलवर	38/1	18
गदिजादी उस्सासो	3/15	246
गदि-लिंग-कसाया वि य	6/5	121
गमइय छदुमत्थत्तं	32/9	170
गय-गवल-सजल-जलहर	66/1	25
गयणट्ठ-णय-कसाया	71/3	96
गहणसमयम्हि जीवो	21/4	113
गहिदमगहिदं च तहा	3/13	212
गुण जीवा पज्जत्ती	222/2	71
गुण-जोगपरावत्ती	39/4	117
गुणसेडि अणंतगुणा	33/6	138
गुणसेडि अणंतगुणेणू	29/6	137
गुणसेडि असंखेज्जा	26/6	137
गुत्ति-पयत्थ-भयाइं	42/9	172
गेवज्जाणुवरिमया णव	15/4	108
गेवज्जेसु च बिगुणं	125/9	191
गोत्तेण गोदमो विप्पो	61/1	24

घ

घटमौलिसुवर्णार्थी	8/15	249
घणमट्ठुत्तरगुणिदे	14/10	196

च

चउरुत्तरतिण्णिसयं	46/3	90
चउसट्ठी छच्च सया	52/3	91
चक्खूण जं पयासदि	195/1	62
चक्खूण जं पयासदि	20/7	149
चत्तारि आणुपुव्वी	4/15	246
चत्तारि घणुसयाइं	48/9	173

चत्तारि धणुसयाइं	4/13	230
चत्तारि वि छेत्ताइं	169/1	54
चदुपच्चइगो बंधो	20/8	159
चाई भद्दो चोक्खो	8/16	259
चागी भद्दो चोक्खो	207/1	65
चारण-वंसो तह	79/1	28
चारणवंसो तह पंचमो	79/9	181
चालिज्जइ वीहेइ व	68/13	227
चिंतियमचिंतियं वा	185/1	58
चोद्दस-पुव्व-महोयहि	32/1	16
चोद्दस बादरजुम्मं	3/10	194
चंडो ण मुयदि बैरं	200/1	63
चंडो ण मुवइ वेरं	1/16	257
चंदाइच्च-गहेहि	2/4	104

छ

छक्कादी छक्कंता	56/3	92
छक्कापक्कमजुत्तो	73/9	179
छक्कावक्कम-जुत्तो	73/1	26
छच्चेव सहस्साइं	13/4	107
छद्दव्व-णव-पयत्थे	35/1	17
छप्पंच-णव-विहाणं	96/1	33
छप्पंच-णव-विहाणं	212/1	66
छप्पंचणवविहाणं	5/4	109
छम्मासाउवसेसे	167/1	53
छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु	133/1	44
छादेदि सयं दोसेण	170/1	54
छावट्ठिं च सहस्सं	3/4	104
छेत्तूण य परियायं	188/1	60

ज

जगसेढीए वग्गो	78/3	98
जच्चिय देहावत्था जया	14/13	215
जत्थिच्छसि सेसाणं	21/10	198
जत्थेक्कु मरइ जवो	146/1	47
जत्थेव चरइ बालो	4/14	239
जत्थ जहा जाणेज्जो	60/3	94
जत्थ बहुं जाणिज्जा	14/1	11
जत्थं बहुं जाणेज्जो	45/9	173
जत्थ बहू जाणेज्जो	13/3	82
जदं चरे जदं चिट्ठे	71/1	26
जदं चरे जदं चिट्ठे	71/9	179
जम्हा सुदं विदक्कं	59/13	225
जम्हा सुदं विदक्कं	62/13	226
ज्येष्ठामूलात्परतो	113/9	188
जयमंगलभूदाणं	12/7	143
जल–जंघ–तंतु–फल–पुप्फ	21/9	168
जवणालिया मसूरी	134/1	44
जवणालिया मसूरी	26/13	235
जस्सोदएण जीवो	7/6	126
जस्सोदएण जीवो	6/7	142
जस्सोदएण जीवो	8/7	142
जस्संतियं धम्मपहं	34/1	17
जह कंचणमिग्ग–गयं	144/1	47
जह गेण्हइ परियट्टं	28/4	114
जह चिय मोराण सिह	129/9	192
जह चिरसंचियमिंधण	65/13	226
जह जह सुदमोगाहिदि	22/13	234
जह पुण्णापुण्णाइं	235/2	74

जह भारवहो पुरिसो	87/1	30
जह रोगासयसमणं	66/13	227
जह वा घणसंघाया	57/13	224
जह सव्वसरीरगयं	75/13	229
जाइ–जरा–मरण–भया	132/1	44
जाणइ कज्जमकज्जं	206/1	64
जाणइ कज्जमकज्जं	7/16	258
जाणइ तिकाल–सहिए	91/1	31
जाणदि पस्सदि भुंजदि	135/1	44
जातिरेव हि भावानां	57/9	175
जातिरेव हि भवानां	6/15	248
जादीसु होइ विज्जा	20/9	167
जारिसओ परिणामो	4/6	125
जावदिया वयण–वहा	67/1	25
जावदिया वयण–वहा	105/1	36
जावदिया वयणवहा	58/9	176
जाहिं व जासु व	83/1	29
जिणदेसियाइ लक्खण	43/13	221
जिण–साहुगुणुक्कित्तण	55/13	224
जियदु मरदु वा जीवो	2/14	239
जिय–मोहिंधण–जलणो	50/1	21
जीवस्तथा निवृत्तिमभ्युपेतो	3/6	139
जीवपरिणामहेदू	3/6	125
जीवा चोद्दस–भेया	194/1	61
जीवो कत्ता वत्ता	81/1	29
जीवो कत्ता य वत्ता	81/9	181
जे अहिया अवहारे	31/3	86
जे ऊणा अवहारे	32/3	86
जे कोडि सत्तवीसा	53/3	92

जेणेगमेव दव्वं	61/13	225
जे बंधयरा भावा	1/7	141
जेसि आउ-समाइं	168/1	54
जेसिं ण सन्ति जोगा	155/1	50
जेहिं अणेया जीवा	232/2	73
जेहिं दु लक्खिज्जंते	104/1	36
जोगा पयडि-पदेसे	4/12	206
जो णेव सच्च-मोसो	159/1	51
जो तस-वहाउ विरओ	112/1	38
जं अण्णाणी कम्मं	23/13	234
जं च कामसुहं लोए	5/13	213
जं थिरमज्झवसाणं	12/13	214
जं सामण्णग्गहणं	93/1	32
जं सामण्णंगहणं	19/7	149
ज्झाएज्जो णिरवज्जं	34/13	219
ज्झाणिस्स लक्खणं से	13/13	215
ज्झाणोवरमे वि मुणी	50/13	223
ज्ञानं प्रमाणमित्याहु	11/1	9
ज्ञानं प्रमाणमित्याहु	15/3	83
ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः	22/9	168
	ट	
ट्ठिदिघादे हंमंते	1/12	207
	ण	
ण उ कुणइ पक्खवायं	208/1	65
ण कसायसमुत्थेहि	70/13	227
णट्ठासेस-पमाओ	115/1	39
णत्थि चिरं वा खिप्पं	9/4	110

णत्थि णएहि विहूणं	68/1	25
णमिऊण पुप्फयंतं	1/16	260
णमिऊण वड्ढमाणं	1/16	261
णमिऊण सुपासजिणं	1/16	260
ण य कुणइ पक्खवायं	9/16	259
णयदि त्तिं णयो भणिओ	4/1	4
ण य पत्तियइ परं	204/1	64
ण य पत्तियइ परं	5/16	258
ण य परिणमइ सयं सो	3/4	109
ण य परिणमइ सयं सो	2/11	202
ण य मरइ णेव संजम	33/4	116
ण य मिच्छत्तं पत्तो	217/1	67
ण य सच्च-मोस-जुत्तो	157/1	51
ण रमंति जदो णिच्चं	128/1	42
णलया बाहू अ तहा	10/6	127
णवकम्माणादाणं	26/13	218
णव चेव सयसहस्सा	50/3	91
णवमो अइक्खुवाणं	80/9	181
णवमो य इक्खुयाणं	80/1	28
ण वि इंदिय-करण-जुदा	140/1	46
ण वि जायइ णि मरइ	219/1	68
णाणण्णाणं च तहा दंसण	9/5	122
णाणमयकण्णहारं	48/13	222
णाणावरणचदुक्कं	15/7	147
णाणे णिच्चब्भासो	24/13	217
णाणंतराय-दंसण	12/8	157
णाणंतरायदसयं दंसण	15/8	158
णामट्ठवणादवियं	89/9	183
णामिणि धम्मुवयारो	2/5	120

णामं ठवणा दविए	9/1	9
णामं ठवणा दवियं	8/3	81
णामं ठवणा दवियं	57/3	93
णामं ठवणा दवियं	2/4	100
णामं ठवणा दवियं	65/9	177
णिक्खत्तु विदियमेत्तं	10/7	146
णिच्चं विय-जुवइ पसू	17/13	215
णिज्जरिदाणिज्जरिदं	4/13	212
णिद्दद्ध-मोह-तरुणो	23/1	14
णिद्दा-वंचण-बहुलो	202/1	63
णिद्दावंचणबहुलो	3/16	257
णिम्मूलखंधसाहुव	240/2	76
णिरआउआ जहण्णा	25/4	114
णिरयगइं संपत्तो	6/7	145
णिस्से-खीण-मोहा	123/1	41
णिहय-विविहट्ठ-कम्मा	26/1	15
णेरइय-देव-तित्थयरो	24/13	234
णेवित्थी णेव पुमं	172/1	55
णो इंदिएसु विरदो	111/1	38

त

तत्तो चेव सुहाइं	49/1	20
ततो वर्षशते पूर्णे	30/13	236
तत्थ मइदुब्बलेण य	35/13	219
तद विददो घण सुसिरो	1/13	229
तपसि द्वादशसंख्ये	105/9	186
तम्हा अहिगय-सुत्तेण	69/1	25
तल्लीनमधुगविमलं	2/7	151
तस्स य सकम्मजणियं	47/13	222

तह बारतणुविसयं	76/13	229
तारिस-परिणाम-ट्ठिय	118/1	40
तावन्मात्रे स्थावर	97/9	184
तिगधिय-सद णवणउदी	41/3	88
तिण्णि जणा एक्केक्कं	220/1	68
तिण्णि सदा छत्तीसा	20/14	243
तिण्णि सया छत्तीसा	35/4	116
तिण्णि सहस्सा सत्त य	36/3	87
तिण्णि सहस्सा सत्त य	27/13	235
तिण्णिसहस्सा सत्त य	19/14	243
तिण्णं दलेण गुणिदा	8/10	195
तिण्हं दोण्हं दोण्हं	242/2	76
तित्थयर-गणहरत्तं	45/1	19
तित्थयर-णिरय-देवाउअ	11/8	157
तित्थयर-वयण संगह	5/1	5
ति-रयण-तिसूलदारिय	25/1	14
तिरियंति कुडिल-भावं	129/1	43
तिलपलल-पृथुक-लाजा	93/9	184
तिविहा य आणुपुव्वी	64/1	24
तिविहा य आणुपुव्वी	44/9	172
तिविहं तु पदं भणिदं	69/9	178
तिसदं वदंति केइं	45/3	90
तिहुवणसुरिंदवंदिय	1/16	260
तेऊ तेऊ तह तेऊ	241/2	76
तेत्तीसवंजणाइं	11/13	231
तेया कम्मइसरीरं	14/9	165
तेरस पण णव पण णव	4/10	194
तेरह कोडी देसे	68/3	96
तेरह कोडी देसे	69/3	96

तेरह कोडी देसे	70/3	96
तो जत्थ समाहाणं	16/13	215
तो देसकालचेट्ठा	20/13	216
तोयमिव णालियाए	74/13	228
तं मिच्छत्तं जमसद्दणं	107/1	36

थ

थिरकयजोगाणं पुण	18/13	216

द

दढ–गारव–पडिबद्धो	63/1	24
दलिय–मयण–प्पयावा	24/1	14
दव्व–गुण–पज्जए जे	4/7	142
दव्व–गुण–पज्जए जे	5/7	142
दव्वट्ठिय–णय–पयई	6/1	6
दव्वाइमणेगाइं तीहि	58/13	225
दव्वादिवदिक्कमणं	115/9	188
दर्शनेन जिनेन्द्राणां	1/6	139
दस अट्ठारस दसयं	23/8	160
दस चदुरिगि सत्तारस	6/8	156
दस चोद्दस अट्ठट्ठारस	84/9	182
दसविह–सच्चे वयणे	158/1	51
दस सण्णीणं पाणा	236/2	75
दहि–गुडमिव वामिस्सं	109/1	37
दाणे लाभे भोगे	58/1	23
दाणंतराइयं दाणे	5/15	247
दिव्वंति जदो णिच्चं	131/1	43
दीपो यथा निवृत्तिमभ्युपेतो	2/6	139
दुओणदं जहाजादं	66/9	178

देवाउ–देवचउक्काहार	7/8	156
देस–कुल–जाइ–सुद्धो	30/1	15
देसे खओवसमिए	14/5	123
देहविचित्तं पेच्छइ	69/13	227
दो द्दो य तिण्णि तेऊ	41/4	118
दो–दो रुवक्खेवं	23/10	199
दंसणमोहक्खवणा	17/6	134
दंसणमोहस्सुवसामओ दु	2/6	128
दंसणमोहुदयादो	215/1	67
दंसणमोहुवसमदो	216/1	67
दंसण–वद–सामाइय	74/1	27
दंसण–वद–सामाइय	74/9	180
दंसण–वय–सामाइय	193/1	61
द्रव्यतः क्षेत्रतश्चैव	30/13	218
द्विसहस्रराजनाथे	41/1	18

ध

धनुराकारश्छिन्नो	54/1	22
धम्माधम्मागासा	19/3	83
धम्माधम्मा लोगो	62/3	94
धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो	64/9	177
धुवसंतसांतराणं	11/14	241

न

नन्दा भद्रा जया रिक्ता	17/4	112
नयोपनयैकान्तानां	3/3	79
नयोपनयैकान्तानां	6/6	126
नयोपनयैकान्तानां	62/9	177
नयोपनयैकान्तानां	32/13	236

नवनागसहस्राणि	19/9	167
न सामान्यत्यात्मननोदेति	10/15	250
नानात्मतामप्रजहत्	5/3	80
नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि	2/15	247
निमेषाणां सहस्राणि	11/4	111
निरस्यति परस्यार्थं	3/7	151

प

पउमदलगब्भउरं	1/16	260
पक्खेवरासिगुणिदो	30/3	86
पच्चय-सामित्तविही	4/8	155
पच्चाहरित्तु विसएहि	29/13	218
पच्छा पावाणयरे	36/9	171
पञ्चशतनरपतीनाम्	40/1	18
पढ्यमपुढवीए चदुरो	123/9	190
पढमक्खो अंतगओ	11/7	146
पढमक्खो अंतगओ	2/12	207
पढमिच्छ सलागगुणा	20/10	198
पढमो अबंधयाणं	75/9	180
पढमो अरहंताणं	78/1	28
पढमो अरहंताणं	78/9	181
पढमं पयडिपमाणं	9/7	146
पणगादी दोहि जुदा	127/9	191
पणवणा इर वण्णा	22/8	159
पणिदरसभोयणेण य	226/2	72
पणुवीसं असुराणं	18/4	104
पणुवीसं असुराणं	1/7	151
पणुवीसं जोयणाणि	8/9	164
पण्णट्ठी च सहस्सा	38/3	88

पण्णरस कसाया विणु	9/8	156
पण्णवणिज्जा भावा	17/9	166
पण्णवणिज्जा भावा	3/12	205
पण्णासं तु सहस्सा	12/4	107
पत्थेण कोदवेण व	22/3	84
पत्थो तिहा विहत्तो	20/3	84
पदमीमांसा संखा	2/10	194
पभवच्चुदरस्स भागा	2/13	229
पम्मा पउमसवण्णा	239/2	76
पम्मा पउमसवण्णा	2/16	257
पयडिट्ठिदिप्पदेसा	41/13	221
पयोव्रतो न दध्याति न	9/15	249
परमाणु–आदियाइं	196/1	62
परमाणु–आदियाइं	21/7	149
परमोहि असंखेज्जाणि	16/9	166
परिणिव्वुदे जिणेदे	37/9	171
परियट्ठिदाणि बहुसो पंच वि	27/4	114
पर्वसु नन्दीश्वरमहिमा	106/9	186
पल्लासंखेज्जदिमो	12/14	241
पल्लो सायर–सूई	65/3	95
पल्लो सायर सूई	5/4	101
पवयण–जलहि–जलोयर	29/1	15
पापं मलमिति प्रोक्त	17/1	12
पासे रसे य गंधे	52/9	174
पासे रसे य गंधे	8/13	231
पुट्ठं सुणेइ सद्दं	54/9	175
पुढवी जलं च छाया	2/3	79
पुढवी य सक्करा	149/1	48
पुण्यपापक्रिया न स्यात्	4/15	248

पुरिसेसु सद्पुधत्तं	128/9	192
पुरु–गुण–भोगे सेदे	171/1	55
पुरुमहमुदारुरालं	160/1	51
पुव्वकयब्भासो	23/13	217
पुव्वस्स दु परिमाणं	28/13	235
पुव्वापुव्व–पद्दय	121/1	40
पुव्वुत्तवसेसाओ	10/8	157
पूर्वापरविरुद्धादे	9/3	81
पूर्वापरविरुद्धादे	58/3	93
पूर्वापरविरुद्धादे	91/9	183
पृतनाख–दण्डनायक	39/1	18
पंच–ति–चउव्विहेहि	192/1	61
पंचत्थिकायछज्जीव	38/13	220
पंचत्थिकायमइयं	44/13	222
पंचत्थिया य छज्जीव	6/4	109
पंच य छ त्ति य छप्पं	1/15	246
पंच य मासा पंच य	41/9	172
पंचरस–पंचवण्णा	33/13	237
पंच–समिदो ति–गुत्तो	189/1	60
पंचसय वारसुत्तर	40/3	88
पंच–सेल–पुरे रम्मे	52/1	21
पंचादि अट्ठणिहणा	3/15	253
पंचासुहसंघडणा	18/8	158
पंचेव अत्थिकाया	39/9	171
पंचेव सयसहस्सा	54/3	92
पंचेव सयसहस्सा	55/3	92
पंचेविंदिय–पाणा मण	236/2	75
प्रक्षेपकसंक्षेपेण	1/6	128
प्रक्षेपकसंक्षेपेण	27/10	200

प्रक्षेपकसंक्षेपेण	6/11	203
प्रतिपद्येकः पादो	111/9	187
प्रतिषेधयति समस्तं	8/6	126
प्रमाणनयनिक्षेपैः	10/1	9
प्रमाणनयनिक्षेपैः	14/3	82
प्रमाणनयनिक्षेपैः	61/3	94
प्रमाणनयनिक्षेपैः	1/13	211
प्रमितिररत्निशतं स्यादुच्चा	99/9	185
प्राणिनि च तीव्रदुःखान्	96/9	184
प्राय इत्युच्यते लोकश्	9/13	214

फ

फालिसलागब्भहिया	6/10	195
फालीसंखं तिगुणिय	9/10	195

ब

बत्तीसं किर कवला	7/13	213
बम्हे कप्पे बम्होत्तर	11/4	107
बम्हे य लांतर वि य	3/7	152
बहुरर्थो बहुव्रीहिः	7/3	80
बहुविह बहुप्पायारा	197/1	62
बहुव्रीह्यव्ययीभावौ	6/3	80
बादरसुहुमेइंदिय	233/2	74
बारस णव छ त्तिण्णि य	31/6	138
बारस दस अट्ठेव य	1/7	150
बारस पण दस पण दस	1/12	205
बारस य वेदणिज्जे	19/6	135
बारसविहं पुराणं	77/1	28
बारसविहं पुराणं	77/9	180

बारससदकोडीओ	20/13	233
बाहत्तरिवासणि य	27/9	169
बाहिर–पाणेहि जहा	141/1	46
बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरस्	8/13	213
बिदियादिवग्गणा पुण	22/10	199
बिहि तीहि चउहि	154/1	50
बीजे जोणीभूदे	76/3	97
बीजे जोणीभूदे	16/4	108
बीजे जोणीभूदे	17/14	242
बुद्धि–तव–विउवणोसह	38/9	171
बुद्धि तवो वि य लद्धी	18/9	167
बुद्धिविहीने श्रोतरि	4/12	208
बेलुवमूलोरब्भय	176/1	56
बंधे अधापमत्तो	2/16	256
बंधेण य संजोगो	1/8	155
बंधेण होदि उदओ	25/6	136
बंधेण होदि उदओ	28/6	137
बंधोदएहि णियमा	30/6	137
बंधोदय पुव्वं वा समं	3/8	155
बंधोदय पुव्वं वा समं	5/8	156
बंधो बंधविही पुण	2/8	155

भ

भरहम्मि अद्धमासो	7/9	163
भविया सिद्धी जेसिं	211/1	66
भावस्तत्परिणामो	9/6	127
भाविय–सिद्धंताणं	47/1	20
भावैकान्ते पदार्थानाम्	11/15	250
भासागदसमसेडिं सद्दं	3/13	230

भिण्ण-समय-ट्ठिएहि	116/1	39
भंगायामपमाणं लघुओ	1/12	207
म		
मक्कडय-भमर-महुवर	138/1	45
मणपज्जवपरिहारा	244/2	77
मणसा वचसा काएण	88/1	31
मणुवत्तणसुहमउलं	30/9	170
मण्णंति जदो णिच्चं	130/1	43
मदिसुदओहिमणेहिं य	229/2	73
मध्यान्हे जिनरूपं	109/9	187
मरणं पत्थेइ रणे देदि	205/1	64
मरणं पत्थेइ रणे	6/16	258
मसुरिय-कुसग्ग-बिंदू	25/13	235
माणद्धा कोधद्धा	38/4	117
मानुषशरीरलेशावय	100/9	185
मासुण-संठाणा वि हु	28/1	15
मिच्छत्त-कसायासं	7/7	142
मिच्छत्तपच्चओ खलु	8/6	131
मिच्छत्त-भय-दुगुंछा	8/8	156
मिच्छ त्तवेदणीयं कम्मं	6/6	130
मिच्छत्ताविरदी वि य	2/7	141
मिच्छत्ते दस भंगा	13/5	123
मिच्छत्तं वेयंतो जीवो	106/1	36
मिच्छाइट्ठी णियमा	15/6	133
मिथ्यासमूहो मिथ्या	61/9	176
मीमंसदि जो पुव्वं	221/1	69
मुखमर्द्धं शरीरस्य	35/13	237
मुह-तलसमास-अद्धं	9/4	102

मुह–भूमिविसेम्मिह दु	17/4	104
मुहभूमीण विसेसो	1/7	150
मुह–मुहतलसमासअद्धं	16/4	103
मुहसहिदमूलमज्झं	1/4	104
मूलग्ग–पोर–वीया	153/1	50
मूल–णिमेणं पज्जव	7/1	7
मूलं मज्झेण गुणं	10/4	102
मूलं मज्झेण गुणं	15/4	103
मेरु व्व णिप्पकंपं	48/1	20
मंगल–णिमित्त हेऊ	1/1	3
मंगशब्दोऽयमुद्दिष्टः	16/1	12
मंदो बुद्धि–विहीणो	201/1	63
मंदो बुद्धीहीणो	2/16	257

य

य एव नित्य–क्षणिकादयो	60/9	176
यथैककं कारककर्मसिद्धये	59/9	176
यद्यसत्सर्वथा कार्यं	5/15	248
यदि सत्सर्वथा कार्यं	3/15	248
यमपठहरवश्रवणे	92/9	183
युक्त्या समधीयानो	104/9	186
योजनमण्डलमात्रे	94/9	184
योजनं विस्तृतं पल्यं	29/13	236

र

रसाद् रक्तं ततो मांसं	11/6	127
रागद्दोसकसाया	39/13	220
राग–द्वेषाद्यूमा स	18/15	252
रागाद्वा द्वेषाद्वा	11/3	82

रासिविसेसेणवहि	75/3	97
रूवूणिच्छागुणिदं	10/10	196
रूसइ णिंदइ अण्णे	4/16	258
रूसदि णिंददि अण्णे	203/1	64
रोहणो बलनामा च	13/4	111
रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च	12/4	111

ल

लद्धविसेसच्छिण्णं	26/3	85
लद्धीओ सम्मत्तं	8/5	121
लद्धंतरसंगुणिदे	27/3	85
लिंगत्तियं वयणसमं	120/9	190
लिंपादि अप्पीकरीरदि	94/1	32
लेस्सा य दव्वभावं	243/2	77
लोगागासपदेसे	23/3	84
लोगागासपदेसे	3/11	203
लोगागासपदेसे	2/13	211
लोगो अकट्टिमो खलु	7/4	101
लोयस्स य विक्खंभो	8/4	101
लोयायासपदेसे	4/4	109

व

वइसाहजोण्णपक्खे	34/9	170
वत्तावत्त पमाणं जो	113/1	38
वत्तीसमट्ठदालं	43/3	89
वत्तीस सोलस चत्तारि	37/3	88
वत्तीसं सोहम्मे	10/4	107
वत्थुणिमित्तं भावो	228/2	72
वयणेहि वि होऊहि	214/1	67

वयणं दु समभिरूढं	5/7	145
वय-समिइ-कसायाणं	92/1	32
ववहारस्स दु वयणं जइया	2/7	144
वाउब्भामो उक्कलि	152/1	49
वारस दस अट्ठेव य	66/3	95
वारस दस अट्ठेव य	67/3	95
वासस्स पढममासे	56/1	22
वासस्स पढममासे	40/9	172
वासाणूणत्तीसं पंच	35/9	171
वाहिरसूईवग्गो	5/4	105
विक्खंभवग्गदसगुण	8/4	106
विकहा तहा कसाया	114/1	39
विग्गह-गइमावण्ण	99/1	34
विगतार्थागमने वा	98/9	184
विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु	21/1	13
विणएण सुदमधीदं	22/9	168
विणएण सुदमधीदं	116/9	189
विधिविषक्त प्रतिषेधरूपः	18/7	148
वियोजयति चासुभिर्न च वधे	6/14	240
विरलिदइच्छं विगुणिय	25/10	199
विरियोवभोग-भोगे	11/7	143
विरोधान्नोभयैकात्म्यं	15/15	251
विवरीयमोहिणाणं	181/1	57
विविह-गुण-इडिढ-जुत्तं	161/1	52
विविह-गुण-इडिढ-जुत्तं	162/1	52
विविहं पदमुद्दिट्ठं	19/13	233
विस-जंत-कूड-पंजर	179/1	57
विसमगुणादेगूणं	24/10	199
विसमं हि समारोहइ	22/13	217

विस–वेयन–रत्तक्खय	12/1	10
विसहस्सं अडयालं	39/3	88
वेउव्वियमुत्तत्थं	163/1	52
वेदण–कसाय–वेउव्विय	11/4	102
वेदस्सुदीरणाए	89/1	31
व्यन्तरभेरीताडन	101/9	185
व्यासं तावत्कृत्वा	13/4	103
व्यासं षोडशगुणितं	14/4	103
व्यासं षोडशगुणितं	9/4	106
	श	
शब्दात्पदप्रसिद्धिः	2/1	3
	ष	
षट्खण्डभरनाथं	43/1	19
षष्ठ–सप्तमयोः शीतं	1/7	152
षोडशशतंचतुस्त्रिंशत्कोटीनां	68/9	178
	स	
सकयगहलं जलं वा	122/1	41
सकलभुवनैकनाथस्	44/1	19
सक्कीसाणा पढमं	10/9	164
सज्झायं कुव्वंतो	21/13	234
सणिव्वरय–भवणेसु य	3/6	129
सत्त एव सुण्ण पंच	72/3	96
सत्त णव सुण्ण पंच	4/4	105
सत्तसहस्सडसीदेहि	73/3	97
सत्तहस्सा णवसद	43/9	172
सत्ता जंतू य माई य	82/9	181

सत्ता जंतू य माणी	82/1	29
सत्तादी अट्ठंता	51/3	91
सत्तादी छक्कंता	79/3	98
सत्तादि दसुक्कस्सं	2/15	253
सत्तावीसेदाओ बज्झंति	13/8	157
सत्ता सव्वपयत्था	56/9	175
सत्ता सव्वपयत्था	4/13	212
सत्ता सव्वपयत्था	18/14	243
सत्तेताल धुवाओ	14/8	158
सत्तेतालसहस्सा बे	53/9	175
सत्तेतालसहस्सा बे	9/13	231
सद्दणयस्स दु वयणं	4/7	144
सद्दहणासद्दहणं	218/1	68
सप्तदिनान्यध्ययनं	95/9	184
सब्भावसहावाणं	7/4	110
सब्भावो सच्चमणो	156/1	50
समओ णिमिसो कट्टा	8/4	110
समयो रात्रिदिनयोः	16/4	111
सम्मत्तपढमलंभो	11/6	132
सम्मत्तपढमलंभस्स	12/6	132
सम्मत्त-रयण-पव्वय	108/1	37
सम्मत्तुप्पत्ती ए	3/5	120
सम्मत्तुप्पत्तीए सावय	1/15	254
सम्मत्तुप्पत्ती वि य	16/10	197
सम्मत्ते सत्त दिणा	1/7	153
सम्मत्तं चारित्तं दो च्चिय	7/5	121
सम्ममिच्छाइट्ठी	16/6	134
सम्माइट्ठी जीवो	110/1	37
सम्माइट्ठी सद्दहदि	14/6	133

सम्मामिच्छाइट्ठी	10/6	131
सरवासे दु पदंते जह	3/14	239
सव्वम्हि ट्ठिदिविसेसे	7/6	130
सव्वम्हि लोगखेत्ते	23/4	113
सव्वाओ किट्टीओ	35/6	139
सव्वारणीयं पुण	14/7	147
सव्वासिं पगदीणं	26/4	114
सव्वासु वट्टमाणा	15/13	215
सव्वुवरि वेयणीए	19/10	198
सव्वुवरि वेयणीए	29/10	200
सव्वुवरि वेदणीए	21/15	252
सर्वथा नियमत्यागी	1/12	207
सर्वात्मकं तदेकं स्यात्	13/15	250
सव्वे वि पुव्वभंगा	8/7	145
सव्वे वि पोग्गला खलु	18/4	112
सव्वे वि पोग्गला खलु	22/4	113
सव्वं च लोयणालि	12/9	165
सागारमणागारं	231/2	73
सायारे पट्ठवओ	5/6	130
सावण-बहुल-पडिवदे	57/1	22
सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च	14/4	111
साहारणमाहारो	145/1	47
साहारणमाहारो	74/3	97
साहारणआहारो	22/14	243
सिक्खा-किरियुवदेसा	97/1	33
सिद्धतणस्सं जोग्गा जे	95/1	33
सिद्धत्थ-पुण्ण-कुंभो	13/1	10
सिद्धा णिगोदजीवा	16/3	83
सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च	15/4	111

सिल-पुढवि-भेद-धूली	174/1	55
सीयलजिणमहिवंदिय	1/16	261
सीयायवादिएहि मि	71/13	228
सीह-गय-वसह-मिय-पसु	33/1	16
सुणिउणमणाइणिहणं	33/13	219
सुत्तो तं सम्मं	143/1	47
सुत्तं गणहरकहियं	34/13	237
सुरमहिदो च्युदकप्पे	26/9	169
सुविदियजयस्सहावो	27/13	218
सुह-दुक्ख-सुबहु-सस्सं	90/1	31
सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं	20/4	112
सुहुमणुभागादुवरिं	5/12	208
सुहुमम्मि कायजोगे	73/13	228
सुहुमो य हवदि कालो	17/3	83
सुहुमो य हवदि कालो	63/3	94
सुहुमं तु हवदि खेत्तं	18/3	83
सुहुमं तु हवदि खेत्तं	64/3	95
सूई मुद्दा पडिघो	119/9	189
सूई मुद्दा पडिहो	101/1	34
सेडिअसंखेज्जदिमो	13/14	242
सेलघण-भग्गघड-अहि	62/1	24
सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्तं	175/1	56
सेलेसि संपतो	126/1	42
सैवापराकाले बेला	112/9	188
सोधम्मे माहिंदे	122/9	190
सोलसयं चउवीसं	42/3	89
सोलसयं चउवीसं	12/10	196
सोलससदाचोत्तीसं	18/13	233
सोलह सोलसहिं गुणो	6/4	106

सोहम्मीसाणेसु य	2/7	151
सोहम्मे माहिदे पढम	124/9	191
सोहम्मे सत्तगुध्सं	126/9	191
संकलणरासिमिच्छे	15/13	232
संकाइसल्लरहियो	25/13	217
संकामेदुक्कड्डदि जे	21/6	135
संखा तह पत्थारो	7/7	145
संखो पुण बारह	12/4	102
संगमाणेण विहत्ते	12/7	146
संगह–णुग्गह–कुसलो	31/1	15
संगहिय–सयल–संजममेय	187/1	59
संछुहइ पुरिसवेदे	24/6	136
संठाविदूण रूवं	13/7	147
संते वए ण णिट्ठादि	30/4	115
संपुण्णं तु समग्गं	186/1	59
संभवमरणविवज्जिय	1/16	259
संसेदिम–सम्मुच्छिम	139/1	45
सांतरणिरंतरेण य	19/8	159
सांतरणिरंतरेदरसुण्णा	8/14	240
स्याद्वादप्रविभक्तार्थ	55/9	175
स्वयं ह्यहिंसा स्वयमेव हिंसनं	5/14	240

ह

हय–हथि–रहाणहिवा	37/1	18
हारान्तरहतहाराल्	28/3	85
हेट्ठा मज्झे उवरिं	6/4	101
हेट्ठिमगेवज्जेसु अ	5/7	152
हेतावेवम्प्रकारादौ	5/6	126
हेतावेवम्प्रकारादौ	88/9	182

हेदूदाहरणासंभवे	36/13	220
होंति अणियट्टिणो ते	120/1	40
होंति कमविसुद्धाओ	53/13	223
होंति सुहासव–संवर	56/13	224
हंसमिव धवलममलं	1/16	260